शोध-प्रविधि

डॉ. विनयमोहन शर्मा

शोध-प्रविधि

शोध-प्रविधि

डॉ. विनयमोहन शर्मा

॥ प्रारम्भिक ॥

देश के प्राय: सभी विश्वविद्यालयों में शोध-कार्य हो रहा है। मानविकी तथा विज्ञान-विषयों में प्रतिवर्ष शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत होते हैं। उनकी संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। यदि सचमुच प्रत्येक विषय में नये-नये तथ्य प्रकाश में आ रहे हों या प्रकाशित तथ्यों की ऐसी नयी व्याख्या हो रही हो, जिससे ज्ञान की अभिवृद्धि होती हो तब तो 'प्रबन्धों' की वृद्धि अभिनन्दनीय है, पर वास्तविकता यह है कि विश्वविद्यालयों में बहुत-सा शोध-कार्य शोध के लिए नहीं, उपाधि और जीविका का मार्ग प्रशस्त करने के लिए हो रहा है। शोधार्थी विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित समय (दो वर्ष) के भीतर येन केन प्रकारेण 'कार्य' को समाप्त करने का भरसक प्रयत्न करता है। परिणाम यह होता है कि 'कार्य' में संकलन का भाग अधिक होता है, शोध का कम। अनेक शोधार्थी शोध की प्रविधि से अनभिज्ञ रहते हैं और इसी से उनके लेखन में वैज्ञानिकता का अभाव बुरी तरह खटकता है।

'कार्य' को वीर्यवान बनाने के लिए उपनिषद्कार विद्या, श्रद्धा और उपनिषद् की उपस्थिति अनिवार्य मानते हैं। इन शब्दों की व्याख्या करते हुए स्वामी श्री प्रत्यगात्मानन्द लिखते हैं—"विद्या का अर्थ यहाँ प्रयोग-पद्धति अथवा 'आर्ट' है। वर्तमान काल में कोई भी कार्य सुष्ठु सफलभाव से करने के लिए जो Correct technique (सही प्रविधि) है उसे ही उसका 'आर्ट' कहते हैं। श्रद्धा का अर्थ है, कार्य के साथ हृदय का योग ! कार्य में 'दर्द' होने का अर्थ है उसमें सचमुच का interest या रुचि लेना। इसमें आन्तरिकता, एकान्तिकता, विश्वास आते हैं और उपनिषद् अर्थात् रहस्य अथवा अन्तर्निहित तत्त्व का ज्ञान कार्य की सफलता और श्रेष्ठता के लिए आवश्यक है।"

जब तक शोध की ठीक प्रविधि का ज्ञान नहीं होगा, शोधकार्य के प्रति श्रद्धा—अटूट लगन—नहीं होगी, तब तक शोध-विषय का रहस्य उद्‌घाटित नहीं होगा; क्योंकि उपनिषद्कार के शब्दों में 'सत्य' का मुख हिरण्यमय पात्र से ढँका रहता है यानी अज्ञान से आवृत्त रहता है, अत: इस आवरण को हटाने के लिए शोधार्थी को उसकी प्रविधि से अवगत होना होगा। श्रद्धा के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, (श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्) ये श्रुति-सम्मत आर्ष-वचन जीवन की प्रत्येक साधना में सहायक होते हैं।

अत: शोध-विषय के कार्य में संलग्न होने के पूर्व शोध-विद्या का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। विदेशी विश्वविद्यालयों में तो इनके लिए विशेष परीक्षा

देनी होती है। कतिपय भारतीय विश्वविद्यालयों ने भी पी-एच० डी० के लिए पंजीकृत होने के पूर्व प्री० पी-एच० डी० परीक्षा अनिवार्य कर दी है। यदि एम० ए० में निबन्ध प्रश्नपत्र के विकल्प में शोध-प्रविधि का प्रश्नपत्र रख दिया जाय तो प्री० पी-एच० डी० की परीक्षा की आवश्यकता कम हो जायेगी या नहीं रह जायेगी। प्रस्तुत पुस्तक किसी पाठ्यक्रम के अनुसार नहीं लिखी गयी। भोपाल-विश्वविद्यालय के कुलगुरु श्री व० सु० कृष्णन् के संरक्षण में जब विश्वविद्यालय की अनुसन्धान परिषद् की स्थापना हुई तब उन्हीं के सुझाव पर मुझे परिषद् में 'शोध-प्रविधि' पर कुछ व्याख्यान देने पड़े, जो इस पुस्तक के मुख्य आधार हैं।

इसमें सहायक सन्दर्भ-सामग्री के रूप में कुछ परिशिष्ट जोड़े गये हैं। हिन्दी में उपाधिप्राप्त विषयों की सूची भी दी गयी है। वह अद्यतन नहीं हो पायी है। उसके देने का उद्देश्य हिन्दी के शोध-विषयों की पुनरावृत्तियों को रोकने में सहायता पहुँचाना है। एक विषय पर एकाधिक शोध-कार्य हो सकते हैं पर एक ही दृष्टिकोण को लेकर नहीं होने चाहिए। यदि किसी ऐसे विषय पर शोध-उपाधि मिल गयी है जो अधूरा है, या उस विषय पर नयी जानकारी प्राप्त हुई है तो उस पर पुनः शोधकार्य नये ज्ञान को उद्घाटित करने की दृष्टि से किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक आप एक बार शोधित विषय पर कोई नये तथ्य अथवा नयी व्याख्या प्रस्तुत करने की स्थिति में न हों तब तक पुनः उसी विषय को लेकर 'पुरानी शराब को नयी बोतल' में भरने की उक्ति को चरितार्थ न करें।

प्रस्तुत कृति शोध-प्रविधि की निर्देशिका-मात्र है। यदि शोधार्थियों को इससे तनिक लाभ हुआ तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगा। पुस्तक में शोध-प्रक्रिया और शोध-प्रविधि एक ही अर्थ में व्यवहृत हुए हैं।

अन्त में अनुसन्धान-परिषद् के संरक्षक भोपाल-विश्वविद्यालय के कुलपति श्री व० सु० कृष्णन्, अध्यक्ष डॉ० भगवतीप्रसाद शुक्ल, सचिव श्री प्रभाकर श्रोत्रिय तथा अन्य सभी सदस्यों का आभारी हूँ जिन्होंने मेरी शोध-प्रविधि व्याख्यान-माला आयोजितकर इस पुस्तक के प्रणयन का अवसर दिया। पुस्तक के प्रकाशक श्री मलिक जी ने इसे छापने में जो तत्परता और रुचि प्रदर्शित की, इसके लिए उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ। यदि टंकणकर्त्ता श्री सुरेन्द्रनाथ शुक्ल को उनकी सतर्कता के लिए धन्यवाद न दिया जाय तो सामाजिक अन्याय होगा।

— *विनयमोहन शर्मा*

ई-१/१४३, अरेरा कालोनी
भोपाल-६

अनुक्रम

प्रथम भाग

शोध क्या है ?	3
वैज्ञानिक अध्ययन के सोपान	9
शोध और वैज्ञानिक प्रणाली	10
शोध-प्रकार	11
शोध की समीक्षा	14
शोध का अधिकारी कौन ?	15
शोध-कार्य—एक दृष्टि	19
वैज्ञानिक शोध के सोपान	24
शोध के विषय	24
परिकल्पना के स्रोत	33
विषय की रूप-रेखा	39
सामग्री का संकलन—उसके स्रोत	49
शोध-सामग्री के स्रोत	53
टीप (NOTES) कैसे ली जाय ?	57
तथ्य संचयन के साधन—साक्षात्कार अथवा संलाप	61
तथ्य एकत्र करने के साधन	64
सामग्री-संग्रह का साधन—प्रेषण-पद्धति	69
संचित सामग्री की प्रामाणिकता की परीक्षा	71
'सामग्री' का वर्गीकरण-विश्लेषण	72
प्रबन्ध-लेखन	77

द्वितीय भाग

पाठानुसन्धान की प्रक्रिया 87

कतिपय अन्य विषयों की शोध-प्रविधियाँ 115

(क) लोक साहित्य के अध्ययन की प्रविधि 116

(ख) भाषा का अध्ययन 117

(ग) लोक भाषा कोश निर्माण की प्रविधि 119

(घ) साहित्य-इतिहास की प्रविधि 128

(ङ) इतिहास-लेखन की शोध-प्रविधि 132

(च) क्या ऐतिहासिक अनुसन्धान अवैज्ञानिक है? 135

(छ) ग्रियर्सन की भाषा-सर्वेक्षण प्रणाली 138

परिशिष्ट

परिशिष्ट क : 143

हिन्दी कोश सूची 144

अंग्रेजी कोश सूची 144

साहित्य तथा विविध विषय-सम्बन्धी कोश 145

अन्य भाषा कोश 146

विविध कोश 146

परिशिष्ट ख : लोक-साहित्य सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 149

परिशिष्ट ग : पाठालोचित प्रमुख ग्रन्थ-सूची 152

परिशिष्ट घ : स्वीकृत शोध-प्रबन्ध 152

●●●

प्रथम भाग

1
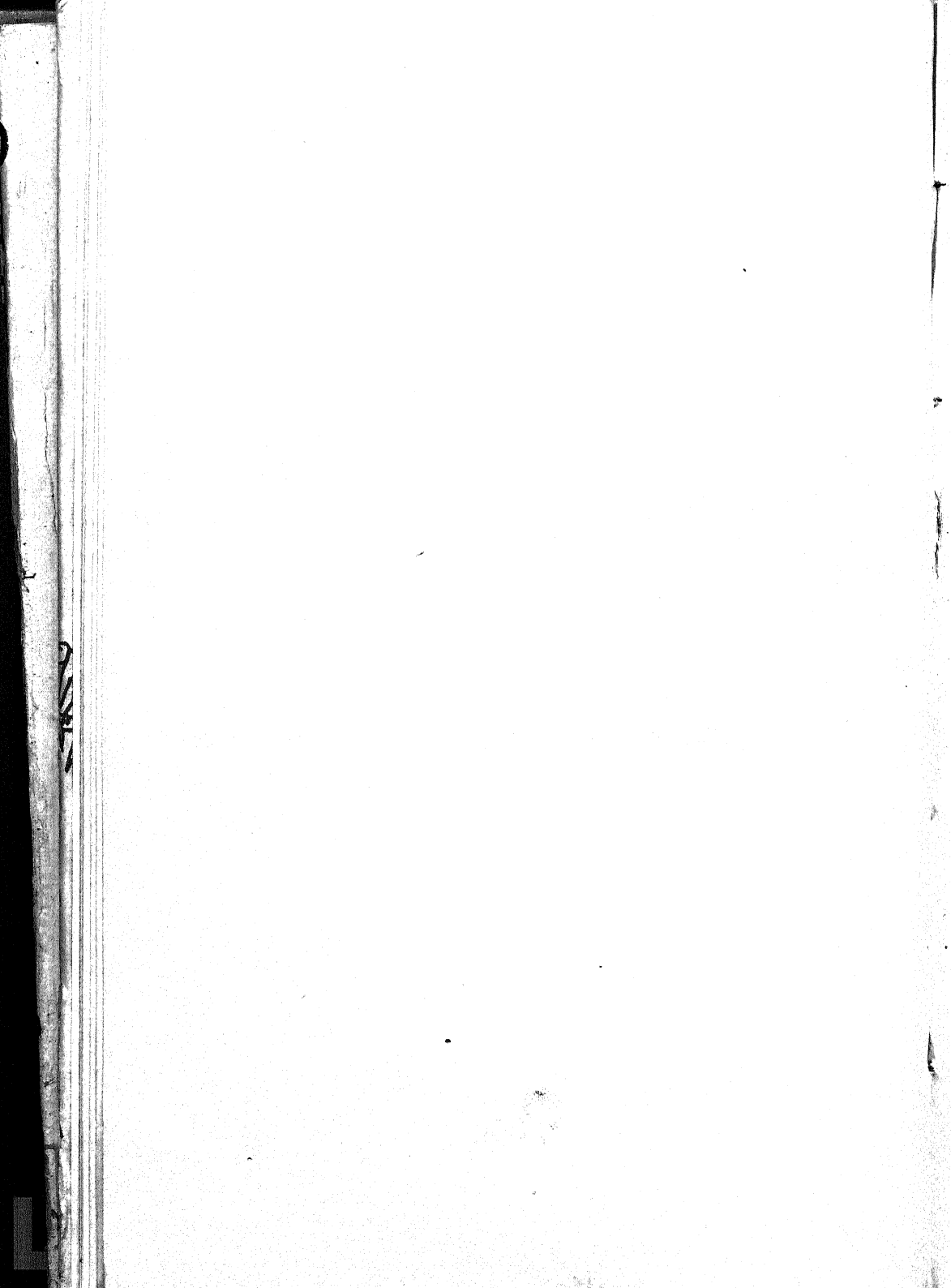
शोध क्या है ?

शोध, खोज, अनुसंधान, अन्वेषण, गवेषणा सभी हिन्दी में पर्यायवाची शब्द हैं। इसी को मराठी में संशोधन और अंग्रेज़ी में रिसर्च कहते हैं। खोज में सर्वथा नूतन सृष्टि का नहीं, अज्ञात को ज्ञात करने का ही भाव है। मनुष्य बुद्धिसम्पन्न प्राणी होने के कारण अपनी सचेतावस्था से ही जिज्ञासु रहा है। वह 'अहम्' (आत्मा), 'इदम्' (सृष्टि या जगत्) और 'सः' (ब्रह्म, परमात्मा) को जानने के लिए पर्युत्सुक रहा है। जगत् में वह क्यों है ? जगत् ही क्यों है ? मुझे और जगत् को यहाँ लाने वाला कौन है ? मेरा और जगत् का परस्पर क्या सम्बन्ध है, आदि प्रश्न उसे झकझोरते जा रहे हैं। उसकी ज्ञान की पिपासा कभी तृप्त नहीं हुई। उसकी इसी अतृप्ति ने अनेक भौतिक तथा आध्यात्मिक रहस्यों को तथ्य रूप प्रदान कर मानव की ज्ञान-संपदा में लगातार अभिवृद्धि की है। बहुत-सा ज्ञान सहज इंद्रियगम्य है और कुछ ऐसा भी है जो सहज इंद्रियगम्य नहीं है, परन्तु उसके अस्तित्व को एकदम नकारा भी नहीं जा सकता। शेक्सपियर के 'हेमलेट' नाटक में जब हेमलेट का पिता प्रेत-रूप में प्रकट होकर बातें करने लगता है तो हेमलेट के मित्र होरेशियो का सिर घूम जाता है, उसे देखा दृश्य अनदेखा लगता है। कहता है—

"O day and night, but this is wonderous strange" (हे दिन, हे रात, यह है क्या ? यह तो चमत्कारपूर्ण आश्चर्य है।) हेमलेट भी प्रेतदर्शन से पहले तो चौंकता है। फिर सँभलकर मित्र को समझाता है—

"And therefore as a stranger, give it welcome. There are more things in the heaven and earth, Horatio, than are dreamt of in your philosophy"

(इसलिए इस आश्चर्य का भी स्वागत करो, धरती और आसमान पर ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं होरेशियो, जिनकी तुम्हारे 'दर्शन' ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी।) कहने का तात्पर्य यह है कि अनुसंधान के लिए विभिन्न क्षेत्रों में गुंजाइश पाई जाती है। जो तथ्य दृष्टि से ओझल हैं उन्हें भी प्रत्यक्ष

करने की ओर शोधार्थी संलग्न रहते हैं । प्रेत-विद्या के अनुसंधाता भी देश-विदेश में मौजूद हैं । जब ब्रह्माण्ड के अनेक अदृश्य रहस्यों को अनुसंधाताओं ने रहस्य नहीं रहने दिया तब मरणोपरान्त जीवन भी कैसे रहस्य बना रह सकता है ?

उपनिषद्कार कहते हैं—

'हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्य अपिहितं मुखम्'

हिरण्यमय पात्र प्रतीकात्मक शब्द है जो माया या अज्ञान का द्योतक है । सत्य अर्थात् ज्ञान अज्ञान के आवरण में छिपा रहता है । उसे निरावरण करने का कार्य 'तत्त्वदर्शी' (अन्वेषक) का है । वह आप्त-वचन को निष्क्रिय भाव से स्वीकार नहीं करता ।

कालिदास कहते हैं—

पुराणमित्येव न साधु सर्वम्, न चापिकाव्यं नवमित्यवद्यम्,
संतः परीक्षान्तरद भजन्ते मूढ़ः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः ।

—मालविकाग्निमित्र

प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री डेविड बॉप भी यही कहता है—"नई सृष्टि का अर्थ यह हुआ कि यह न ही पुराने क्रमों की नकल करती है, न ही उनकी मौलिक सच्चाई के विपरीत जाती है । वह पुराने क्रमों की हमारी समझ को नए सन्दर्भों में ढालती है और इसके साथ-साथ हमारे ज्ञान के आयाम को विस्तृत करती है ।

पौराणिक मान्यता रही है कि चन्द्रलोक में प्राणियों का अस्तित्व है । वैज्ञानिकों का विश्वास था कि चन्द्रमा पृथ्वी का अंग है, पृथ्वी का आकार चपटा है, पर जिज्ञासु मनुष्य ने प्रचलित मान्यताओं पर विश्वास नहीं किया । वह अपने बुद्धिबल से चन्द्र तक पहुँचने के उपकरण आविष्कृत करने में सफल हुआ । अन्तरिक्ष में उड़कर चन्द्रलोक में उतरा, फिरा, वहाँ के उसने पत्थर बटोरे और वहीं से पृथ्वी के दर्शन किए और पुनः पृथ्वी पर लौटकर अपने अनुभवों को प्रकट किया—'चन्द्रमा पर जीवसत्ता नहीं है, पृथ्वी अंडाकृति है ।' यात्राओं से कई अज्ञात तथ्य ज्ञात हुए हैं और अभी भी अनेक अज्ञात तथ्यों की खोज जारी है । यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि खोज एक स्वतः प्रवहमान क्रिया है जिसका आदि तो है पर अन्त नहीं है ।

इसी प्रकार भारतीय पुराणों के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों की धारणा थी कि वे पंडितों के कल्पना-विलास मात्र और भोली जनता को धर्मविश्वासी बनाने के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं । परन्तु सत्यानुरागी शोधकर्ताओं पर्जीटर आदि

ने उनमें अनेक ऐतिहासिक तथ्य खोजकर उनका महत्त्व प्रतिपादित किया है ।[1] अथर्ववेद में पुराणों को सृष्टि-रचना के ग्रंथ कहा गया है । सायणाचार्य ने पुराण का यही अर्थ किया है । शंकराचार्य ने भी उपनिषद् में आए 'पुराण' पद का यही अर्थ किया है । पुराणों की वर्णन की अपनी शैली है, जो प्रतीकात्मक है, आलंकारिक है । उनमें ऐतिहासिक पात्रों का समावेश कर कथाओं का रूप दिया जात है । जो पुराणों की शैली से परिचित नहीं हैं वे उनमें निहित सत्य को ग्रहण नहीं कर सकते । वेदों के सम्बन्ध में भी पाश्चात्यों की भ्रांतिपूर्ण धारणा थी परन्तु मेक्समूलर जैसे शोधकर्ताओं ने उसमें एक समृद्ध ज्ञान का भण्डार खोज निकाला और आर्य-जाति की विचारगरिमा का उद्‌घाटन किया ।

ज्ञान के क्षेत्र में शोध का कार्य निरन्तर जारी रहता है—शोध ज्ञान की किसी एक सीमा तक पहुँचकर रुक नहीं जाता, वह आगे बढ़ता ही जाता है । विज्ञान के सिद्धान्तों को लोग प्रायः शाश्वत मानते रहे हैं । अब यह मान्यता भी खण्डित होने लगी है । वे परिस्थिति-विशेष में भले ही सत्य अथवा अकाट्य रहे हों पर उनकी सत्यता और अकाट्यता सार्वकालिक सिद्ध नहीं हो पायी । उदाहरणार्थ—पहले अणु को पदार्थ का न्यूनतम अंश माना जाता था पर आधुनिक शोध ने परमाणु को उसका न्यूनतम अंश सिद्ध किया है । यद्यपि इसे आधुनिक शोध कहा गया है परन्तु भारतीय सांख्यकारों ने इसका सदियों पूर्व अन्वेषण कर लिया था । वे तो परमाणुओं को तन्मात्राओं से निर्मित मानते हैं । अतः परमाणु भी पदार्थ का सूक्ष्मतम अवयव नहीं है । परमाणु से सूक्ष्म तन्मात्राएँ हैं जिनका आधुनिक वैज्ञानिक संभवतः अनुसंधान करें । इसी प्रकार पहले पदार्थ (मेटर) और ऊर्जा (इनर्जी) को दो भिन्न तत्त्व माना जाता था, पर अद्यतन आविष्कार ने दोनों को एक ही सिद्ध कर दिया है । आइन्सटाइन की इस सिद्धि से प्रेरित होकर जर्मनी के वैज्ञानिक हान और स्टासगान को पदार्थ की ऊर्जा में परिवर्तित कर देने में सफलता प्राप्त हुई । यूरेनियम पदार्थ यदि विशेष मात्रा में एक साथ रख दिए जाएँ तो उसके परमाणु अपने-आप टूटने लगते हैं और इस टूटन से भयंकर अग्नि (ऊर्जा) निःसृत होती है । 'एटम बम' बनाने में यही प्रक्रिया काम में लाई जाती है ।

पहले विज्ञानवेत्ता काल को, जिसे भवभूति ने 'निरवधि' कहा है (कालोहि निरवधिः विपुला च पृथ्वी), सेकण्ड तक विभाजित कर पाए थे । परन्तु अब नये अनुसंधानों के परिणामस्वरूप सेकण्ड भी विभाजित किया जा चुका है ।

---

1. देखिए पुसालकर का ग्रंथ 'स्टडीज़ इन एपिक्स एण्ड पुराणाज़ ऑफ इण्डिया' ।

सन् 1955 की आधुनिक घड़ी में सेकण्ड को 91931770 भागों में विभाजित किया गया। भारतीय तत्त्वान्वेषी इससे भी सूक्ष्मकाल का विभाजन कर चुके हैं। शोधकर्ता का कार्य भूले हुए तथ्य को पुनः प्रकाश में लाना है और उसे पूर्व ज्ञान की श्रृंखला से जोड़ देना है। प्राचीन काल से ही मनुष्य ने सृष्टि के जड़-चेतन तत्त्वों के सम्बन्ध में जो खोज की है, वह साहित्य, दर्शन, ज्योतिष, विज्ञान आदि शास्त्रों की उपलब्धि बन गई है। मन का स्वभाव ही मनन करना है। इसी स्वभाव के कारण वह कभी ज्ञात तथ्यों का समर्थन करता है, कभी उनकी नई व्याख्या करता है और इस प्रकार ज्ञान को अद्यतन बनाए रखता है। भलीभाँति व्याख्यासहित परिकल्पना या समस्या को हल करने की व्यवस्थित तथा तटस्थ प्रक्रिया का नाम ही शोध है।

प्राचीन काल से ही शोध होता रहा है। प्रत्येक युग में नए तथ्य, नए विचार आविष्कृत हुए हों, यह बात नहीं है, परन्तु पुराने विचारों को नवीन रूप देने की क्रिया निश्चय होती रही है। ज्ञात तथ्य की युगानुरूप व्याख्या भी शोध का अंग माना जाता है। "विज्ञान का सृजनशील विकल्प तभी संभव है जब हम अब तक की जानी हुई मौलिक समानताओं तथा असमानताओं के अर्थ की सीमित प्रकृति को समझ लें।—तब मन पुराने बंधनों से मुक्त होकर सावधान और शीघ्र ग्राहक बन जाता है जिससे नए क्रमों की खोज कर सके, जिससे विचारों तथा अवधारणाओं की नई बनावटों को जन्म दे सके··· ।

('मतान्तर' में प्रो० बाम)

बादरायण के ब्रह्मसूत्रों की शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य आदि ने अपने मतों के अनुकूल व्याख्या की, जिसमें उनकी मौलिक सूझबूझ के दर्शन होते हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने कात्यायन के वार्तिकों पर भाष्य लिखकर जो नवीन उद्भावनाएँ की हैं वे आज भी विद्वानों में समादृत हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी को हृदयग्राह्य करने के लिए महर्षि के भाष्य का निर्विवाद महत्त्व है। भरत के नाट्यशास्त्र में रस-निष्पत्ति के सूत्र—'**विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रस-निष्पत्तिः**' की व्याख्या करने में उनके परवर्ती आचार्यों ने जो श्रम किया, उसकी मीमांसा, न्याय तथा सांख्य आदि से प्रभावित जो व्याख्या की, वह क्या शोध का अंग नहीं है? प्राचीन आचार्य या तो स्वतन्त्र ग्रन्थ-रचना करते थे या अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रंथोक्त मतों पर वार्तिक, भाष्य आदि लिखकर उनका नया अर्थ प्रतिपादित करते थे। वार्तिक में उक्त, अनुक्त, द्विरुक्त पर चिन्तन-मनन किया जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनमें आचार्यों ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के ज्ञान में नया अर्थ भरकर उसे युगानुरूप बनाने का प्रयत्न किया है। तात्पर्य यह है कि शोध नए तथ्यों की खोज ही

नहीं, उनकी तर्कसम्मत व्याख्या भी है ।

यूरोप में अरस्तू ने निगमन तर्क-प्रणाली से निर्णायक तथ्य प्रस्तुत करने का उपक्रम किया । इस पद्धति में पूर्वमान्य सिद्धान्त को प्रधान आधार मान लिया जाता है । अनुमानित विश्वास को विशिष्ट उदाहरण द्वारा पुष्ट कर निष्कर्ष निकाला जाता है । जैसे—

प्रधान आधार-वाक्य	देवपुरुष अप्रतिम होते हैं
गौण आधार-वाक्य	राम देवपुरुष हैं ।
निर्णय	अतः राम अप्रतिम हैं ।

यूरोप में तर्क की इस पद्धति ने अनुसंधान में वैज्ञानिक प्रक्रिया को जन्म दिया है । भारतीय नैयायिक की तर्क-पद्धति में अनुमान को स्पष्ट करने के लिए तीन नहीं, पाँच वाक्यों का प्रयोग होता है । जैसे—

राम अप्रतिम हैं—	प्रतिज्ञा
क्योंकि वे देवपुरुष हैं—	हेतु
सभी देवपुरुष अप्रतिम होते हैं—	जैसे कृष्ण, बलराम, बुद्ध, ईसा
राम भी देवपुरुष हैं	उपनय
अतः वे अप्रतिम हैं—	निगमन

यूरोप में बाद के तार्किकों को अनुभव हुआ कि शोध की प्रथम निगमन प्रणाली निर्दोष नहीं है । इसमें पूर्व निर्धारित विश्वास या मान्यता को लेकर अग्रसर होना पड़ता है । अतः बेकन आदि चिन्तकों ने प्रत्यक्ष निरीक्षणजन्य अनुभव को प्रमुखता प्रदान कर अनुसंधेय तथ्य की ओर अग्रसर होने की विधि पुरस्सर की । इसमें विशेष से सामान्य तथ्य तक पहुँचने की क्रिया निहित है । इसे Inductive method of reasoning (तर्क की आगमन प्रणाली) कहा जाता है । इस पद्धति को पूर्व उदाहरण से इस प्रकार समझाया जा सकता है—राम अप्रतिम हैं क्योंकि उनके कृत्य देवपुरुष के समान हैं । (पर वेदान्ती और मीमांसक प्रथम तीन अवयवों को ही पर्याप्त मानते हैं) । अतः देवपुरुष अप्रतिम होते हैं ।

पर यह पद्धति भी सर्वथा निर्भ्रान्त और वैज्ञानिक नहीं जान पड़ी । बेकन परिकल्पना की स्थापना के ही विरुद्ध है, जिसे ठीक नहीं समझा गया । क्योंकि शोध का कोई ध्येय-लक्ष्य निर्धारित किए बिना शोधार्थी अंधकार में ही भटकता रहता है । हाँ, इस बात का ध्यान अवश्य रहे कि येनकेनप्रकारेण परिकल्पना को सिद्ध करने का दुराग्रह न हो । बेकन की आगमन-पद्धति की आलोचना करते हुए लाराबी ने लिखा है—

"यदि कोई यों ही तथ्यों को बटोरना मात्र चाहता हो तो बात दूसरी है । ज्ञान का अन्वेषी वस्तुओं को निरुद्देश्य देखकर शान्त नहीं रह सकता, उसे

उन्हें सोद्देश्य देखना ही चाहिए, अर्थात् उसे किसी परिकल्पना के साथ उनका निरीक्षण-परीक्षण करना चाहिए।"

आइन्सटीन ने भी आगमन पद्धति का विरोध किया है।

डारविन द्वारा इन दोनों पद्धतियों का समन्वय किया गया है। इस समन्वित पद्धति में शोधार्थी किसी प्राक्कल्पना (Hypothesis) को लेकर चलता है और ज्यों-ज्यों तथ्य एकत्र होते जाते हैं, उसका अनुमानित तथ्य या तो सिद्ध हो जाता है या असिद्ध। यदि असिद्ध हो जाता है तो वह पुनः नव प्राक्कल्पना का आधार लेकर तथ्यों का संकलन करता है और उनके आधार पर किसी विशेष निष्कर्ष पर पहुँचता है। इसे स्पष्ट करने के लिए हम एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। मान लीजिए, आपको तुलसी की दार्शनिकता पर शोध-कार्य करना है। आप पहले अपनी समस्या को समझने का प्रयास करते हैं। दार्शनिकता का अर्थ निश्चित करते हैं। फिर तुलसी का ब्रह्म, जगत् और आत्मा के सम्बन्ध में क्या विश्वास है, इसे जानने का प्रयत्न करते हैं। आपके मन में जिज्ञासा होती है—क्या तुलसी ब्रह्म की सत्ता में विश्वास करते हैं ? यदि करते हैं तो उसका क्या स्वरूप निर्धारित करते हैं ? ब्रह्म के स्वरूप के सम्बन्ध में उनकी क्या मान्यताएँ हैं—उसका मानव की आत्मा और जगत् से पूर्ववर्ती दार्शनिकों ने क्या सम्बन्ध माना है ? आपको अध्ययन से ज्ञात हो जाता है कि तुलसी के पूर्व मुख्य रूप से ये मान्यताएँ प्रचलित थीं कि (१) ब्रह्म को सत्य और जगत् को माया (असत्य) और आत्मा को ही ब्रह्म का रूप माना गया है। (२) ब्रह्म को सत्य, जगत् को भी सत्य और आत्मा को ब्रह्म का अंश माना गया है और ब्रह्म की सत्ता सचराचर में व्याप्त प्रतिपादित की गई है। अब आपके सामने समस्या है कि तुलसी को किस मत का सिद्ध किया जाए ? मान लीजिए आप शोधकार्य के पूर्व यह मानकर चलते हैं कि तुलसी शांकर मतावलम्बी हैं अर्थात् ब्रह्म को सत्य और जगत् को माया मानते हैं। यह आपकी अभी प्राक्कल्पना ही है। इसी प्राक्कल्पना के आधार पर आप तुलसी-साहित्य से ब्रह्म और जगत् सम्बन्धी उदाहरण एकत्र करते हैं। व्यवस्थित रूप से आप उनका विश्लेषण कर किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। अन्त में आप अपनी प्राक्कल्पना का या तो समर्थन पाते हैं या विरोध। परिणामतः आपको अपने प्रधान आधार-तथ्य में उचित संशोधन करना पड़ता है और तथ्यों से जो निष्कर्ष निकलता है उसे ही स्वीकारना पड़ता है। इसे ही आगमन और निगमन शैली की मिश्र-पद्धति कहते हैं। यही वर्तमान वैज्ञानिक शोध-पद्धति कहलाती है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

2

वैज्ञानिक अध्ययन के सोपान

ज्ञान को प्राप्त करने के लिए जिस विशिष्ट पद्धति या प्रविधि का उपयोग किया जाता है उसे ही वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं। स्टुआर्ट का कथन है कि विज्ञान, **पद्धति में निहित है, विषय-वस्तु में नहीं।**

'विषय-वस्तु' अर्थात् अनुसंधेय वस्तु भिन्न-भिन्न हो सकती हैं पर उनका ज्ञान प्राप्त करने की प्रविधि का एक ही मार्ग है—वह है विज्ञान का।

वैज्ञानिक अध्ययन के विकास को लुंडबर्ग ने चार सोपानों में व्यक्त किया है—

पहला सोपान है—**उद्देश्यहीन निरीक्षण**। मनुष्य अपने दैनिक जीवन में अनेक घटनाओं, दृश्यों का निरुद्देश्य निरीक्षण करता रहता है। निरीक्षण करते-करते सहसा कोई सत्य उसके मस्तिष्क में कौंध जाता है। न्यूटन को पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का ज्ञान निरुद्देश्य निरीक्षण से ही हुआ था। उसने देखा वृक्ष से सेब नीचे गिरता है, ऊपर फेंकने पर चीज़ें नीचे ही गिरती हैं। सहसा उसके मस्तिष्क में यह तथ्य कौंध उठा कि पृथ्वी में कोई ऐसी शक्ति है जो ऊपर के पदार्थों को नीचे आर्कषित करती है।

दूसरा **सोपान व्यवस्थित अनुसंधान का है।** मनुष्य की बुद्धि जैसे-जैसे परिपक्व होती गई, वह तार्किक बनती गई। उसने ज्ञान को प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित रूप से प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। सोद्देश्य क्रमबद्ध अध्ययन से जो निष्कर्ष निकला वही वैज्ञानिक नियम बन गया।

तृतीय सोपान वह है जिसमें **अध्येता** विषय को निश्चित कर लेता है पर उस पर अध्ययन करने के लिए **कोई विशिष्ट परिकल्पना का निर्वाचन नहीं करता**। परिणामतः अध्ययन की कोई दिशा निर्धारित नहीं हो पाती। इस स्थिति में उसे कामचलाऊ परिकल्पना से काम लेना पड़ता है और ज्यों-ज्यों तथ्य एकत्र होते जाते हैं वह उस कामचलाऊ परिकल्पना को या तो त्याग देता है या उसमें सुधार कर लेता है। अध्ययन का यह तृतीय सोपान अधिक विश्वसनीय सिद्ध हुआ।

चतुर्थ सोपान में अध्ययन कामचलाऊ परिकल्पना या नई परिकल्पना के साथ प्रारम्भ नहीं होता। इससे पूर्व निर्धारित नियम या सिद्धान्त की परीक्षा मात्र की जाती है। परीक्षा के लिए नये-नये प्रयोग किए जाते हैं।

3

शोध की वैज्ञानिक प्रणाली

यह युग विज्ञान का है। अतः प्रत्येक समस्यामूलक तथ्य की परीक्षा वैज्ञानिक ढंग से की जाती है। वैज्ञानिक प्रणाली जार्जबर्ग के शब्दों में "वैज्ञानिक निरीक्षण, विभाजन और तथ्यों की व्याख्या है।" जार्जबर्ग की इस व्याख्या में वैज्ञानिक निरीक्षण शब्द साभिप्राय है। यों हम दृष्टिपथ में आनेवाली प्रत्येक वस्तु को सहज भाव से देखते ही रहते हैं पर जब किसी वस्तु को विशेष प्रयोजन से देखते हैं तब वह देखना वैज्ञानिक निरीक्षण कहलाता है। उदाहरणार्थ, आप जब किसी कविता को सहज ही न पढ़कर उसमें निहित काव्य-सौन्दर्य का विश्लेषण करने लगते हैं तब आप वैज्ञानिक अध्ययन की ओर प्रवृत्त होते हैं। आप उसके भाव-पक्ष और उसके कला-पक्ष, भाषा, छन्द-अलंकार आदि की परीक्षा करते हैं।

तात्पर्य यह कि वैज्ञानिक निरीक्षण सोद्देश्य होता है।

कार्ल पियर्सन ने वैज्ञानिक प्रणाली के निम्न लक्षण प्रस्तुत किए हैं—

(1) तथ्यों का सतर्कतापूर्वक सम्यक् विभाजन और क्रमानुसार उनके परस्पर सम्बन्ध का संयोजन, तथा

(2) सृजनात्मक कल्पना के आधार पर वैज्ञानिक नियम का निर्धारण।

वैज्ञानिक पद्धति से जो निष्कर्ष निकाला जाए, जो नियम निर्धारित किया जाए, वह सर्वदेशीय और सार्वकालिक हो। यह बात यद्यपि कही जाती है पर यह प्रत्येक वैज्ञानिक नियम के सम्बन्ध में सत्य सिद्ध नहीं होती। परिस्थिति और कतिपय शर्तों के साथ ही वैज्ञानिक नियमों की अकाट्यता सिद्ध हो सकती है। शोधकर्ताओं के नये आविष्कारों ने विज्ञान-जगत् की मान्यताओं को खण्डित कर दिया है, जिनका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं।

शुद्ध विज्ञान में जब नियम या निष्कर्ष सर्वकालिक एवं सर्वपारिस्थिक नहीं रह जाते तब साहित्य, शिक्षा, समाज, विज्ञान आदि मानविक विषयों में निष्कर्ष जहाँ मानवचिन्तन युगानुरूप तथ्यों को व्याख्यायित करता है, कैसे अकाट्य या शाश्वत रह सकते हैं? एक सामान्य उदाहरण हिन्दी साहित्य के कवि केशवदास का ही लीजिए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी रचनाओं से कुछ अंश उद्धृत कर उन्हें हृदयहीन और अकवि घोषित किया। बहुत समय तक केशव का मूल्यांकन आचार्य शुक्ल के निष्कर्षों के आधार पर होता रहा पर अब केशव की उन्हीं पंक्तियों को, जिनके आधार पर केशव आचार्य द्वारा अकवि, निर्णीत

हुए थे, नया अर्थ दिया जा रहा है और उनसे केशव सहृदय कवि निर्धारित किए जा रहे हैं। साहित्य के निष्कर्ष युगानुरूप निष्कर्ष और व्याख्यानुसार परिवर्तित होते रहते हैं। ज्ञान नव-नव अनुभवों के कारण विस्तृत या व्याख्यायित होता जाता है।

4

शोध-प्रकार

(1) उद्देश्य की दृष्टि से

शोध दो प्रकार के हो सकते हैं। एक प्रकार वह है जिसका उद्देश्य केवल वैज्ञानिक पद्धति से अनुमानित परिकल्पना के आधार पर किसी तथ्य या सिद्धान्त का शोध करना है। इसे शुद्ध शोध (Pure Research) कहते हैं। उदाहरणार्थ आइंस्टाइन के पदार्थ और ऊर्जा को अभिन्न सिद्ध करने के अनुसन्धान को हम शुद्ध शोध के अन्तर्गत रख सकते हैं। दूसरा प्रकार वह है जिसका उद्देश्य शुद्ध शोध के परिणाम को व्यावहारिक बनाने की दिशा में प्रयत्न करना होता है। इसे व्यावहारिक या कार्यशील शोध (Practical or Action Research) की संज्ञा दी जाती है। आइंस्टाइन के शुद्ध शोध को आधार बनाकर एटम-बम बनाने का जो शोध-कार्य किया गया वह व्यावहारिक या कार्यशील शोध के अन्तर्गत आएगा।

(2) काल की दृष्टि से

(1) **ऐतिहासिक शोध** में मानव के विविध दिशाओं जैसे साहित्य, संस्कृति, भाषा, विज्ञान आदि में होनेवाले भूतकालिक प्रयत्नों, कार्यों का वैज्ञानिक पद्धति से अन्वेषण होता है, जिससे अतीत को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समझने की सुविधा हो सके।

(2) **व्याख्यात्मक या वर्णनात्मक शोध** में मानव-जीवन की सभी वर्तमान समस्याओं पर, चाहे वे साहित्य, समाज-विज्ञान या शुद्ध विज्ञान से सम्बन्ध रखती हों, अनुसन्धान किया जाता है। वर्णनात्मक शोध में तथ्यों का संकलन मात्र न होकर उनकी व्याख्या होती है और मूल्यांकन होता है। सामाजिक विज्ञानियों ने इस प्रकार के शोध का निश्चित पारिभाषिक शब्द स्थिर नहीं किया। कोई इसे 'वर्णनात्मक-शोध' और कोई 'सर्वे-शोध' कहते हैं। पहला

नामकरण भी बहुत एकार्थक नहीं है। प्रायः सभी प्रकार के शोधों में वर्णन या व्याख्या होती है। 'सर्वे-शोध' विशेष प्रकार की शोध-समस्या के हल में कार्यान्वित होता है।

सर्वेक्षण या सर्वे-शोध—इसका प्रयोग शिक्षा तथा समाजशास्त्रीय विषयों में होता है। इसमें समाज से सम्बद्ध तथ्यों का निरीक्षण और संकलन किया जाता है। उसका सामान्य सांख्यिकी से सम्बन्ध रहता है। यह निश्चित समस्या का सावधानीपूर्ण विश्लेषणसहित तर्कपूर्ण हल प्रस्तुत करता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत, शैक्षणीय, समाजशास्त्रीय, अर्थशास्त्रीय, भाषा-विज्ञानीय आदि सर्वे-कार्य सम्पन्न होता है। 'The Social survey is in brief a method of analysis in scientific, and orderly form and for defined purposes of a given social situation or problem or population.
—Morse

(3) **प्रयोगात्मक शोध** से सावधानीपूर्वक नियन्त्रित परिस्थिति में किसी समस्या का क्या परिणाम निकलेगा, यह ज्ञात होता है। यह विज्ञान की प्रयोगशाला की प्राचीन पद्धति है। यह प्रविधि अन्य प्रकार के शोधों से अधिक जटिल है। इसकी उपयोगिता सुव्यवस्थित और नियन्त्रित प्रयोगशालाओं में ही साधित हो पाती है। इसे शालीय कक्षाओं में भी किन्हीं सीमाओं के अन्तर्गत प्रयुक्त किया जा सकता है।

यदि दो स्थितियाँ प्रत्येक दशा में समान हों और उनमें से एक में एक तत्त्व को जोड़ दिया जाए पर दूसरे में न जोड़ा जाए तो उस स्थिति से जो अन्तर आएगा, वह जोड़े हुए तत्त्व का परिणाम होगा। अथवा दो समान स्थितियों में से केवल एक से एक तत्त्व घटा दिया जाए तो घटाने से जो अन्तर आएगा वह उस घटाए हुए तत्त्व का परिणाम होगा।

'एकल विभेद-नियम' (लॉ ऑफ़ सिंगल वेरीएशन) प्रयोगशाला में होने वाले प्रयोगों का प्रायः आधार बनता है। राबर्ट बॉयल ने इसी प्रविधि के आधार पर 'गैसों का नियम' निर्धारित किया। मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में भी इस नियम के आधार पर प्रयोग किए जाते हैं। वैद्यकीय शोध (मेडिकल रिसर्च) भी इसी नियम के आधार पर किए जाते हैं। द्वितीय महायुद्ध के समय वैद्यकीय शोध-कमीशन ने कुछ ऐसी औषधियों की परीक्षा करनी चाही जो समुद्र की बीमारी में लाभप्रद हों। छह महीने तक डॉ० डेविड टेलर ने 20 हज़ार सैनिकों पर दवाइयों का प्रयोग किया। ये सैनिक स्वेच्छ रूप में एक लाख सैनिकों में से चुने गए थे। कई औषधियों का उपयोग किया गया। अन्त में बेलोडीना और बारबीटुरेट से तैयार की गई औषधियाँ अधिक प्रभावकारी सिद्ध पाई गईं। प्रयोग करते समय कुछ सैनिकों को कोई भी

औषधि नहीं दी गई और कुछ को दी गई। जिन्हें नहीं दी गई वे बीमार पड़े और जिन्हें दी गई, वे बीमारी से बचे रहे।

यहाँ 'लॉ ऑफ़ सिंगल वेरीएशन' (एकल तत्त्व विभेद-नियम) का आधार लिया गया। शिक्षा में छात्रों की बौद्धिक क्षमता आदि की जाँच के समय भी इसी नियम को आधार बनाया जाता है। इस नियम को जॉन स्टुअर्ट मिल ने प्रतिपादित किया था। इस नियम को और स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम एक और उदाहरण नीचे दे रहे हैं—

मान लीजिए क-ख-ग व्यक्तियों के एक समूह के भोजन-तत्त्व हैं।

और द-ख-ग व्यक्तियों के दूसरे समूह के भोजन-तत्त्व हैं।

दोनों समूहों के व्यक्तियों के वज़न और स्वास्थ्य में कोई अन्तर नहीं है। डाक्टरी परीक्षा से यह निश्चित हो चुका है। वज़न बढ़ाने के लिए हम गाय के दूध तत्त्व 'द' की क्षमता का प्रयोग करना चाहते हैं। हमने दूसरे समूह के व्यक्तियों को गाय का दूध 'द' तत्त्व दिया और पहले समूह के व्यक्तियों को उससे वंचित रखा। पन्द्रह दिन के पश्चात् हमने डॉक्टरी जाँच में पाया कि प्रथम समूह के व्यक्तियों के वज़न में कोई वृद्धि नहीं हुई पर द्वितीय समूह के व्यक्तियों का वज़न बढ़ा। हमने दोनों समूहों के व्यक्तियों के भोजन में पदार्थों और मिकदारों में कोई अन्तर नहीं होने दिया था। केवल दूसरे समूह के भोज्य पदार्थों में गाय का दूध जोड़ दिया था। अतः सिद्ध हुआ—'दूध भारवर्धक तत्त्व' है। दूसरे समूह के भोजन में एक तत्त्व बढ़ाया गया और पहले समूह के भोजन में एक तत्त्व की कमी रखी गई। फल अभिवृद्ध-तत्त्व का कारण है।

अब यदि दोनों समान स्थितियों के समूहों में प्रत्येक में 'द' तत्त्व जोड़ दिया जाए तो दोनों समूहों का परिणाम एक होगा जिसे हम 'व' कहेंगे।

क+ख+द=व

क+ख+द=व

अतः 'द' कार्य का परिणाम 'व' हुआ।

यहाँ यह स्मरण रहे कि यह कारण-कार्य-सम्बन्ध तभी सिद्ध होगा जब हम परिस्थितियों पर समान रूप से नियंत्रण रख सकें। इस नियम की कठिनाई यही है कि परिस्थितियों की समान स्थिति बनाए रखना सहज साध्य नहीं है।

इसी नियम को हम एक आलेख द्वारा प्रस्तुत कर रहे हैं—

परिस्थिति के तत्त्व त

क	ख	द

—परिणाम—व

इसलिए सिद्ध हुआ कि द का परिणाम व होता है ।

5

शोध और समीक्षा

क्या शोध समीक्षा है ? क्या समीक्षा शोध नहीं है ? दोनों प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' और 'नहीं' में दिए जा सकते हैं । शोध, समीक्षा नहीं है पर उसमें समीक्षा का अंश रहता है । जब तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है तब उनका मूल्यांकन भी किया जाता है । इस दृष्टि से 'शोध' में समीक्षा का समावेश अवश्यम्भावी हो जाता है । इसके विपरीत 'समीक्षा' में 'शोध' का अंश आवश्यक नहीं है । जहाँ शोध में तटस्थता की अनिवार्यता होती है वहाँ समीक्षा में तटस्थता अनिवार्य नहीं होती । समीक्षा में समीक्षक का समीक्ष्य कृति के प्रति तटस्थ भाव धारण करना आवश्यक नहीं है । समीक्षा आत्मपरक अधिक होती है । प्रभाववादी समीक्षा तो स्वयं एक 'साहित्य' का रूप धारण कर लेती है । मार्क्सवादी समीक्षा में मार्क्स के सिद्धान्त कृति के मूल्यांकन की कसौटी बनते हैं । समीक्षक का 'वाद' प्रायः कृति की समीक्षा का आधार बनता है । आत्मपरकता शुद्ध शोध में प्रायः बाधक बनती है, बनी है ।

'शोध' का प्रस्तुतीकरण विशिष्ट प्रविधि के अनुरूप होता है । समीक्षा के प्रस्तुतीकरण की कोई निर्दिष्ट प्रविधि नहीं होती । प्रत्येक समीक्षक अपने ढंग से उसे प्रस्तुत करने में स्वतन्त्र है ।

'शोध' के प्रस्तुतीकरण की प्रविधि विषय के अनुरूप भिन्नता धारण करती है । साहित्य की समीक्षा के प्रस्तुतीकरण में समीक्षक की अपनी रुचि प्रधान होती है, उसका माध्यम गद्य या पद्य बन सकता है । समीक्षा सूत्र का रूप धारण कर सकती है । यथा—

1. "सूर सूर तुलसी शशी, उडुगन केशवदास"
2. उपमा कालिदासस्य, भारवे अर्थ गौरवम्, दंडिनः पद-लालित्यम्, माघे सन्ति त्रयोगुणाः)

अथवा दीर्घ भाष्य (व्याख्या) आदि का रूप धारण कर सकती है। शोध पद्य में नहीं, गद्य में ही तर्कपूर्ण विश्लेषणात्मक निष्कर्ष सहित प्रस्तुत होता है। अतः शोध और समीक्षा के अपने भिन्न-भिन्न क्षेत्र हैं। निष्कर्ष यह है कि **शोध समीक्षासहित होता है, परन्तु समीक्षा का शोधसहित होना बिल्कुल आवश्यक नहीं है।**

6

शोध का अधिकारी कौन है ?

प्रश्न उठता है कि जितने छात्र विश्वविद्यालय के शोध-अध्यादेश के नियमों के अन्तर्गत पंजीकृत होते हैं क्या वे सब सचमुच शोध के अधिकारी हैं ? शोधकर्ता में जिन गुणों की आवश्यकता अपेक्षित है उन्हें नीचे चर्चित किया जाता है—

(1) **जिज्ञासा**—ज्ञान के प्रति अटूट औत्सुक्य। शोध, ज्ञान-उपलब्धि के प्रयोजन से किया जाता है। जिस व्यक्ति में तथ्यों को जानने की तीव्र व्याकुलता हो वही शुद्ध अनुसंधित्सु हो सकता है। ब्रह्म सूत्रकार वादरायण 'ब्रह्म' के रहस्य को समझने का प्रारम्भ ही 'जिज्ञासा' से करते हैं—"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा"। वे नये दर्शन का सूत्रपात न कर श्रुति वर्णित 'ब्रह्म' का ही अनुसंधान करना चाहते हैं। परन्तु जो, पकवान (Cooked Matter) सेवन का आदी है अर्थात् पूर्ववर्ती विचारकों के विचारों का चर्वण-मात्र करना जानता है उसे शोध का अधिकारी नहीं माना जा सकता। ऊपर हमने कुछ विद्वानों के कार्यों का उल्लेख किया है कि उन्होंने ज्ञान की प्राप्ति के लिए कितनी लगन और तत्परता प्रदर्शित की। ज्ञान का जिज्ञासु विपरीत परिस्थितियों पर भी विजय प्राप्त करता है और अपने लक्ष्य तक पहुँचे बिना विश्राम नहीं लेता। हमारे कई छात्र पंजीकृत होने के बाद महीनों मौन रहते हैं। पूछने पर कोई न कोई अपरिहार्य आपत्ति का वर्णन करने लगते हैं। कुछ समय बाद मिलने पर कोई दूसरी अड़चन आ जाने का उदास मुद्रा में उल्लेख करते हैं। और इस तरह महीनों-वर्षों उनका शोधकार्य चलता रहता है, परन्तु कागज़ पर नहीं उतरता। शोध की पहली शर्त विषय के प्रति जिज्ञासा है। इसके अभाव में शोधकार्य हो ही नहीं सकता।

(2) **गृहीत विषय का ज्ञान**—जो विषय लिया जाए उसका उसे ज्ञान होना चाहिए। आज तो स्थिति यह है कि छात्र निर्देशक के पास पहुँचता है। कहता है, मुझे कोई विषय दीजिए। जब उससे पूछा जाता है कि कहो तुम किस विषय पर कार्य कर सकते हो, तो चट कह देता है, "साहब, आप जो भी विषय देंगे उस पर मैं मनोयोग के साथ कार्य करूँगा।" इसका अर्थ यह है कि वह किसी एक विषय के प्रति आस्थावान नहीं है। जब तक शोधार्थी का कोई अपना विषय नहीं होता तब तक उसकी कार्य में रुचि नहीं बढ़ सकती। जिस विषय को वह अपने अध्ययन के लिए चुन ले उस विषय पर कितना कार्य हो चुका है इसका उसे ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। तभी वह जान सकेगा कि उस विषय की ऐसी कौन-सी दिशा है जो अछूती रह गई है और जिस पर वह अपने कार्य से उसकी पूर्ति कर सकता है। विषय पर उपलब्ध सामग्री का ज्ञान न होने से ही पिष्टपेषण होता है।

(3) **क्षमता**—गृहीत विषय पर कार्य करने की क्षमता आवश्यक है। एक बार एक प्रौढ़ शोधार्थी मेरे पास आए। कहने लगे, मैं विश्व आलोचना-साहित्य पर कार्य करना चाहता हूँ। यह तो आप मानेंगे ही कि इस विषय पर किसी ने हिन्दी में कार्य नहीं किया है। मैंने कहा, हिन्दी में किसी को कार्य करने का साहस ही नहीं हुआ। आपका साहस प्रशंसनीय है, पर क्या मैं जान सकता हूँ कि आप विश्व के साहित्य से कितने परिचित हैं? क्या आप भारतीय भाषाओं के साहित्य से भी परिचित हैं? उन्होंने बिना झिझक के कहा—"आप चिन्ता न कीजिए। मैं परिचित हो जाऊँगा। यद्यपि मैं संसार की भाषाएँ नहीं जानता परन्तु अंग्रेज़ी में प्रायः प्रत्येक भाषाओं के आलोचनात्मक इतिहास मौजूद हैं। मैं पढ़कर काम चला लूँगा। बस आप मेहरबानी करके मेरा पंजीयन करा दीजिए।" मैंने उनसे अधिक बहस नहीं की। अपनी असमर्थता दिखाकर उनसे छुट्टी ले ली।

शोधार्थी को विषय लेते समय अपनी क्षमता और अपनी सीमाओं का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। जिस भाषा का उसे ज्ञान नहीं है उस भाषा के साहित्य पर अनुवाद के सहारे शोधकार्य नहीं हो सकता। किसी एक विषय का अनुसंधान अन्य विषयों के ज्ञान की भी अपेक्षा रखता है। उदाहरणार्थ यदि तुलसी की दार्शनिकता पर कोई कार्य करना चाहता है तो उसके लिए तुलसी साहिय का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं। उसे भारतीय दर्शन का भी ज्ञान प्राप्त करना होगा। तुलसीकालीन धार्मिक और राजनीतिक इतिहास से भी परिचित होना पड़ेगा। तुलसी की भाषा अवधी के परिचय के बिना तुलसी का सांगोपांग अध्ययन संभव नहीं है। 'कबीर' पर शोधकार्य सिद्ध और नाथ साहित्य के अध्ययन के बिना अधूरा ही रहेगा। और इसके लिए अपभ्रंश का

सामान्य तथा तत्कालीन धार्मिक स्थिति का अच्छा ज्ञान आवश्यक है। अतः शोधार्थी का कार्य एक भाषा और एक विषय के ज्ञान से सम्पन्न नहीं होता। साहित्य और विशेषकर विज्ञान के शोधार्थी को प्रबन्ध की भाषा के अतिरिक्त जर्मन, रूसी या फ्रेंच भाषा का प्रमाणपत्र आवश्यक होता है। हिन्दी के शोध-कर्ता के लिए हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत और एक या दो भाषाओं का ज्ञान भी आवश्यक है। प्रायः देखा गया है कि शोधार्थी संस्कृत अंक लिखने में भी प्रमाद कर जाते हैं। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम तक तो ठीक-ठीक लिख जाते हैं परन्तु जब पंचम की तुक पर षष्ठम लिखा जाता है तो शोधार्थी को उपाधि प्रदान करने की संस्तुति क्षोभजनक होती है। प्रबन्ध में अज्ञानवश वर्तनियों की अशुद्धियाँ पाई जाती हैं जिन्हें टंकण-दोष कहकर क्षमा कर दिया जाता है।

(4) **कार्य-संलग्नता**—शोधार्थी को अपये कार्य में जुटे रहने की धुन होनी चाहिए। सामग्री उपलब्ध करने में बाधाएँ आती हैं। कभी-कभी अपमानित भी होना पड़ता है। लोग सन्देह की दृष्टि से भी देखने लगते हैं। शारीरिक कष्ट भोगने तक की नौबत आ सकती है। अतः प्रत्येक परिस्थिति से जूझने के लिए शोधार्थी को तत्पर रहना चाहिए और अपने कार्य में लेषमात्र भी ढिलाई न आने देनी चाहिए। कई विद्वानों ने अस्वस्थावस्था में भी अपने गृहीत कार्य को करने में प्रमाद नहीं किया।

(5) **कृतज्ञता**—शोधकर्ता को अपने कार्य-संपादन में कई व्यक्तियों तथा संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है। अतः उसके स्वभाव में कृतज्ञता का भाव होना चाहिए, अन्यथा वह किसी से उदारतापूर्वक दुर्लभ सामग्री प्राप्त नहीं कर पाएगा। एक प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ ने मुझसे कहा था कि मैंने नगण्य से नगण्य सहायता का आभार माना है और इससे मेरे 'कार्य' में बड़ी सहायता मिली है। डॉ० ग्रियर्सन में यह गुण प्रचुर मात्रा में था। यही कारण है कि वे भाषा और साहित्य के अध्ययन तथा शोध-कार्य को सरलता से सम्पादित कर सके। शोध का कार्य एक व्यक्ति द्वारा साध्य नहीं होता, उसमें अनेक व्यक्तियों की सहायता अपेक्षित होती है। Research is a team work (शोध टोली-कार्य है)। यदि शोधकर्ता अपने सहयोगियों के प्रति उदार तथा कृतज्ञ नहीं रहता तो उसे उनसे पर्याप्त और उचित सहायता नहीं मिलती। कुछ शोधकर्ता जिनसे सामग्री प्राप्त करते हैं, उनका नामोल्लेख तक नहीं करते। इससे उनकी असंस्कारिता तो प्रकट होती ही है उनका भावी 'कार्य' भी कष्टसाध्य हो जाता है।

(6) **लेखन-क्षमता**—शोधार्थी को जब तक अपनी भाषा पर समुचित अधिकार नहीं होगा, उसका 'प्रबन्ध' शिथिल ही रह जाएगा। भाषा-शैथिल्य

उसकी गरिमा को घटा देता है। विषय-ज्ञान के रहते हुए भी भाषा-दोष के कारण कई बार 'प्रबन्ध' अस्वीकृत कर दिए जाते हैं। साहित्य की अन्य विधाओं—नाटक, कहानी, उपन्यास में प्रसंगानुसार भाषा-दोष गुण माना जाता है। नाटक में अशिक्षित असंस्कारी पात्र प्राञ्जल भाषा बोलकर 'नाटक' में अस्वाभाविकता का दोष उत्पन्न कर देता है। इसके विपरीत उसकी भाषा में 'च्युति-संस्कृति' उसका गुण माना जाता है। 'प्रबन्ध' की भाषा अखबारी भाषा नहीं हो सकती। वह प्रौढ़ और विषयानुरूपिणी पारिभाषिक सम्पन्न होनी चाहिए।

(7) **वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तटस्थता**—शोधकर्ता को अपने विषय-प्रतिपादन में तटस्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता होती है। भावुक और स्वमताग्रही अच्छा शोधकर्ता नहीं हो सकता। तटस्थता से ही सत्य का संधान सम्भव है। उदाहरण के लिए यदि आप तुलसी के जन्म-स्थान का निर्धारण करना चाहते हैं तो आपको इस विषय पर विद्वानों के विभिन्न मतों की तटस्थ दृष्टि से परीक्षा करनी होगी। कुछ विद्वान उनका जन्म-स्थान सोरों, कुछ तारी, कुछ राजापुर और कुछ अयोध्या प्रतिपादित करते हैं। यदि आप स्थान-विशेष के प्रति पूर्वाग्रही हैं तो आप भिन्न-भिन्न मतों की निष्पक्ष परीक्षा नहीं कर पाएँगे। इसीलिए शोधकर्ता के लिए तटस्थव्रती होना अनिवार्य शर्त है। अंग्रेज़ी मुहावरे में कहा जा सकता है कि "Researcher must possess scientific frame of mind."

वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाला व्यक्ति सहज श्रद्धालु नहीं होता, वह प्रत्येक तथ्य को तर्क की कसौटी पर कसने के उपरान्त किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है। इसका यह अर्थ भी नहीं कि वह दूसरों के अनुभवों से लाभ नहीं उठाता। उठाता है पर तर्क की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही। तटस्थता और वैषयिकता (objectivity) वैज्ञानिक प्रणाली के अध्ययन करने वाले शोधार्थी के अनिवार्य गुण हैं। ग्रीन के शब्दों में "Objectivity is the willingness and ability to examine evidence dispassionately." (Sociology, p. 2.)

(वैषयिकता साक्ष (प्रमाण) की तटस्थ भाव से परीक्षण करने की इच्छा तथा योग्यता में निहित रहती है।)

7

शोधकार्य—एक दृष्टि

भारत में अंग्रेज़ों के आगमन के पश्चात् से आधुनिक शोध-प्रणाली के आधार पर शोध-कार्य प्रारम्भ हुआ। लार्ड कर्ज़न ने पुरातत्त्व सामग्री की रक्षा का कानून बनाकर हमारी प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार में प्रशंसनीय योगदान दिया। कलकत्ते में सर विलियम जोन्स के प्रयत्न से रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना हुई, जिसके शोध जरनल के माध्यम से भारतीय भाषा, साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व आदि के सम्बन्ध में जो शोधकार्य प्रकाश में आया है वह अत्यन्त महत्त्व का है। स्वयं जोन्स संस्कृत के विद्वान् थे। उन्होंने यूरोप के भाषाशास्त्रियों का ध्यान संस्कृत की ओर आकृष्ट कर यह निर्दिष्ट करने का प्रयत्न किया कि संस्कृत का सम्बन्ध ग्रीक और लेटिन से अधिक है और इस तरह उन्होंने आर्य भाषा के मूल स्रोत की ओर शोधकार्य करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया। जोन्स के पूर्व सन् 1588 में फ्लोरेंस के फिलिप्पो सारसेट्टी ने संस्कृत, ईरानी, ग्रीक, लेटिन तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं की समानताओं की चर्चा की थी। फिलिप्पो व्यापारी था—विभिन्न देशों में भ्रमण कर उसने उनमें भाषा की समानता परिलक्षित की थी। आज भाषाविज्ञानी यूरोपीय भाषाओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इन सबका स्रोत कोई एक मूल भाषा अवश्य रही है जिसका काल निर्धारित करना कठिन है। फिर भी उन्होंने उस आदि भाषा की कुछ ध्वनियों का बहुत-कुछ अनुमान लगा लिया है।

रूस के बारानिकोव्ह ने महाभारत तथा रामचरितमानस का रूसी में अत्यन्त श्रम और लगन से रूपान्तर किया है। उनकी रामचरितमानस पर लिखी भूमिका भी उनके शोधपरक चिन्तन को प्रकट करती है। रूस के ही एक विद्वान ने कुछ वर्ष पूर्व हिन्दी भाषा का व्याकरण लिखा है जिसमें उनकी हिन्दी भाषा की वर्तमान प्रवृत्ति का सूक्ष्म अध्ययन मिलता है। जर्मन संस्कृतज्ञ विन्टरनित्स ने भारतीय साहित्य का जो इतिहास लिखा है वह भारतीय विद्वानों के लिए भी संदर्भ-ग्रंथ बन गया है। विन्टरनित्स में शोधक की सच्ची भावना थी। जहाँ वे सन्देह में पड़ गए वहाँ उन्होंने अपने कथन के पूर्व सम्भवतः (Probably) का प्रयोग किया है। वे लिखते हैं, "जब तक मुझे कोई तथ्य निश्चित रूप से ज्ञात न हो जाए तब तक तो मुझे अपने कथन के साथ इसी शब्द का प्रयोग करना पड़ेगा।" भारत में प्राचीन साहित्य के लिए उन्हें कई

स्थलों पर अनुमानित परिकल्पना के साथ कार्य प्रारम्भ करना पड़ा है। जब तक अपने कथन के समर्थन में असंदिग्ध प्रमाण प्राप्त न हो सकें तब तक अनुसंधाता को दृढ़तापूर्वक कोई निष्कर्ष पाठकों पर नहीं थोपना चाहिए। प्रो० मेकडोनाल्ड (ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के वैदिक साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान) के ग्रंथों का भारतीय प्राच्यविद्या-प्रेमियों में बड़ा आदर है। डॉ० कीथ, प्रो० लुईस आदि यूरोपीय विद्वानों के भारतीय भाषा और साहित्य के क्षेत्र में शोधित कार्य से विदेशी विद्वानों की ज्ञान-पिपासा इतनी तीव्र है कि ये हमारे धर्म तथा दर्शनों पर भी बड़े श्रम से अनुसंधान कर उनका इतिहास लिखते हैं। प्रो० हाफकिन्स, 'फर्कुहार' आदि का इस दिशा में बहुमूल्य योगदान है।

फादर थॉमस स्टिफेन्सन ने, जो अक्तूबर 1579 में गोवा आए थे, संस्कृत, मराठी और कोंकणी का अध्ययन कर कोंकणी भाषा का प्रथम व्याकरण लिखा। यह एक यूरोपीय द्वारा रचित भारतीय भाषा का प्रथम व्याकरण था। फादर जोहान अर्न्स्ट (Ernst) प्रथम यूरोपीय थे जिन्होंने संस्कृत भाषा का व्याकरण लिखा। बॉप और ग्रिम ने संस्कृत, ग्रीक, लेटिन और अन्य भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण लिखा। रूसी विद्वान बोह्लिग्क (Bohtlingk) और रॉथ ने सेंटपीटर्सबर्ग में संस्कृत और जर्मन-कोश कई जिल्दों में सन् 1852-1875 के मध्य प्रकाशित किया।

विल्सन ने ऋग्वेद और विष्णु पुराण का विस्तृत टिप्पणियों सहित प्रकाशन किया। बाद में इन्होंने भारतीय रंगमंच पर भी पुस्तक लिखी। मेक्समूलर ने ब्रिटेन में बैठे-बैठे ही सन् 1849 से 1874 तक पच्चीस वर्षों में ऋग्वेद का प्रामाणिक संस्करण तैयार किया। उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ Sacred Books of the East सीरीज़ में 49 ग्रंथ प्रकाशित किए। मिनसेट ने अशोक-शिलालेखों की लिपि पढ़ने में सफलता प्राप्त की। कनिंघम ने पुरातत्त्व के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के उत्खनन से नई सभ्यता प्रकाश में आई है पर अभी उसपर अधिक से अधिक शोधकार्य होना शेष है। प्रश्न यह है कि क्या वह सभ्यता वैदिक सभ्यता से सम्बद्ध है या किसी और सभ्यता का अवशेष है? सीलों आदि के अक्षरों की लिपि भी शोध्य है।

वैदिक साहित्य पर लुडविंग और गोल्डनबर्ग का कार्य महत्त्वपूर्ण है। (सन् 1893-1975)

अंग्रेज़ी (ब्रिटिश) शासन के प्रारम्भिक काल में कतिपय विद्याप्रेमी आई० सी० एस० अधिकारी अपने विहित शासकीय कार्यों के अतिरिक्त भी भारतीय भाषा और संस्कृति का गहन अध्ययन करते रहे हैं जिससे भारतीय विद्वानों को भी प्रेरणा मिलती रही है। जार्ज ग्रियर्सन के नाम से हिन्दी-साहित्य और भाषा के अध्येता अपरिचित नहीं हैं। उनके गुरु जे० एटकिन्सन्स

बड़े मेधावी थे। उन्होंने पाणिनि की अष्टाध्यायी कंठस्थ कर ली थी और उसका उसी प्रकार पाठ कर सकते थे जिस प्रकार कोई भारतीय पंडित कर सकता था। संस्कृत व्याकरण की कठिन से कठिन गुत्थियाँ वे उचित सूत्रों के उद्धरणों के साथ सुलझा देते थे। संस्कृत के अतिरिक्त फ्रेंच, लेटिन, अंग्रेज़ी, रूसी, चीनी, हिन्दी, तमिल, तेलगु आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। भाषाओं के साथ-साथ वनस्पति-विज्ञान में उनकी रुचि थी। वे वाद्ययंत्र वायलिन के भी अच्छे वादक थे। खेलों में मुगदर, छड़ी, जुजुत्सू में उनकी गति थी। एटकिन्सन्स के समान ही परिश्रमी शोधकर्ता पेरिस के प्रो० सेलवेल लेवी थे, जो अनेक यूरोपीय भाषाओं के अतिरिक्त चीनी, तिब्बती, पाली, संस्कृत आदि भाषाओं के आचार्य थे। दिन-रात शोध में जुटे रहते थे। रूसी-संस्कृत पंडित श्चेवस्की के सम्बन्ध में राहुलजी का कहना था कि संस्कृत तथा दर्शन का इतना प्रकाण्ड पंडित मैंने नहीं देखा। जर्मन प्रोफेसर रम्यूडर भारतीय पुरालिपि के महान् विद्वान् थे। धर्मकीर्ति के 'न्यायबिन्दु' और 'प्रमाणवार्तिक' पर उनका अध्ययन गहन था। ग्रियर्सन स्वयं कई भाषाओं के गम्भीर विद्वान् थे, पर हिन्दी के प्रति उनकी विशेष रुचि थी। भाषाशास्त्र के अध्ययन का परिणाम उनका भारतीय भाषा सर्वेक्षण ग्रंथ है जो कई भागों में प्रकाशित हुआ है। जिस समय हिन्दी के विद्वान् शोध के प्रति उदासीन थे उस समय ग्रियर्सन, हार्नले, ग्रीब्ज़, बीम्स, टर्नर, टॉड, तेसीतोरी आदि ने हिन्दी भाषा और साहित्य पर महत्त्वपूर्ण शोध-ग्रंथ प्रकाशित किए। इन्हीं विद्वानों ने लोक-भाषा के अध्ययन की भी नींव डाली। उसे ग्रामक्षेत्र से ऊपर उठाकर नगरमंच पर आसीन किया। ग्रियर्सन ने बिहार के ग्राम्य-जीवन की शब्दावली में लोकगीत, मुहावरे आदि संकलित किए। उनके ग्रन्थ के आधार पर हिन्दी में लोक-साहित्य का अध्ययन आगे बढ़ा। बीम्स ने भारतीय आर्य भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण लिखकर हिन्दी को प्रमुख भाषा सिद्ध करने का प्रयास किया।

बीम्स आई० सी० एस० थे। वे बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य-प्रदेश आदि क्षेत्रों में रहे और वहाँ प्रचलित प्रत्येक भाषा की प्रवृत्ति का सूक्ष्म अध्ययन करते रहे। मराठी और गुजराती के सम्बन्ध में उनकी जानकारी सीमित थी। अत: इन भाषाओं के सम्बन्ध में उन्होंने अधिकारपूर्वक निष्कर्ष नहीं निकाले हैं। अत: एक ईमानदार शोधकर्ता के नाते उन्होंने यह स्वीकार भी किया है। हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास लिखने का श्रेय भी विदेशी विद्वान् तासी को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विद्वानों के कार्य विश्वविद्यालयों के बाहर स्वयं स्फूर्त शोध प्रवृत्ति के परिणाम हैं। विश्वविद्यालयों में भी शोधकार्य का प्रारम्भ पाश्चात्य विद्वानों द्वारा हुआ है। सर्वप्रथम सन् 1911 में फ्लोरेंस विश्वविद्यालय से एल० पी०

तेस्सी तोरी ने 'रामचरितमानस' और 'रामायण' का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। सन् 1918 में लंदन विश्वविद्यालय ने डॉ० कारपेन्टर को तुलसीदास दर्शन पर शोध उपाधि प्रदान की। सन् 1931 में लंदन से एफ० ई० के० ने 'कबीर और उनके अनुयायी' पर उपाधि प्राप्त की। सन् 1950 में फ्रेंच महिला (बोदवील) ने पेरिस से रामचरितमानस के स्रोत और रचनाक्रम पर डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। प्रसंगवश यहाँ यह कह देना उचित होगा कि ग्रियर्सन पहले पाश्चात्य विद्वान् थे जिन्होंने देशी-विदेशी शोध-पत्रों में तुलसीदास की साहित्यिक महत्ता प्रतिपादित की थी। लंदन-विश्वविद्यालय ने प्रथम भारतीय मोहुउद्दीन कादरी को हिन्दुस्तानी ध्वनियों पर शोध उपाधि प्रदान की। बीसवीं शताब्दी के दूसरे-तीसरे दशक में भारतीय विश्वविद्यालय भी इस दिशा में जागृत हुए और उनमें शोधकार्य को महत्त्व दिया जाने लगा। हिन्दी भाषा के क्षेत्र में सर्वप्रथम डॉ० बाबूराम सक्सेना को अवधी के विकास पर और साहित्यिक क्षेत्र में काशी विश्वविद्यालय से डॉ० बड़थ्वाल को हिन्दी निर्गुण संत साहित्य पर डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की गई। इस सम्बन्ध में एक रोचक प्रसंग का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। जिस समय डॉ० बड़थ्वाल ने शोध विषय के पंजीकरण का आवेदन प्रस्तुत किया उस समय प्रो वाइसचांसलर श्री आनन्द शंकर ध्रुव ने, जो स्वयं संस्कृत-गुजराती के प्रकाण्ड विद्वान् थे, हिन्दी विभाग के अध्यक्ष बाबू श्यामसुन्दरदास से पूछा कि "क्या हिन्दी साहित्य में भी शोधकार्य हो सकता है?" बाबू श्यामसुन्दरदास को उन्हें हिन्दी साहित्य की गरिमा और विपुलता से आश्वस्त कराने में काफी श्रम उठाना पड़ा। जब प्रबन्ध प्रस्तुत हो गया तो विश्वविद्यालय ने उनके परीक्षक हिन्दी के प्रसिद्ध विदेशी विद्वान् नियुक्त किए जिनमें डॉ० ग्रियर्सन भी एक थे।

विदेशी परीक्षकों ने बड़थ्वाल के प्रबन्ध की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। बड़थ्वाल का प्रबन्ध सन् 1934 में स्वीकृत हुआ। तब से देश में प्रायः उन सभी विश्वविद्यालयों में, जहाँ हिन्दी-विभाग हैं, शोधकार्य हो रहा है और खूब हो रहा है। परन्तु उसमें शुद्ध शोध-सामग्री कितनी है, इस पर प्रश्न का चिह्न लगाया जा सकता है। सन् 1963 तक लगभग 542 'प्रबन्ध' स्वीकृत हो चुके थे। गत आठ वर्षों में यह संख्या दुगुनी-तिगुनी हो गई हो तो आश्चर्य नहीं है। शोधार्थियों की संख्या-वृद्धि का मुख्य कारण देश की बेकारी कहा जा सकता है क्योंकि बहुधा देखा गया है कि ज्योंही शोधकर्ता कहीं सेवारत हो जाता है, वह शोधकार्य से तुरन्त विरत हो जाता है। वास्तविकता यह है कि विश्वविद्यालयों में जो शोधकार्य हो रहा है वह शुद्ध शोध की दृष्टि से कम, अर्थकारी उपाधि की दृष्टि से अधिक हो रहा है।

डॉ० सत्येन्द्र ने सन् 1959 तक प्रकाशित शोध-प्रबन्धों की एक तालिका

बनाई है जिससे ज्ञात होता है कि अनेक विषयों पर दुहरा-तिहरा कार्य हुआ है। उदाहरणार्थ (1) महाकाव्य में नायक, नारी, नाट्यतथ्य, परम्परा, (2) हिन्दी साहित्य की आलोचना का उद्भव और विकास, (3) गद्य-काव्य, (4) नाटक साहित्य का इतिहास, (5) प्रेमचन्द, (6) भारतेन्दु-युगीन नाट्य साहित्य, (7) कामायनी, (8) मैथिलीशरण गुप्त, (9) वृन्दावनलाल वर्मा, (10) रामचन्द्र शुक्ल, (11) जयशंकर प्रसाद, (12) म० प्र० द्विवेदी, (13) गांधीवाद आदि।

उपर्युक्त दुहराहट-तिहराहट के विषय 1959 तक ही सीमित नहीं रहे, वे आज भी विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत पंजीकृत होते जा रहे हैं। कई विश्व-विद्यालय अनुसंधेय विषयों की कमी और शोध छात्रों की संख्या-वृद्धि देखकर जीवित साहित्यकारों पर भी शोधकार्य को प्रोत्साहन दे रहे हैं। मेरी सम्मति में जीवित साहित्यकारों पर शोध तटस्थ भाव से प्रायः सम्भव नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त उन पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः आलोचनात्मक लेख, समीक्षात्मक स्वतन्त्र पुस्तक आदि का प्रकाशन बराबर होता रहता है। अतः शोधार्थी अपने प्रबन्ध में कुछ नया नहीं दे पाता। आधुनिक साहित्य पर विश्वविद्यालय के बाहर अत्यधिक कार्य हो चुका है। फिर भी शोध-विद्यार्थी आज के साहित्य पर ही कार्य करना चाहता है। अतः शीर्षक बदल-बदलकर पुराने विषय नए बनाये जा रहे हैं। तब दुहराहट, तिहराहट, चौराहट क्यों नहीं होगी ? निराला के देहावसान के पश्चात् अनेक विश्वविद्यालयों ने निराला पर शोध-उपाधि प्रदान कर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। मैंने स्वयं ऐसे प्रबन्ध देखे हैं जिनमें निराला के साहित्य पर गहन अध्ययन की अपेक्षा श्रद्धांजलि की मात्रा ही प्रमुख थी। मुक्तिबोध जीवितावस्था में परम उपेक्षित कवि रहे, पर ज्योंही दिल्ली के इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइन्स में स्वर्गवासी हुए, वे महान् कवि घोषित किये जाने लगे (मैं यहाँ उनकी कवि-प्रतिभा को अस्वीकार नहीं कर रहा हूँ। मैं विषयों की दुहराहट के प्रसंग में उनकी चर्चा कर रहा हूँ) और एकाधिक विश्वविद्यालय में शोध-विषय के रूप में सम्मानित हुए।

यह बात नहीं है कि किसी की कृति या प्रवृत्ति पर विभिन्न दृष्टिकोणों से चिन्तन नहीं किया जा सकता। पर आपत्ति वहीं होती है जहाँ शोधार्थी का न कोई अपना चिन्तन होता है और न शोध की दृष्टि। पूर्ववर्ती आलोचकों के विचार कभी उद्धरण-चिह्नों सहित और कभी चिह्नों रहित प्रबन्ध के पृष्ठों में उतरते आते हैं। पूर्ववर्ती विचारकों के विचार उद्धृत करने में भी कोई आपत्ति नहीं है पर उन विचारों पर शोधकर्ता की अपनी अनुकूल-प्रतिकूल टिप्पणी भी तो होनी चाहिए।

8

वैज्ञानिक शोध के सोपान

(1) विषय और उसके लक्ष्य की परिकल्पना ।
(2) सामग्री संचयन ।
(3) सामग्री का विश्लेषण ।
(4) निष्कर्ष ।

किसी परिकल्पना को लेकर ही विषय के शोधकार्य में प्रवृत्त हुआ जाता है ।

शोध-विषय किस निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए किया जा रहा है, इसकी स्पष्ट धारणा बनाए बिना शोधकार्य में प्रवृत्त होना अँधेरे में भटकने के समान है । प्रारम्भ में हमारी स्थापना अस्पष्ट-धुँधली-सी हो सकती है । परिकल्पना सिद्धान्त के तौर पर नहीं की जाती, वह तो सिद्धान्त को स्थापित करने के लिए अनुमानित की जाती है । वह सिद्धान्त या निष्कर्ष तक पहुँचने का साधन मात्र है । अनुसंधेय विषय के निष्कर्ष की मन में कल्पना करना पूर्वाग्रह नहीं कहा जा सकता, पूर्वाग्रह तभी कहा जाएगा जब हम उसके विपरीत तथ्यों के विद्यमान होते हुए भी उसी पर आग्रह जमाए रहें । शोध की निगमन प्रणाली सर्वथा त्याज्य नहीं है । तथ्यों के चयन और विश्लेषण के पश्चात् निर्णय पर पहुँचने की आगमन प्रणाली भी शोध की एक प्रविधि है, पर निगमन-प्रणाली में भी तथ्य-चयन होता है और उसके आधार पर परिकल्पना के रूप में परिवर्तन किया जाता है, किया जाना चाहिए ।

शोध के लिए विषयों की कमी नहीं है, कमी है शोध-दृष्टि-सम्पन्न प्रतिभा-सम्पन्न शोधकर्ताओं की । हिन्दी में शोध प्राचीन, मध्यकालीन तथा अर्वाचीन से सम्बद्ध विषयों पर किया जा रहा है ।

9

शोध के विषय

शोधार्थी सर्वप्रथम शोध के विषय का निर्धारण करता है । विषय शोधार्थी की अपनी रुचि और क्षमता के अनुरूप चुना जाना चाहिए । ज्ञान के विभिन्न क्षेत्र हैं और प्रत्येक में शोध की सम्भावनाएँ रहती हैं । हिन्दी साहित्य के

अनुसंधाता के लिए हिन्दी भाषा, साहित्य, इतिहास, प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक साहित्य की विविध प्रवृत्तियों, कवियों तथा लेखकों की उपलब्धियों के अतिरिक्त साहित्यशास्त्र, हिन्दी तथा हिन्दीतर साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से सम्बद्ध विषय हो सकते हैं। इन विविध विषयों में विभिन्न विश्वविद्यालयों में जो कार्य हो चुका है उसकी जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता है। इसके लिए डॉ० उदयभानुसिंह के 'हिन्दी में प्रकाशित शोध प्रबन्ध', हिन्दी अनुशीलन (प्रयाग) आदि में दी गई सूचनाओं को देखने से विषय-चयन में सहायता मिल सकती है। उपर्युक्त विषयों के सम्बन्ध में हम नीचे कतिपय टिप्पणी दे रहे हैं—

(1) हिन्दी-भाषा

हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन यद्यपि बहुत काल से हो रहा है तो भी भाषा प्रवहमान होती है। उसमें समय के बीतने के साथ विभिन्न कारणों से परिवर्तन होता रहता है। अतः उसकी प्रकृति एवं प्रवृत्ति का अध्ययन अपेक्षित होता है। हिन्दी शब्द का संविधान में यद्यपि अर्थ-संकोच हो गया है। वह खड़ी बोली का मानक रूप रह गया है पर भाषा-विधानियों ने पश्चिम में ब्रज, खड़ी बोली (जिसमें उर्दू भी सम्मिलित है और जिसे ग्रियर्सन ने हिन्दुस्तानी का फारसी मिश्रित रूप कहा है), बांगडू (कौरवी), कन्नौजी, बुन्देली, मालवी, निमाड़ी और राजस्थानी (कुछ विद्वान् इसे पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत न मानकर स्वतन्त्र भाषा मानते हैं) और पूर्व में अवधी, जिसके अन्तर्गत बघेली और छत्तीसगढ़ी प्रमुख बोलियाँ हैं, तथा बिहारी भाषाओं को (जिसके अन्तर्गत भोजपुरी, मगही और मैथिली[1] का समावेश है) हिन्दी के अन्तर्गत माना है। इस तरह हिन्दी भाषा का क्षेत्र बड़ा व्यापक है।

इन प्रमुख भाषा तथा बोलियों के भी भेद-विभेद अध्ययन के विषय हो सकते हैं। यथा—

(1) **व्यक्ति भाषा**—भाषाविज्ञानी एक ही व्यक्ति की भाषा का अध्ययन भी करने लगे हैं। व्यक्ति बाल्यावस्था से मृत्युपर्यन्त भाषा का एक ही रूप नहीं बोलता, उसमें परिवर्तन आता रहता है।

(2) **भाषा-भूगोल**—यह सीमित क्षेत्र की भाषा अथवा बोली के अध्ययन का विषय है। इसमें गृहीत क्षेत्र की भाषा का ध्वनि, अर्थ, संरचना (Structure) आदि की दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। भूगोल के नक्शे

---

1. मैथिली को हिन्दी से पृथक् भाषा मानने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। भोजपुरी के सम्बन्ध में भी यही बात है।

तैयार करने में भाषा-भूगोल की शोध-प्रक्रिया का अवलम्बन किया जाता है। भाषा, व्याकरण, विविध क्षेत्रीय भाषा-रूपों का तुलनात्मक अध्ययन, भाषा अथवा बोलियों के कोश, आदि भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत अनुसंधेय विषय हैं।

(2) लोक-साहित्य

जनसामान्य में प्रचलित अलिखित साहित्य के नामकरण के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने इसे 'ग्राम साहित्य' से अभिहित किया है। उन्होंने इसी अर्थ में लोकगीतों को 'ग्रामगीत' शीर्षक के साथ प्रकाशित किया था। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे 'लोकवार्ता' कहा। पर 'वार्ता' शब्द का अर्थ संस्कृत कोशों में प्रवाद, किंवदन्ती आदि दिया गया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में 'वार्ता' अर्थशास्त्र तथा राजनीति के लिए प्रयुक्त किया गया है। महाभारत में 'वार्ता' नूतन समाचार के लिए प्रयुक्त हुआ है। आज भी वह इसी अर्थ में व्यवहृत होता है। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने 'लोक भाषा' शब्द का प्रयोग किया है। पर यह वास्तविक अर्थ-व्यंजक शब्द नहीं है। इसके लिए 'लोकायन' शब्द भी कुछ विद्वानों ने सुझाया है। 'लोक संस्कृति' को भी इसी अर्थ में चलाए जाने का प्रयत्न किया गया। यद्यपि यह शब्द अभीष्ट अर्थ का द्योतन करता है फिर भी 'लोक-साहित्य' का प्रचलन अधिक होने लगता है, जो अंग्रेज़ी के 'फोक लिटरेचर' का पर्याय है। राहुल सांकृत्यायन ने 'लोक साहित्य' शब्द को ही ग्रहण किया था, क्योंकि उनके सम्पादन में प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' (षोड़श भाग) का नामकरण 'हिन्दी का लोक साहित्य' ही किया गया है। लोक-साहित्य के अन्तर्गत अध्ययन की दिशाएँ हैं— लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, कहावतें, मुहावरे, पहेलियाँ, लोकनाट्य, अन्धविश्वास, जनश्रुतियाँ आदि। हिन्दी लोक-साहित्य के अन्तर्गत राहुलजी ने मैथिली, मगही, भोजपुरी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, बुन्देली, ब्रज, कन्नौजी, राजस्थानी, मालवी, कौरवी, गढ़वाली, कुमाऊँनी, कुलुई, चंबियाली भाषाओं के अतिरिक्त पंजाबी, डोगरी तथा नेपाली का भी समावेश कर लिया है। संभवतः बीम्स के समान ही राहुलजी भी पंजाबी, डोगरी और नेपाली तथा पहाड़ी बोलियों को हिन्दी के अन्तर्गत मानते थे अन्यथा इनका हिन्दी साहित्य के इतिहास के लोक-साहित्य भाग में सम्मिलित करने का कोई अर्थ नहीं है। शुद्ध शोधार्थी, यदि इन भाषाओं-बोलियों से परिचित है तो उसे इनके लोक-साहित्य के अध्ययन पर क्या प्रतिबन्ध हो सकता है? परन्तु हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत शोध-विषय बनाने में विवादास्पद आपत्ति उठाई जा सकती है।

साहित्य का इतिहास

आदिकाल से लेकर वर्तमान काल तक के साहित्य-निर्देशक इतिहास लिखे गए हैं। इनमें से कई तथ्य-संग्राहक, कुछ तथ्य-समीक्षक, कुछ संग्राहक और समीक्षक दोनों हैं। साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों पर स्वतंत्र विधाओं के आलोचनात्मक इतिहासों का भी लेखनकार्य हुआ है। हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास गासी द तासी का है जो फ्रेंच भाषा में लिखा गया था। इसका हिन्दुई अंश का हिन्दी रूपान्तर डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने किया है। तासी के इतिहास का प्रथम भाग सन् 1839 में और दूसरा 1847 में प्रकाशित हुआ था और परिवर्तित संस्करण 1870-71 में छपा था। फेलन और करीमुद्दीन ने प्रथम संस्करण का उर्दू में अनुवाद किया है। तासी का इतिहास वर्णक्रमानुसार है। इसमें साहित्य की विविध विधाओं के वर्गीकरण का भी प्रयास है यथा—

आख्यान, आदिकाव्य, इतिहास, काव्य। पद्य-प्रकारों के वर्गीकरण में अभंग, आल्हा, कड़खा, कवित्त, मलार, कीर्तन, गाली, चुटकला, चौपाई आदि। 'तासी' के पश्चात् शिवसिंह सरोज का कविवृत्त संग्रह भी इतिहास-लेखन की दिशा में एक प्रयास कहा जाता है। इसे हम परवर्ती इतिहास-लेखकों के लिए स्रोत-ग्रंथ कह सकते हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'सरोज' के पूर्वरचित महेशदत्त के काव्य-संग्रह और मातादीन मिश्र के कवित्त रत्नाकर का उल्लेख किया है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' में 'सरोज' पूर्व कृतियों की संख्या दस बताई है। 'तासी' और 'सरोज' के आधार पर डा० ग्रियर्सन ने 'द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान' लिखा। ग्रियर्सन ने कवियों तथा कृतियों के विवरण में 'सरोज' से पर्याप्त सहायता ली है। ग्रियर्सन का इतिहास सर्वप्रथम 'द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल' भाग (1) 1888 के विशेषांक रूप में छपा था। इसका हिन्दी रूपान्तर किशोरीलाल गुप्त ने 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' शीर्षक से प्रकाशित कराया। इसकी विशेषता के सम्बन्ध में अनुवादक का कथन है—"इस ग्रंथ में हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न काल-विभाग भी दिए गए हैं। 'विनोद' में बहुत-कुछ इन्हीं काल-विभाजनों को स्वीकार कर लिया गया है। इसमें प्रत्येक काल की तो नहीं, कुछ कालों की सामान्य प्रवृत्तियाँ भी दी गई हैं, यद्यपि यह विवरण अत्यन्त संक्षिप्त है।" (पृष्ठ 36) ग्रियर्सन के पश्चात् मिश्रबन्धुओं ने 'मिश्र बन्धु विनोद' के नाम से हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा। 'विनोद' के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, "हिन्दी कवियों का एक वृत्त संग्रह ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने सन् 1883 ई० में प्रस्तुत किया था। उसके पीछे सन् 1889 में सर ग्रियर्सन ने 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर

लिटरेचर ऑव नार्दर्न हिन्दुस्तान' के नाम से वैसा ही बड़ा कवि-वृत्त-संग्रह निकाला। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा का ध्यान आरम्भ ही में इस बात की ओर गया कि सहस्त्रों हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकें देश के अनेक भागों में राज पुस्तकालयों तथा लोगों के घरों में अज्ञात पड़ी हैं। अतः सरकार की आर्थिक सहायता से उसने सन् 1900 से पुस्तकों की खोज का कार्य हाथ में लिया और सन् 1911 तक अपनी खोज की आठ रिपोर्टों में सैकड़ों अज्ञात कवियों तथा ज्ञात कवियों के अज्ञात ग्रंथों का पता लगाया। सन् 1913 में इस सारी सामग्री का उपयोग करके मिश्रबन्धुओं ने अपना बड़ा भारी कवि-वृत्त-संग्रह 'मिश्रबन्धु विनोद', जिसमें वर्तमान काल के कवियों और लेखकों का भी समावेश किया गया, 'तीन भागों में प्रकाशित किया।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, भूमिका) मिश्रबन्धुओं का 'विनोद' भले ही इतिहास की वर्तमान वैज्ञानिक परिभाषा में 'इतिहास' न हो, पर उसमें जो सामग्री एकत्र की गई है और जिस रूप में की गई है उसका लाभ उनके आलोचक आचार्य शुक्ल ने भी उठाया है। यह बात दूसरी है कि उन्होंने पश्चिमी इतिहास-लेखन की प्रचलित 'विधेयवादी प्रणाली' का अनुसरण नहीं किया। मिश्रबन्धु विनोद के पश्चात् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास 'हिन्दी शब्द सागर' की भूमिका के रूप में प्रस्तुत होने के बाद पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ। यह इतिहास जनता की चित्तवृत्ति की परम्पराओं का साहित्य परम्परा से जोड़ने वाला वैज्ञानिक इतिहास कहा जाता है। शुक्लजी अपने इतिहास की भूमिका में इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—"जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का स्थायी प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इसी परम्परा को परखते हुए साहित्य-परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत-कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अतः कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित् दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।" शुक्लजी ने पाश्चात्य साहित्य इतिहास-लेखन की विधेयवादी शैली को अपनाकर हिन्दी इतिहास-लेखन को नयी दिशा दी, पर जैसा कि नलिनविलोचन शर्मा का मत है कि शुक्लजी के इतिहास में जो त्रुटि है वह यह है कि अनुपात की दृष्टि से उसका स्वल्पांश ही प्रवृत्ति-निरूपणपरक है, अधिकांश विवरण-प्रधान ही है और वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि इसके लिए उनका मुख्य आधार वह 'विनोद' है जिसके लेखक मिश्रबन्धुओं पर उन्होंने अनावश्यक रूप से कटु व्यंग्य भी किए हैं। (साहित्य दर्शन का इतिहास दर्शन, पृष्ठ 89)

आचाय शुक्ल के अनुकरण पर डॉ० रामशंकर शुक्ल ने इतिहास लिखा है। रसालजी के इतिहास के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि वह किसी निश्चित योजना में समन्वित नहीं है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का हिन्दी साहित्य (उसका उद्‌भव और विकास) विशेष रूप से छात्रों को दृष्टि में रखकर लिखा होने से संक्षिप्त है, पर इस रूप में भी उन्होंने ध्यान रखा है कि 'मुख्य प्रवृत्तियों का विवेचन टूटने न पाए और विद्यार्थी शोधकार्यों के अद्यतन परिणामों से अपरिचित न रह जाएँ।' उन्होंने उन 'अटकलबाज़ियों और अप्रासंगिक विवेचनाओं को भी छोड़ दिया है जिनसे 'इतिहास नामधारी पुस्तकें प्रायः भरी रहती हैं।'

डॉ० रसाल के इतिहास के पश्चात् डॉ० रामकुमार वर्मा का मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का इतिहास, शोध-उपाधि की कृति है जिसमें पूर्ववर्ती इतिहासों के गुण-दोषों के साथ ही नए तथ्य भी संकलित किए गए हैं। काल के नामकरण में शब्द-वैभिन्न्य है, अर्थ-वैभिन्न्य प्रायः नहीं है।

इनके अतिरिक्त हिन्दी में छात्रोपयोगी अनेक छोटे-मोटे इतिहासों का प्रकाशन हुआ है और होता जा रहा है। उल्लेख्य इतिहास हैं—नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी के आयोजित सत्रह-खंडी इतिहासों के प्रकाशित खण्ड तथा भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के तीन भाग तथा डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त का हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास। श्री गुप्त के इतिहास का आधुनिक भाग नामावली संग्राहक अधिक हो गया है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा हिन्दी परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित इतिहास के जो खण्ड प्रकाशित हुए हैं वे अपने पूर्ववर्ती इतिहासों की परम्परा से बहुत दूर नहीं हैं। इस बीच क्षेत्रीय इतिहास भी लिखे गए हैं। उदाहरणार्थ 'पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास' (बाली), 'बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास' प्रकाश में आ चुके हैं। मध्यप्रदेश के अत्यन्त संक्षिप्त क्षेत्रीय इतिहास 'आदर्श' ने लिखे हैं और इनसे कई साहित्यकारों के नाम ज्ञात हुए हैं। महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र, केरल आदि क्षेत्रों की हिन्दी कृतियों पर ग्रंथ लिखे गए हैं। इन प्रादेशिक हिन्दी साहित्य के इतिहासों से प्राप्त सामग्री के आधार पर 'वृहत् हिन्दी साहित्य का इतिहास' का पुनः लेखन किया जाना चाहिए। हिन्दी का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है, उसके लेखक उत्तर, मध्य या पूर्व भारत में ही नहीं, दक्षिण, सुदूर पूर्व तथा सुदूर पश्चिम तथा सुदूर उत्तर में विदेशों में भी फैले हुए हैं। उनकी कृतियों के सम्बन्ध में खोज और उनके साहित्यिक महत्त्व को इतिहास में स्वीकृति देने की आवश्यकता है। विदेशों में हिन्दी भाषा साहित्य तथा व्याकरण पर शोधकार्य हुआ है। हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक साहित्य तथा भाषा पर विदेशी साहित्यकारों की तत्वान्वेषी दृष्टि गई है। हमारे शोधार्थी हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालों तथा

विधाओं का प्रवृत्तिमूलक, आलोचनात्मक इतिहास लिख सकते हैं। भारतीय भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं की विधा-विशेष की समान प्रवृत्तियों का भी ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक विवेचन किया जा सकता है। साहित्य-इतिहास के विभिन्न स्रोतों की भी खोज हो सकती है।

संत-साहित्य

हिन्दी में संत-साहित्य की ओर अन्वेषकों का अधिक झुकाव पाया गया है। इस ओर सर्वप्रथम डॉ० बड़थ्वाल का ध्यान आकर्षित हुआ था। उनका शोध प्रबन्ध परवर्ती संत-साहिय अन्वेषकों का मार्गदर्शन करता जा रहा है। संत-साहित्य पर महत्त्वपूर्ण कृति उत्तर भारतीय संत साहित्य की परम्परा है जो पं० परशुराम चतुर्वेदी का महत्त्वपूर्ण आकर-ग्रंथ है। उसी के समान अध्ययनपूर्ण ग्रंथ दक्षिण भारत की संत परम्परा पर भी तैयार किया जा सकता है। संत-साहित्य के अनुशीलन के प्रसंग में शंका उठती है कि क्या आलोच्य संतों की वाणी साहित्य के अन्तर्गत आ सकती है? आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके वचनों को 'सधुक्कड़ी भाषा' कहा है। ऐसे बहुत कम संत हैं जिनकी वाणियों में साहित्य-गुण हैं। संतों के दार्शनिक सिद्धान्तों में नाममात्र को ही भेद दिखाई देता है, उनके आचार-धर्म में ही भेद होने से अनेक संत-पंथ चल पड़े हैं जो सम्प्रदाय भी कहलाते हैं। जब तक किसी संत की वाणी में साहित्यिकता न हो और उसमें उनके दार्शनिक या आचार-धर्म की विशिष्ट प्रवृत्ति लक्षित न हो तब तक उसे अनुसंधान का विषय नहीं बनाना चाहिए। संत कवि की वाणी-विवेचना ही साहित्य-अनुसंधान के अन्तर्गत आ सकती है, कोरे संत की नहीं।

कवि-विवेचन

प्राचीन कवियों में सूर, तुलसी, जायसी, केशवदास आदि पर विभिन्न दृष्टियों से शोधकार्य हो गया है और हो रहा है, देश में और विदेशों में भी। राम और कृष्णभक्त कवियों की कृतियों की खोज और उनका विवेचन बराबर हो रहा है परन्तु सूफी कवियों के सम्बन्ध में जायसी या मंझन तक ही दृष्टि गयी है। सूफी, नाथों की तरह देशभर में भ्रमण करते थे। उनके काव्य खोजे जा सकते हैं। दक्खिनी हिन्दी के अन्तर्गत हैदराबाद-अंचल के सूफी तो खोज निकाले गए हैं। पर अन्य क्षेत्रों के, विशेषकर पश्चिम तथा पूर्ववर्ती अंचलों के सूफी-साहित्य का अनुसंधान प्रतीक्षित है। सिन्ध में मुस्लिम तथा हिन्दू सूफी-कवियों ने यदि हिन्दी में काव्य-रचना की है, तो उन्हें भी प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

रीतिकाल के देव, बिहारी, पद्माकर आदि की कृतियों पर साहित्य-मूल्यांकन
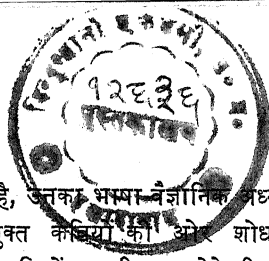
की दृष्टि से कार्य हुआ है, उनका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन भी किया जा सकता है। रीतिकाल के रीतिमुक्त कवियों की ओर शोधार्थियों की अधिक रुझान पायी गयी है, रीतियुक्त कवियों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। रीतिकाल में रीतिग्रंथों का जो प्रणयन हुआ है उसमें संस्कृत रीतिकारों का कहां तक अनुकरण और स्वतन्त्र स्थापना कहाँ तक है, यह अनुसंधान्य विषय है। कहा जाता है, हिन्दी का कोई साहित्यशास्त्र नहीं है। यदि यह तथ्य है तो अनुसंधान्य है। यदि तथ्य नहीं है तब भी अनुसंधान्य है।

समीक्षा-शास्त्र की अनेक कृतियाँ प्रकाश में आयी हैं। कई संस्कृत काव्य-शास्त्र का हिन्दीकरण मात्र हैं और कई पाश्चात्य काव्यशास्त्र का उलझा वर्णन-मात्र। संस्कृत काव्यशास्त्र को भारतीय काव्यशास्त्र कहा जाता है, पर यह नामकरण तभी सार्थक हो सकता है जब उसमें समस्त भारतीय भाषाओं के काव्यशास्त्र के तत्त्वों का विवेचन हो। यह सच है कि अनेक वर्तमान भारतीय भाषाओं का साहित्य-शास्त्र संस्कृत साहित्य का देशी भाषाकरण मात्र है पर तमिल का काव्यशास्त्र संस्कृत काव्यशास्त्र की प्रतिलिपि नहीं है; उसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता भी है। हमें भारतीय भाषाओं के काव्यशास्त्रों के तुलनात्मक अध्ययन की ओर भी दृष्टिपात करना होगा। यदि हमारी गति विदेशी भाषाओं—अंग्रेज़ी, रूसी, जर्मनी, फ्रेंच, इतालवी, चीनी, जापानी भाषाओं में हो तो हमें उनके साहित्यशास्त्रों का भी भारतीय काव्यशास्त्र के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना होगा। साहित्य को हम भौगोलिक सीमा में बाँध नहीं सकते। मानव जाति की सुख-दुःख की भावनाओं में अन्तर नहीं है, उसकी अभिव्यक्ति का प्रकार भिन्न हो सकता है। यूरोप में किसी एक भाषा के साहित्य का इतिहास लिखते समय समस्त महाद्वीप के साहित्य की प्रवृत्तियों पर भी दृष्टि रखी जाती है।

पाठालोचन

"रचना के मूल पाठ के स्वस्थ निर्धारण के प्रसंग में स्वीकृत, निपुण तथा विधि-विहित प्रक्रिया का नाम पाठालोचन है—पाठ से हमारा तात्पर्य किसी भाषा में रचित ऐसे अर्थपूर्ण ग्रन्थ से है जो अन्वेषक को न्यूनाधिक रूप में ज्ञात है और जिसके विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ कहा जा सकता हो।"[1]

'पाठ' से तात्पर्य रचयिता के स्वहस्तलिखित ग्रन्थ या रचना से है। उससे रचयिता के जीवनकाल या बाद में की गयी प्रतिलिपियाँ मूल पाठ की यथावत् प्रतिलिपियाँ हैं, यह अनिश्चित रहता है क्योंकि उनमें पाठभेद मिलता है, सारी

1. भारतीय पाठालोचन की भूमिका (कात्रे—हिन्दी संस्करण) भूमिका।

उपलब्ध प्रतिलिपियां मूल रचना से ही की गयी प्रायः नहीं होतीं। यदि की गयी हों तो प्रतिलिपिकार के प्रमाद या संस्कारवश पाठ-भेद हो जाते हैं। यदि रचयिता की स्वहस्तलिखित प्रति उपलब्ध हो जाती है तो 'पाठालोचन' का प्रसंग ही नहीं उठता।

पाठालोचित रचना को आलोचक द्वारा मूल रचना का पुनरुद्धार नहीं कहा जा सकता। उसे अधिक से अधिक सन्निकट समझकर संतोष धारण करना पड़ता है। यूरोप में पाठालोचन का कार्य बहुत समय पूर्व प्रारम्भ किया गया था। भारत में भाण्डारकर शोध-संस्थान में डॉ० सुखटनकर ने 'महाभारत' के पाठ-निर्धारण के लिए पाश्चात्य पाठालोचन-सिद्धान्त का सहारा लिया। साथ ही भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल भी उसे बनाया गया। पूना के डक्कन कॉलेज के शोध-संस्थान के निर्देशक डॉ० कात्रे ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने अंग्रेज़ी में पाठालोचन की भूमिका लिखकर पाठालोचन-शास्त्र को सुलभ बना दिया है। परिणामस्वरूप विभिन्न भारतीय भाषाओं में अलक्ष्य मूल ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर पुनर्निर्माण हो सका है। हिन्दी में स्व० डॉक्टर माताप्रसाद गुप्त ने इस 'विज्ञान' में दक्षता प्राप्त कर कई प्राचीन ग्रन्थों का पाठ-निर्धारण किया है।

बिहारी, केशवदास, मतिराम, हरिश्चन्द्र आदि की कृतियों का पाठालोचन हो चुका है। यदि संयोगवश इन कृतियों की अशोधित पांडुलिपि या पांडुलिपियाँ पुनः उपलब्ध हो जाएँ तो इनका पुनः पाठालोचन हो सकता है। जायसी की पद्मावत का पाठालोचन, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम कलात्मक प्रविधि से किया था, उसके बाद स्व० माताप्रसाद गुप्त ने वैज्ञानिक ढंग से उसका पाठालोचन किया। गुप्तजी के पश्चात् स्व० वासुदेवशरण अग्रवाल को नई सामग्री प्राप्त होने पर उन्होंने भी उसका कला तथा विज्ञान की पद्धति से पाठालोचन प्रस्तुत किया। रामचरितमानस के लगभग 11 पाठालोचित संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का नागरी प्रचारिणी संस्करण बहुत समय तक आदर्श माना जाता रहा। उसके पश्चात् गीता प्रेस ने अपना संस्करण प्रकाशित किया। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने मानस के काशिराज की प्रति के आधार पर पाठालोचित नया संस्करण प्रकाशित किया। 'चन्द' के पृथ्वीराजरासो के भी दीर्घ और लघु संस्करण के पाठ-निर्धारण का कार्य किया गया है। इसी प्रकार 'कबीर' की वाणियों पर भी कार्य हुआ है। अभी भी प्राचीन तथा मध्यकालीन कृतियों के प्रामाणिक संस्करणों की आवश्यकता बनी हुई है। हिन्दी में पाठालोचन के कार्य का इतिहास गत 25-30 वर्षों का ही है। अभी इस क्षेत्र में अधिक कार्य होना शेष है। पर इस कष्टसाध्य कार्य को हाथ में लेने का विश्वविद्यालयीन शोध-छात्र को साहस नहीं होता।

सर्वप्रथम तो उसकी पाठप्रक्रिया से भलीभाँति अवगत होना पड़ता है। उसके पश्चात् आलोच्य ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियों को प्राप्त करने में जिस साहस, धैर्य, श्रम और मानापमानरहितता की अपेक्षा होती है वह बहुत कम छात्रों में पाई जाती है।

इस क्षेत्र में जो भी महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है वह उपाधिनिरपेक्ष अन्वेषकों द्वारा हुआ है जिनका न केवल भाषा के वर्तमान रूप से परिचय था, वरन् वे लिपियों तथा इतिहासों से भी परिचित थे। प्राचीन हस्तलेख को पढ़ना भी एक प्राचीन विशिष्ट प्रकार की योग्यता चाहता है। हिन्दी की अधिकांश पांडुलिपियाँ तो नागरी लिपि में ही हैं पर काल-भेद से कुछ वर्षों के लेखन में कुछ अन्तर भी दिखाई देता है; सूफी संतों के हिन्दी-ग्रंथ मूल रूप में फारसी-लिपि में हैं। तञ्जौर (आन्ध्र), मद्रास, केरल, उड़ीसा आदि प्रान्तों में हिन्दी-ग्रंथ प्रादेशिक लिपि में पाए जाते हैं। अतः जब तक आलोच्य ग्रंथ की लिपि का ज्ञान न हो, उसका पाठालोचन संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में पाठालोचक अन्य व्यक्ति की भी सहायता ले सकता है, पर उसके 'पाठोच्चार' पर शत-प्रतिशत विश्वास करना प्रायः संभव नहीं होता।

विषय का चुनाव हो जाने के उपरान्त तत्सम्बन्धी प्रकाशित-अप्रकाशित सामग्री का मनोयोगपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। इससे उसकी रूपरेखा और स्पष्ट परिकल्पना बन सकेगी। परिकल्पना विषय के संबंध में शोधार्थी की इस धारणा को प्रकट करती है कि वह किस तथ्य को उद्घाटित करना चाहता है।

10

परिकल्पना के स्रोत

परिकल्पना एक विचार है जो स्वानुभव अथवा परानुभव से उत्पन्न होता है। परिकल्पना-निर्माण के निम्नलिखित स्रोत हो सकते हैं—

(1) जो परिकल्पनाएँ परीक्षण के उपरान्त वैज्ञानिक सिद्धान्त के रूप में प्रसिद्ध हो जाती हैं वे नई परिकल्पना को जन्म दे सकती हैं। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का परीक्षित नियम है। इसके आधार पर यह देखा गया कि निश्चित् ऊँचाई से परे यह नियम लागू नहीं होता। यहाँ पदार्थ पृथ्वी की ओर आर्कषित होकर नीचे नहीं गिरता। वहाँ भारहीनता अनुभव होती है। तब

वैज्ञानिकों को नई परिकल्पना करनी पड़ी। साहित्य से उदाहरण लें। भरत ने यह सिद्धान्त निरूपित किया कि 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रस निष्पत्तिः।' प्रश्न उठा कि नाटक में रस की स्थिति नाटक के पात्र अथवा आश्रय में रहती है या पात्र का अभिनय करने वाले अभिनेता में रहती है या दर्शक में रहती है। भट्ट लोल्लट ने यह परिकल्पना की कि रस की अवस्थिति नाटक के पात्र अथवा अनुकार्य में होती है। उनकी इस परिकल्पना के आधार पर शंकुक ने विचारसरणि को आगे बढ़ाकर चित्र-तुरंत-न्याय के द्वारा सिद्ध किया कि प्रेक्षक अभिनेता को ही अनुकार्य मान लेता है और अनुमान द्वारा रसानुभव करता है। शंकुक की अनुमानजन्य रसोत्पत्ति की स्थापना पर फिर आगे विचार हुआ और भट्ट नायक ने यह स्थापना की कि दर्शक पात्रों के वैशिष्ट्य को भूलकर उन्हें सामान्य मानकर रसानुभूति करता है। उन्होंने साधारणीकरण सिद्धान्त की स्थापना की। शोध और आगे बढ़ा और अभिनवगुप्त ने रस की अवस्थिति स्पष्ट रूप से प्रेक्षक में मानी।

जनसाधारण की मान्यता है कि प्रकृति में अपार सौन्दर्य है। पर यह परिकल्पना दूसरी परिकल्पना को जन्म देती है जो वाल्देयर के शब्दों में 'कलात्मक सौन्दर्य, प्राकृतिक सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक सुन्दर है।'

यह प्रस्थापना यथार्थवादी प्रस्थापना से सर्वथा भिन्न है।

(2) **शोधकर्ता की सांस्कारिकता**—शोधकर्ता अपने संस्कार के अनुसार ही परिकल्पना का निश्चयन करता है। जयदेव के गीत-गोविन्द को, भौतिकतावादी, शुद्ध श्रृंगार की रचना सिद्ध करेगा। इसके विपरीत कृष्णभक्त उसमें आत्मा-परमात्मा के विरह-मिलन की कल्पना करेगा। उसकी परिकल्पना अध्यात्म-मूलक होगी। 'विद्यापति की पदावली श्रृंगारिक रचना है', यह एक परिकल्पना परिकल्पक की श्रृंगारिक मनोवृत्ति के अनुरूप हो सकती है। विद्यापति की रचना भक्तिपरक है, यह दूसरी परिकल्पना भक्तिमूलक मनोवृत्ति के अनुरूप हो सकती है।

(3) कभी-कभी दो समान तथ्य प्रकट होने पर यह जानने के लिए परिकल्पना की जाती है कि क्या यही तथ्य अन्यत्र भी दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ नामदेव और कबीर में नाम-महिमा प्रतिपादित है। दोनों निर्गुणी संत हैं। इससे यह कुतूहल होना स्वाभाविक है कि हम यह परिकल्पना करें कि सभी निर्गुणी संतों ने नाममहिमा पर बल दिया है और नानक, तुकाराम, शंकरदेव आदि संतों का अध्ययन कर अपनी परिकल्पना को सिद्ध पाएँ।

(4) व्यक्तिगत अनुभव से भी परिकल्पना का जन्म होता है। कबीर ने देखा, लोग बड़ी-बड़ी पोथियाँ पढ़ते हैं पर उनसे मनुष्य को एक सूत्र में बाँधने का ज्ञान नहीं पैदा हुआ। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर परिकल्पना

की—"पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय। ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय"। अब इस परिकल्पना की परीक्षा की जा सकती है।

परिकल्पना का रूप संक्षिप्त और स्पष्ट हो, क्योंकि 'व्यामिश्र वाक्य' से बुद्धि विमोहित होती है और विमोहित बुद्धि शोध के उपयुक्त नहीं है।

शोधकार्य प्रारम्भ करने के पूर्व परिकल्पना (Hypothesis) का निर्माण आवश्यक है या नहीं, इस पर मतभेद है। एकमत के अनुसार परिकल्पना तभी निर्मित की जा सकती है जब विषय का शोधकार्य काफी आगे बढ़ जाता है। क्योंकि शोधकार्य के पूर्व परिकल्पना की स्पष्ट कल्पना नहीं हो सकती। इस मत का समर्थन करते हुए मार्गरेट स्टेसी ने कुछ ऐसे उदाहरण दिये हैं जिनमें पूर्व परिकल्पना के बिना शोधकार्य प्रारंभ किया गया और जब विषय से सम्बद्ध पर्याप्त सामग्री एकत्र हो गई तब परिकल्पना निर्मित की गई और सिद्धान्त स्थापित किये गए। सन् 1956 में बोसार्ड और बाल ने यह समस्या ली कि बड़े परिवार का अपने सदस्यों के सामाजिक सम्बन्धों पर क्या प्रभाव पड़ता है? उनके पूर्व इस विषय पर कार्य हो चुका था, पर परिवार के बड़े-छोटे रूप को लेकर 'कार्य' करना शेष था। पूर्व कार्य परिवार का सामाजिक सम्बन्धों पर प्रभाव तक सीमित था। बोसार्ड कार्यारंभ के पूर्व स्पष्ट परिकल्पना निर्धारित नहीं कर सके। उन्होंने 100 बड़े परिवारों का विस्तार के साथ अध्ययन किया। आत्मकथाएँ, जीवनचरित्र आदि लिखित सामग्री का उपयोग किया। परिवार के सदस्यों से मुलाकातें कीं। उनका कार्य सरल नहीं था क्योंकि प्रत्येक परिवार की अपनी विशेषताएँ थीं—उन्हें प्रत्येक परिवार से समान तथ्य-सामग्री भी नहीं मिली। पर इससे उन्हें कोई परेशानी नहीं हुई क्योंकि वे तो कोई पूर्व परिकल्पना लेकर कार्य में प्रवृत्त नहीं हुए थे। वे तो तथ्यों को एकत्र कर उनका वर्गीकरण और विश्लेषण कर, बड़े परिवार का उसके सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों पर निश्चित प्रभाव पड़ता है, इस निष्कर्ष पर पहुँचे। उनके निष्कर्ष की पुनः परीक्षा करने के लिए अन्य अनुसंधाता आगे आए और भविष्य में भी आते रहेंगे। एक समस्या को एक ही पहलू से नहीं, अनेक पहलुओं से देखा-परखा जा सकता है।

दूसरा मत गूडे और हट्ट का है जो परिकल्पना को शोधकार्य के पूर्व आवश्यक मानते हैं। ये दोनों मत विषय के प्रकार को देखकर मान्य या अमान्य किए जा सकते हैं। यदि किसी विषय पर काफी शोधकार्य हो चुका है तो उसके अध्ययन के आधार पर हमारे मन में कोई नई कल्पना का उदय हो सकता है और हम अपनी परिकल्पना के आधार पर अपने विषय की रूपरेखा तैयार कर कार्यारंभ कर सकते हैं। और जहाँ किसी विषय पर कार्य अधिक नहीं हुआ है वहाँ बिना पूर्व परिकल्पना के भी उस पर कार्यारंभ किया जा

सकता है। एक दूसरा प्रश्न उठता है कि किसी एक विषय पर हुए कार्य पर क्या पुनः (उसी विषय पर) कार्य किया जाए या नहीं ? इस पर मतैक्य नहीं है। सामान्यतः यह कहा जाता है कि शोधित विषय पर कार्य करने से पिष्टपेषण होगा, कोई नया तथ्य सामने नहीं आ सकेगा। इसके विपरीत दूसरा मत यह है कि पूर्व शोध ठीक हुआ है या नहीं; इसकी परीक्षा के लिए भी उसी विषय पर शोध किया जाना चाहिए। गूडे और हट्ट का कहना है कि तरुण वैज्ञानिकों ने वृद्ध वैज्ञानिकों का छिद्रान्वेषण कर कई बार ख्याति अर्जित की है।

वैज्ञानिक अनुसंधानों में ही नहीं, मानविकी के अनुसंधानों में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ उसी विषय की नई शोधों ने पुरानी शोधों के निष्कर्षों का खंडन कर नई स्थापनाएँ की हैं। हम पहले कह चुके हैं कि **शोध का प्रारंभ तो है पर अन्त नहीं है।**

11

विषय की रूपरेखा

विषय की परिकल्पना निश्चित कर लेने पर उसकी रूपरेखा का प्रश्न उठता है। वास्तव में देखा जाए तो रूपरेखा तो विषय से सम्बद्ध साहित्य को पढ़ने के पश्चात् स्पष्ट होती है परन्तु जिन विश्वविद्यालयों में शोध-आवेदन-पत्र के साथ विषय की रूपरेखा की माँग की जाती है वहाँ शोधार्थी अस्थायी रूपरेखा या संक्षिप्त 'योजना-सूत्र' ही प्रस्तुत कर सकता है, जिसमें वह विषय तथा अध्यायों के शीर्षक और उसमें वर्णित होनेवाले प्रसंग को एक-दो पंक्तियों में दे देता है। कुछ विश्वविद्यालयों में 'शोध-प्रबंध' की प्रस्तुति के साथ रूपरेखा देने का प्रावधान है। यह नियम अधिक न्यायसंगत प्रतीत होता है। इससे परीक्षक के सम्मुख 'प्रबन्ध' की 'वस्तु' का पूरा चित्र उपस्थित हो जाता है, पर जहाँ पंजीयन की शर्त ही रूपरेखा की प्रस्तुति हो वहाँ शोधार्थी अस्थायी या काम-चलाऊ रूपरेखा तैयार कर सकता है, जो अध्ययन की समाप्ति पर स्थायी और विस्तृत रूप ग्रहण कर सकती है। उसके संक्षिप्त होने का आशय यह नहीं है कि उसमें अध्याय के शीर्षक मात्र हों। वास्तविकता यह है कि अध्यायों में वर्ण्य विषय का स्थूल संकेत भी दिया जाना चाहिए। मान लीजिए, आपने सूर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोध करने का निश्चय किया है। तो एक पद्धति तो

यह है कि आप सूरकालीन परिस्थिति को अपना प्रथम अध्याय बनाएँ, क्योंकि कवि अपनी परिस्थिति से उत्पन्न होता है अथवा परिस्थिति कवि को प्रभावित करती है। दूसरी पद्धति में भूमिका से प्रारम्भ न कर विषय से ही प्रारम्भ करते हैं। प्रथम पद्धति के अनुसार यदि आपकी रूपरेखा का निम्नानुसार संक्षिप्त रूप है तो वह बिल्कुल ही अस्पष्ट है। और अस्पष्ट रूपरेखा से शोध की दिशा भलीभाँति निर्दिष्ट नहीं हो पाती।

सूर का व्यक्तित्व और कृतित्व

रूपरेखा

अध्याय पहला—सूरकालीन स्थिति।

अध्याय दूसरा—सूर का व्यक्तित्व—जीवन-चरित्र।

अध्याय तीसरा—सूर का कृतित्व।

अध्याय चौथा—सूर के काव्य की आलोचना।

अध्याय पचाँवाँ—उपसंहार।

उपर्युक्त रूपरेखा से यह स्पष्ट नहीं होता कि शोधार्थी सूर के अध्ययन से क्या प्रतिपादित करना चाहता है। आपके विषय का शीर्षक तो सूर के जीवन और काव्य की पूरी विवेचना चाहता है। इस प्रकार की तार-शैली की अधूरी रूपरेखा से आपका अध्ययन कैसे सीधी रेखा में आगे बढ़ सकता है? पहले अध्याय को ही लें। उसका आपने शीर्षक मात्र 'सूरकालीन स्थिति' दिया है। पाठक को यह ज्ञात नहीं होता कि आप किन स्थितियों की चर्चा करना चाहते हैं। आपको सूरकालीन स्थिति के आगे ही लिखना चाहिए—'राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक'। इससे आप आलोच्यकाल के इतिहास-ग्रन्थों को पढ़ेंगे जिनमें सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों का वर्णन मिलेगा। आप भक्तमाल और वैष्णवन की वार्ताएँ भी पढ़ेंगे जिनसे तत्कालीन धार्मिक विश्वासों का परिचय हो सकेगा। दूसरा अध्याय बहुत ही अस्पष्ट है। व्यक्तित्व के क्या उपादान होते हैं, इसका भी उल्लेख करना चाहिए क्योंकि उन्हीं को आप 'सूर' के जीवन से खोजना चाहेंगे। व्यक्ति समाज का एक घटक है। अतः जब हमने सूरकालीन समाज का रूप प्रथम अध्याय में प्रस्तुत कर दिया तब हमें सूर के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने में अधिक कठिनाई नहीं होगी। व्यक्तित्व का अध्ययन गुणात्मक प्रविधि का अंग है। अतः अध्याय का शीर्षक मात्र देने से काम नहीं चलेगा। हमें 'सूर का व्यक्तित्व—जीवन-चरित्र' के आगे लिखना होगा—'व्यक्तित्व की परिभाषा, पारिवारिक पृष्ठभूमि, अर्थात् सूर की जन्मतिथि, जन्म-स्थान तत्सम्बन्धी भिन्न-भिन्न मत और उनकी आलोचना'; सूर को प्रभावित करने

वाली पारिवारिक घटनाएँ, जीवन को प्रभावित करने वाले व्यक्ति—(उनके दीक्षा-गुरु आदि) जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण, उनकी प्रयाण-तिथि—विविध मतों की समीक्षा। अध्याय की रूपरेखा शीर्षक मात्र न होकर जब तनिक वर्णनात्मक बन गई तब आपको सूर के जीवन से सम्बद्ध सामग्री के स्रोत खोजने में सहायता मिल जाएगी। आप उन प्रलेखों (Documents) की खोज करेंगे जिनमें सूर का उल्लेख सम्भव होगा। सूर अकबर-काल में हुए थे। अतः आप उस काल के सरकारी कागजातों की तलाश करेंगे। उनकी वंशावली प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे, भक्त चरित्रों की खोज करेंगे, ब्रजभूमि में सूर सम्बन्धी किंवदन्तियों को एकत्र करने का प्रयास करेंगे और उनके समसामयिक भक्त-कवियों की रचनाओं में उनका उल्लेख ढूंढेंगे। (यदि आप किसी आधुनिक व्यक्ति के जीवन को खोजना चाहेंगे तो आपको उसके लिए अधिक भटकना नहीं पड़ेगा। शासकीय-अशासकीय प्रलेख, प्रकाशित साहित्य आदि से व्यक्ति का चरित्र प्रकाश में आ जाएगा। कठिनाई प्राचीनकालीन कवियों के जीवन-सूत्र एकत्र करने में होती है। पर जहाँ कवि अपनी रचनाओं में अपना परिचय दे देता है वहाँ शोध की कठिनाई कम हो जाती है) तीसरे अध्याय में सूर का कृतित्व लिखने मात्र से काम नहीं चलेगा। आपको उनकी कृतियों का यथासम्भव रचनाकाल-क्रम से उल्लेख करना होगा। चौथे अध्याय में सूर के काव्य की आलोचना शीर्षक से यह ज्ञात नहीं होता कि आप किस दृष्टि से आलोचना करना चाहते हैं। क्या आप इस अध्याय में सूर की समस्त काव्य-कृतियों का अध्ययन करना चाहेंगे? ऐसी स्थिति में यह अध्याय बहुत बड़ा हो जाएगा, एक पुस्तक का ही रूप धारण कर लेगा। आपको इस अध्याय में केवल सूरसागर का ही मूल्यांकन करना होगा, अतः इस अध्याय का संक्षिप्त विवरण होगा।

सूरसागर प्रबन्ध अथवा गीत-काव्य, प्रबन्ध अथवा गीत-तत्त्वों के आधार पर उसका मूल्यांकन—उसका भावपक्ष तथा कलापक्ष (भाषा, अलंकार, छन्द आदि) की दृष्टि से परीक्षण, सूरसागर पर श्रीमद्भागवत तथा अन्य ग्रन्थों के प्रभाव का पृथक् अध्याय बनाना होगा, जिसे हम पाँचवाँ अध्याय कहेंगे पर यह अध्याय स्वयं स्वतन्त्र प्रबन्ध का रूप धारण कर सकता है।

छठे अध्याय में सूर की अन्य कृतियों—सूर सारावली आदि की विवेचना, उनकी प्रामाणिकता पर विचार तथा काव्यगत वैशिष्ट्य की परीक्षा। सातवें अध्याय में सूर के काव्य में दर्शन—'वल्लभ मत' और उसका सूर की कृतियों पर प्रभाव वर्णित होगा। अन्तिम अध्याय उपसंहार के अन्तर्गत प्रबन्ध की मुख्य-मुख्य प्रस्थापनाओं का सिंहावलोकन होगा। उसके पश्चात् आकार-ग्रन्थों की अकारादि क्रम से सूची होगी। अधिकांश रूपरेखाओं में सन्दर्भ-ग्रन्थसूची नहीं

दी जाती । यदि वह शोध प्रारम्भ के पूर्व तैयार की गई है तो अधूरी ही होगी । ऐसी दशा में 'प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ सूची' का लिखित संकेत कर देना चाहिए । हिन्दी में 'विषय' पर सीधा विवेचन न होकर ऐतिहासिक पृष्ठभूमिपरक विवेचन होता है । और यह विवेचन प्रागैतिहासिक काल से प्रारम्भ होता है जिससे विषय-विवेचन हल्का और उसकी भूमिका भारी हो जाती है । कुछ 'प्रबन्ध' तो हज़ार पृष्ठ से भी अधिक आकार धारण कर लेते हैं । अपनी रूपरेखा में ऐसे प्रसंग या विषयों का निर्देश कर देते हैं जिनके साथ वे पूर्ण न्याय नहीं कर पाते । मेरे सामने एक विश्वविद्यालय से प्राप्त 'अंग्रेज़ी तथा हिन्दी के आधुनिक आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन' विषय की रूपरेखा है जिसके एक अध्याय का उपशीर्षक है :

विश्व की अन्य भाषाओं में आंचलिक उपन्यासों की दशा (1) पाश्चात्य भाषाएँ, (2) पौर्वात्य भाषाएँ (भाषा के बहुवचन की वर्तनी दो प्रकार से दी गई है (1) भाषाएँ, (2) भाषायें और पाश्चात्य की तुक पौर्वात्य से मिलाना तो वर्तनी-रूढ़ि है, पर शुद्ध शब्द है पौरस्त्य ।)

प्रश्न यह है कि क्या अनुसंधाता पश्चिमी तथा पूर्वी देशों की समस्त भाषाओं में गति रखता है ? यदि रखता है तो वह सचमुच महापण्डित है ! ऐसी दशा में भी क्या पूर्व की समस्त भाषाओं—चीनी, जापानी, इंडोनीशियन आदि भाषाओं के आंचलिक उपन्यासों का विवेचन एक ही अध्याय का उपांग बन सकता है ? इस अध्याय का पूरा विवरण भी पढ़िए—

"द्वितीय अध्याय

हिन्दी एवं अंग्रेज़ी आंचलिक उपन्यास के विकास की रूपरेखा

(क) हिन्दी एवं अंग्रेज़ी आंचलिक उपन्यासों की उत्पत्ति एवं उनके विकास की पूर्व की सामान्य परिस्थितियाँ ।
   (1) अंग्रेजी—सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, साहित्यिक व धार्मिक ।
   (2) हिन्दी—सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, साहित्यिक व धार्मिक ।

(ख) हिन्दी एवं उसकी पूर्ववर्ती भाषाओं के प्रागौपन्यासिक कथा-साहित्य में आंचलिकता ।

(ग) अंग्रेज़ी के प्रागौपन्यासिक कथा साहित्य में आंचलिकता ।

(घ) प्रेमचन्द पूर्व काल के उपन्यासों में आंचलिकता ।

(ङ) प्रेमचन्द युग एवं स्वातन्त्र्य पूर्व काल के उपन्यासों में आंचलिकता ।

(घ) स्वातन्त्र्योत्तर युग में हिन्दी के आधुनिक आंचलिक उपन्यास का विकास।
(छ) हार्डी युग तक अंग्रेज़ी आंचलिक उपन्यास का विकास।
(ज) बीसवीं शताब्दी के पूर्व अमरीकी आंचलिक उपन्यास का विकास।
(त) बीसवीं शताब्दी का अंग्रेज़ी आंचलिक उपन्यास—
 (1) अंग्रेज़ी साहित्य।
 (2) अमरीकी साहित्य।
 (3) आंग्ल-भारतीय साहित्य।
(थ) विश्व की अन्य भाषाओं में आंचलिक उपन्यास की दशा।
 (1) पाश्चात्य भाषाएँ।
 (2) पौर्वात्य भाषाएँ।"
(द) निष्कर्ष।

अब आप ही कल्पना कीजिए कि उक्त 'प्रबन्ध' का दूसरा अध्याय यदि गम्भीरता के साथ लिखा जाए तो कितने हज़ार पृष्ठ नहीं घेर लेगा ? सर्वप्रथम तो मुझे सन्देह है कि शोधकर्ता हिन्दी-अंग्रेज़ी के अतिरिक्त कोई भारतीय, यूरोपीय या पूर्वीय भाषाएँ जानता है। अध्याय का एक-एक उपशीर्षक स्वतन्त्र शोध-प्रबन्ध का विषय है। अनुसन्धाता अपनी रूपरेखा को विद्वत्तापूर्ण प्रदर्शित करने के लिए ऐसे प्रसंगों का उसमें समावेश कर देता है जिसकी विवेचना करना उसकी सामर्थ्य के बाहर है।

तात्पर्य यह है कि रूपरेखा का रूप ऐसा हो जो हमारे प्रतिपाद्य विषय को स्पष्ट कर दे। रूपरेखा बनाने के पूर्व, जैसा कि हम पहले भी कह आए हैं, विषय का प्रारम्भिक ज्ञान तो सम्पादित कर ही लेना चाहिए, क्योंकि प्रबन्ध को सामयिक परिस्थितियों से प्रारम्भ करने की परिपाटी चल पड़ी है। इसलिए विषय के शीर्षक के अनुरूप उसे प्रारम्भ न कर एकदम परिस्थितियों के वर्णन से प्रारम्भ किया जाता है। पुनः एक शोध-प्रबन्ध की रूपरेखा का उदाहरण नीचे दिया जा रहा है। उसका शीर्षक है—"सेवड़ा के कवि अक्षर अनन्य और रसनिधि एक अध्ययन।" (शीर्षक में रसनिधि के पश्चात् हाइफन नहीं है।)

प्रथम अध्याय—तत्कालीन परिस्थितियाँ और उनका कवियों पर प्रभाव।
(अ) राजनीतिक परिस्थितियाँ।
(आ) सामाजिक परिस्थितियाँ।
(इ) धार्मिक परिस्थितियाँ।
(ई) आर्थिक परिस्थितियाँ।

अध्याय के शीर्षक में परिस्थितियों का कवियों पर प्रभाव दिया गया है, पर उसके अन्तर्गत केवल परिस्थितियों का उल्लेख मात्र देकर उसे समाप्त कर

दिया गया है। जब शोध सेवड़ा के कवियों से सम्बन्धित है तब परिस्थितियों की चर्चा के पूर्व सेवड़ा की भौगोलिक स्थिति आदि से परिचित कराना आवश्यक था।

कभी-कभी शोधकर्ता अपने विषय का शीर्षक अभिधापरक न रखकर लक्षणापरक रख देते हैं। एक 'प्रबन्ध' का शीर्षक था—नई कविता के नए हस्ताक्षर। 'नए हस्ताक्षर' से शोधकर्ता का तात्पर्य नए कवियों से है। तार की भाषा का जैसे 'नई कविता—जीवन के नए संदर्भ' का प्रयोग भी उचित नहीं है। इसका 'नई कविता में जीवन के नए संदर्भ' शीर्षक देना चाहिए।

प्रबन्ध की भाषा समाचार-पत्रों की भाषा से भिन्न होती है, और होनी भी चाहिए। सामान्य लेख की भाषा में चलते शब्द, उछलते वाक्य-खण्ड आकर्षण पैदा करते हैं पर शोध-प्रबन्ध में विकर्षण।

निष्कर्ष यह है कि रूपरेखा विषय के शीर्षक के अनुसार तैयार की जानी चाहिए। विषय के शब्दों का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसे अध्यायों में विभाजित करना चाहिए। प्रत्येक अध्याय केवल शीर्षक मात्र न होकर उसकी विषय-वस्तु का निर्देशक भी हो। रूपरेखा तैयार करने के पूर्व विषय पर प्रकाशित आलोचना या शोधपरक साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात हो जाएगा कि उस पर कितना कार्य हो चुका है और कितना, किस दृष्टिकोण से होना शेष है। इस अध्ययन से शोध का लक्ष्य स्पष्ट हो जाएगा और तभी रूपरेखा भी स्पष्ट रूप से तैयार की जा सकेगी।

यहाँ कुछ विषयों के अध्ययन की रूपरेखा सुझाई जाती है—

कवि की भाषा का अध्ययन

किसी कवि की भाषा के अध्ययन को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है—

1. कवि का संक्षिप्त जीवन।
2. भाषा का जीवन से सम्बन्ध।
3. कवि की भाषा-विशेष का वर्णन। मान लीजिए कवि की भाषा ब्रज है। तब ब्रज भाषा का उद्‌गम, वह किस अपभ्रंश से उद्‌भूत है? उसके सम्भावित प्रादुर्भाव का समय। विविध मतों की परीक्षा।
4. भाषा का व्याकरणिक रूप।
   (1) ध्वनियाँ, स्वर, व्यंजन।
   (2) संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण, लिंग, वचन, प्रत्यय (कारक चिह्न), सर्वनाम, उसके भेद, क्रियारूप कालभेद, तद्धित रूप।

व्याकरणिक रूप प्रस्तुत करने के बाद कवि की भाषा की परीक्षा कीजिए ।

सर्वप्रथम कवि की शब्द-सम्पदा का अन्वेषण कीजिए । उसकी रचनाओं में देखिए तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्द कितने हैं । उनका अकारादि क्रम से संग्रह कीजिए । शब्दों के पश्चात् लोकोक्तियों तथा मुहावरों का संग्रह कीजिए । भाषा में लक्षणा-व्यंजना तथा विशिष्ट पद-रचना, रीति-गुणों के उदाहरण खोजिए और अन्त में कवि की भाषा के सामर्थ्य पर अपना मत निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत कीजिए । परिशिष्ट में शब्द-सूची, आकर-ग्रंथ-सूची दीजिए । प्रबन्ध की भूमिका में कवि की भाषा पर किए गए कार्य की आलोचनात्मक चर्चा और अपने प्रबन्ध की नई दिशा का निर्देश आवश्यक होगा ।

☒ ☒ ☒

कवि के जीवन और कृतित्व के अध्ययन से सम्बद्ध डॉ० प्रभात के शोध प्रबन्ध 'मीरांबाई' की रूपरेखा नीचे दी जाती है—

(1) पृष्ठभूमि

राजनीतिक परिस्थिति, आर्थिक परिस्थिति, सामाजिक परिस्थिति, शिक्षा, पर्व और उत्सव, दार्शनिक परिस्थिति, धार्मिक परिस्थिति, साहित्य, संगीत, स्थापत्य तथा शिल्प, चित्रकला ।

(2) जीवनवृत्त—अध्ययन के आधार

मीरां सम्बन्धी सामग्री का वर्गीकरण

कवियों और भक्तों द्वारा उल्लेख—कबीर, सेनान्हावी, नरसिंह मेहता, सूरदास, हरिराम व्यास, कवि विष्णुदास कृत कुंवर बाईनुं मोसांक्त, श्रीहित ध्रुवदास, एकनाथ महाराज, तुकाराम श्रीनिलोबा महाराज, बेणी माधवदास कृत मूल गोसाईं चरित', कृष्णदत्त कृत 'गौतम चन्द्रिका', रामकृपाल तथा उसकी टीकाएँ, टिप्पणियाँ और दृष्टांत, मायादास कृत 'भक्तमाल', प्रियादास कृत भक्तमाल की भक्तिरसबोधिनी टीका, वैष्णवदासजी कृत भक्तमाल का दृष्टांत, राघौदास कृत भक्तमाल, चतुरदास की टीका, संत दरिया साहब, नागरीदास, वल्लभ सम्प्रदाय का वार्ता-साहित्य, चौरासी वैष्णवन की वार्ता, हरिदास का पद, रामदान लालस कृत भीमप्रकाश, कुंवरी के दोहे, गरीबदास महीपति कृत भक्तलीलामृत, गोपीनाथ कृत चरित्र मीरांबाई, मीरांबाई की परची, दयाराम, राधाबाई कृत मीरांबाई, माहात्म्य, जसवन्त, मीरां जंभाजी संवाद, भक्ति माहात्म्य, चरणदास, दयादास, जनलछमन, नन्दराम, सुन्दरदास

कायस्थ, छोटभदास, प्राणधन, बख्तावर, हरिदास दर्जी, जेतराम के मीरां सम्बन्धी भजन, लोकगीतों में मीरां सम्बन्धी उल्लेख ।

अनुश्रुतियाँ और मीरां, इतिहास-ग्रंथ राजनीतिक इतिहास-मुहणोत नैणसी की ख्यात, एनल्ड एण्ड एण्टीक्विटी ऑफ राजस्थान, रासमाला, वीर विनोद, हिन्दी साहित्य के प्राचीनतम इतिहास, अन्य प्रमुख इतिहास, इतिहासेतर ग्रंथ, शिलालेख, आमेर के जगदीशजी मन्दिर का शिलालेख, मेड़ते की मीरां की मूर्ति पर खुदा लेख, दानपत्र, किशनगढ़-संग्रह का चित्र, प्रशस्तिपत्र, अंतःसाक्ष्य ।

(3) जीवन वृत्त रूपरेखा

जन्मतिथि—विभिन्न विद्वानों के मत, भाटों द्वारा उल्लेख, निष्कर्ष ।

जन्मस्थान और प्रारम्भिक निवास-स्थल, कालकोट सम्बन्धी भ्रम, मीरां का पितृकुल, मारवाड़ के राठौड़, मेड़तिया शाखा का प्रारम्भ, राव दूदाजी, मीरां के पिता, एक भ्रम, मीरां की माता, भाई-बहिन, परिवार की धार्मिक प्रवृत्ति, शैशव विवाह-तिथि ।

मीरां का श्वसुर-कुल-पति, तीन मत, निष्कर्ष, क्या मीरां के पति भोजराज पाटवी कुंवर थे ? मीरां के जीवन-संघर्ष (विषपान आदि) ।

अन्य घटनाएँ—नागप्रसंग, वैराग्य और भक्ति की तीव्रता, चित्तौड़-त्याग, तीर्थयात्रा । मीरां के गुरु रामानन्द, संत रैदास, रैदासी संत विट्ठल, हरिदास दर्जी, माधवपुरी, गौरकृष्णदास भक्त, जीवगोस्वामी, पुरोहित गजाधर, देवाजी, दीक्षागुरु ।

भक्तों और संतों से मीरां का सम्पर्क—देवाजी, रामदास, गोविन्द दुबे, साचोरा ब्राह्मण, कृष्णदास अधिकारी, हितहरिवंश और हितहरिराम व्यास, जीवगोस्वामी, रूपगोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी, जंभनाथ, माधवेन्द्र तथा माधव, रामानन्द, नीमानन्द और माधवाचारज, अजबकुंवरि बाई, विट्ठल ।

अलौकिक घटनाएँ

कुछ अप्रामाणिक प्रसंगोल्लेख—क्या नूतुर वैष्णवन की वार्ता में उल्लिखित जैमल की बेन मीरांबाई थीं ? अकबर, तानसेन और मीरां, तुलसीदास और मीरांबाई, नरसी मेहता और मीरां के बीच पत्र-व्यवहार । मीरां की अन्तरंग सखियाँ और सेविकाएँ—मिथुना, ललिता । मीरां की मृत्यु कहाँ, कैसे और कब ? मृत्यु-तिथि, साहित्यकारों के अनुमान, भाटों के उल्लेख, निष्कर्ष ।

(4) रचनाएँ, साहित्यिक कृतित्व

संग्रह-केन्द्र, प्रमुख प्रकाशित संग्रह और उनके आधार, प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं तथा खोज रिपोर्टों में प्रकाशित मीरां के पद ।

प्रकाशित संग्रहों के स्रोत—मीरां के पद की हस्तलिखित प्रतियाँ विद्यासभाभद्र अहमदाबाद में सुरक्षित पोथियाँ, डाही-लक्ष्मी लायब्रेरी नडियाड का संग्रह, फार्बस गुजराती सभा बम्बई में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रंथ। श्री सेठ पुरुषोत्तम विश्राम भावजी का वैयक्तिक संग्रह, रामदासी संशोधन मंडल की प्रतियाँ, गुजराती प्रेस, बम्बई का संग्रह, पुस्तक-प्रकाश जोधपुर का संग्रह, नागरी प्रचारिणी सभा का संग्रह, राम द्वारा धोली बावड़ी उदयपुर का संग्रह, पुरातत्व मन्दिर जोधपुर, स्फुट प्रतियाँ, प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल द्वारा प्रकाश में लाई गई पोथियाँ, श्री हरिनारायण पुरोहित जयपुर का संग्रह, अन्य ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियाँ।

मीरांबाई की रचनाएँ—गीतगोविन्द की टीका, नरसी मेहता का मायरा, नरसी मेहता चि हुंडी, रुक्मिणी मंगल, राग सोरठ का पद, मीरांबाई का मल्लार राग, मीरांबाई की गरबी राग गोविन्द, फुटकर पद, निष्कर्ष, कृतियों का पाठ।

मीरां की प्रतियों के वर्गीकरण के आधार—पूर्व प्रतियाँ या संचयन, विभिन्न सम्प्रदायों में लिपिबद्ध प्रतियाँ, लिपिकारों की भाषा तथा संकलन का भाषा-क्षेत्र, प्रक्षेप सम्बन्ध के आधार पर वर्गीकरण। प्रसिद्ध अंशों की समस्या—मीरां के बाद की घटनाओं के उल्लेख वाले पद, संवादात्मक गीत, लिपिकारों की असावधानी, मीरां नाम के उल्लेख मात्र से मीरांकृत कहे जानेवाले पद, चित्रभाव तत्त्व, भाषा की दृष्टि से, अन्य कवियों के पद जो मीरां के नाम से प्रचलित हैं। प्रस्तुत अध्ययन की आधारभूत प्रतियाँ।

(5) साधना-पथ

आराध्य—कृष्णोपासकों का मत, रामोपासकों का साक्ष्य, संत सम्प्रदायों के कथन, लोकमत, मीरां का वक्तव्य, मीरां के जीवन का साक्ष्य, नामरूप, अवतारी रूप, विष्णुत्व, हरि अविनाशी अजय रूप, रूप और सज्जा। लीला की संगिनी मुरली, लीला-भूमि वृन्दावन।

साधक—जीवकोटि, साधकजीव, राधा, पुनर्जन्मवाद, कर्म-सिद्धान्त, साधना के कारण, भक्ति पद्धति, भक्ति का अर्थ, मीरां की भक्ति, नवधाभक्ति एकादश आसक्तियाँ, प्रपत्ति, पंचकर्म-प्रेमरूपा भक्ति के साधन प्रधान सहायक, अन्तराय बाधा और निषेध।

पूर्व-प्रचलित विचारधाराएँ और मीरां की साधना—वैदिक प्रभाव पर आधारित दर्शन और मीरां, माधवेन्द्रपुरी की गोपाल भक्ति से साम्य, चैतन्यमत, द्वैताद्वैतवाद, वैदिक प्रमाण को अस्वीकार करके चलने वाली पद्धतियाँ, नाथमत, संतमत, विदेशी दर्शन, सूफीमत, निष्कर्ष।

परम्परा और मीरां—वैदिक और पौराणिक, द्वितीय उत्थान के भक्त मीरांबाई तथा गोदा अब्दाल, तृतीय उत्थान के भक्त।

मीरांबाई—सम्प्रदाय।

(6) काव्य अनुभूति और अभिव्यक्ति

भावबोध और अनुभूति—एकान्तिक संयोग-वियोग मीरां की रहस्य भावना।

पद-रचना—पद परम्परा का उद्भव और नामकरण, विकास, मीरां के पदों में राग, मल्हार राग, समय सिद्धान्त, भावानुकूल राग।

गीतितत्त्व—मीरां में गीतितत्त्व, आत्मानुभूति और संयमित भावातिरेक, गेयता, अन्विति और सक्षिप्त प्रकार और कोटि।

छन्द-विधान—टेक की दृष्टि से वर्गीकरण, परम्परागत छन्द-प्रयोग, नवीन छन्द।

पूर्व-प्रचलित छन्द—पद्धतियाँ और मीरा के पद।

भाषा का स्वरूप—संज्ञा के रूप, सर्वनाम, क्रिया, एक विशिष्ट प्रयोग, निष्कर्ष।

शब्दावली—मुहावरे और लोकोक्तियाँ।

वर्ण-योजना—नाद-सौन्दर्य, माधुर्यगुण।

शब्दशक्ति—अभिधा, लक्षणा, व्यंजना।

चित्रण—आलम्बन चित्र, अनुभाव के चित्र, प्रकृति-चित्रण। बिम्ब-योजना-विशेषताएँ—प्रकार।

अप्रस्तुत विधान—कल्पना, उक्ति-सौन्दर्य, शास्त्रीय कवि कोटियाँ और मीरां के काव्य का सामाजिक मूल्य।

(7) तीन परिशिष्ट

(1) मीरां द्वारा सेवित मूर्तियाँ, इसके अन्तर्गत विभिन्न स्थानों की मूर्तियाँ दी गई हैं।

(2) मीरां पूर्व हिन्दी कृष्णकाव्य—विभिन्न धाराएँ, सूफियाना कृष्ण-काव्य, शृंगारिक कृष्ण-काव्य, जैन दृष्टि से रचित कृष्ण-काव्य, नाथ सम्प्रदाय से प्रभावित कृष्ण-काव्य, जयदेव, विद्यापति, नामदेव, शंकरदेव, सधना नाई, चन्द्रिका समय, विष्णुदास, भीम, कुंभनदास, सूरदास, तत्त्ववेत्ता लालदास, नरसी मेहता, भालण, केशव, हरिदास।

(3) मीरां का प्राचीनतम चित्र तथा प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के 5 पृष्ठ फोटो।

टिप्पणी—

शोध-प्रबन्ध का शीर्षक केवल 'मीरांबाई' है जो बिल्कुल संक्षिप्त है। इसके आगे यदि·········का व्यक्तित्व और कृतित्व भी जोड़ दिया जाता तो रूपरेखा के पढ़े बिना ही यह ज्ञात हो जाता कि शोधी मीराँ के जीवन तथा काव्य-कृतियों का शोधपरक अध्ययन करना चाहता है। रूपरेखा काफी विस्तृत है। प्रतीत होता है, यह प्रबन्ध तैयार होने के पश्चात् निर्धारित की गई है। शोधकार्य ज्यों-ज्यों अग्रसर होता जाता है, रूपरेखा का संशोधन और संवर्धन होता जाता है। शोध—विषय का शीर्षक मीरांबाई होने से शोधी को उसके जीवन तथा साहित्य रूप के प्रत्येक अंग पर विस्तार से विचार करना पड़ा है।

× × ×

हिन्दी में संत-साहित्य पर शोधकार्य की ओर अधिक रुझान है। हम डॉ० बड़थ्वाल की 'हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय' पर लिखित प्रथम शोध-प्रबन्ध की रूपरेखा उनके अनुवाद-ग्रंथ से दे रहे हैं—

पहला अध्याय—परिस्थितियों का प्रसाद

(1) आमुख, (2) मुस्लिम आक्रमण, (3) वर्ण-व्यवस्था की विषमता, (4) भगवच्छरणागति, (5) सम्मिलन का आयोजन, (6) हिन्दी विचारधारा और सूफी धर्म, (7) शूद्रोद्धार, (8) निर्गुण सम्प्रदाय।

दूसरा अध्याय—निर्गुण संत सम्प्रदाय के प्रचारक

(1) परवर्ती संत, (2) जयदेव, (3) नामदेव, (4) त्रिलोचन, (5) रामानन्द, (6) रामानन्द के शिष्य, (7) रामानन्द का समय, (8) कबीर, (9) नानक, (10) दादू, (11) प्राणनाथ, (12) बाबालाल, (13) मलूकदास, (14) दीन दरवेश, (15) यारी साहब और उनकी परम्परा, (16) जगजीवनदास द्वितीय, (17) पलटूदास, (18) धानीदास, (19) हरियाद्वय, (20) बूलेशाह, (21) चरनदास, (22) शिवनारायण, (23) गरीबदास, (24) तुलसीदास, (25) शिवदयाल।

तीसरा अध्याय—निर्गुण सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त

(1) एकेश्वर (2) पूर्ण ब्रह्म, (3) परात्पर, (4) परमात्मा, आत्मा और जड़ पदार्थ, (5) अंशांशि सम्बन्ध, (6) जीवात्मा और जड़ जगत्, (7) सलजज्ञान, (8) उपनिषद्, मूलस्रोत, (9) निरंजन, (10) अवतारवाद।

चतुर्थ अध्याय—(यहाँ चौथा अध्याय ही लिखना चाहिए था क्योंकि प्रारम्भ हिन्दी शब्द पहला अध्याय से किया गया है। अतः हिन्दी का ही शब्द-प्रयोग वांछनीय था।)

निर्गुण पंथ

(1) प्रत्यावर्तन की यात्रा, (2) मध्यम मार्ग, (3) आध्यात्मिक वातावरण, (4) पथप्रदर्शक गुरु, (5) नाम सुमिरण प्रार्थना, (6) शब्दयोग, (7) अन्तर्दृष्टि, (8) परया अति अनुभूति, (9) समाज की उन्नति ।

पंचम अध्याय—(इस अध्याय का नामकरण पाँचवाँ अध्याय ही उपर्युक्त कारण से उपयुक्त होता।)

पंथ का स्वरूप

1. क्या निर्गुण पंथ कोई विशिष्ट सम्प्रदाय है ?
2. क्या निर्गुण पंथ साम्प्रदायिक है ?

षष्ठ अध्याय—(यहाँ भी छठा अध्याय लिखा जाना चाहिए था) अनुभूति की अभिव्यक्ति ।

1. सत्य का साधन ।
2. निर्गुण बानियों का काव्यत्व ।
3. प्रेम का रूपक ।
4. उलटबांसियाँ ।

परिशिष्ट

1. पारिभाषिक शब्दावली ।
2. निर्गुण-सम्प्रदाय सम्बन्धी पुस्तकें ।
3. विशेष बातें ।

टिप्पणी

1. डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने हिन्दू विश्वविद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिए उपर्युक्त शोध प्रबन्ध अंग्रेज़ी में प्रस्तुत किया था। उन्होंने अपने जीवन-काल में उसके तीन अध्यायों का हिन्दी रूपान्तर किया था। शेष अध्यायों का अनुवाद पं० परशुराम चतुर्वेदी ने किया है। दोनों अनुवादों की भाषा को एकरूपता देने का श्रम डॉ० भगीरथ मिश्र ने उठाया। विश्वविद्यालय से डी० लिट्० के लिए स्वीकृत यह प्रथम संत-साहित्य पर विवेचनात्मक कृति है ।
2. रूपरेखा में कहीं निर्गुण-सम्प्रदाय लिखा गया है और कहीं निर्गुण पंथ। क्या अनुवादकों ने दोनों को एक-दूसरे का पर्याय मान लिया है ? यदि चतुर्थ और पंचम अध्याय, पहले अध्याय के बाद रखे जाते तो चिन्तनक्रम-प्रवाह अबाधित रहता ।

स्थान-नामों का अध्ययन

व्यक्ति नामों का अध्ययन हिन्दी शोधप्रबन्धों का विषय बन चुका है, पर स्थान नामों के अध्ययन की ओर बहुत कम ध्यान गया है। इस प्रकार का अध्ययन 'टापोनामी' के अन्तर्गत आता है। हिन्दी में डॉ० उषा चौधरी ने 'मुरादाबाद' जिले के स्थान-नामों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन किया है। प्रबन्ध की विस्तृत रूपरेखा के मुख्य अंश नीचे दिए जाते हैं—

अध्याय 1—मुरादाबाद जिले का सामान्य परिचय (इसके अन्तर्गत क्षेत्रफल, सीमा, जलवायु, कृषि तथा उद्योग, जाति और व्यवसाय, जिले का राजनीतिक इतिहास—उसकी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक स्थिति, भाषा—(खड़ी बोली तथा हिन्दी की अन्य भाषाएँ) खड़ी बोली का व्याकरणिक विवेचन विवेचित है।)

अध्याय 2—रूप-रचना की दृष्टि से स्थान-नामों के प्रकार (इस अध्याय के अन्तर्गत, शब्द-रचना, स्थान-नामों का विश्लेषण, सरल और यौगिक स्थान-नाम, उपसर्ग, प्रत्यययुक्त स्थान-नाम, सामाजिक स्थान-नाम, जातिबोधक पूर्वसंयुक्त पद, पशुबोधक पूर्व संयुक्तपद, सीमाबोधक संयुक्तपद, जलाशय बोधक संयुक्तपद, वनस्पतिबोधक संयुक्तपद, दिए गए हैं। इसी प्रकार भेद-तत्त्वों की परिस्थिति दी गई है, यथा उपाधिबोधक परपद, जातिबोधक परपद, स्थान बोधक परपद आदि बहुपदीय स्थान-नाम, वाक्यांशमूलक स्थान-नाम का विवेचन है)

अध्याय 3—स्थान-नामों में प्रयुक्त शब्दावली के अन्तर्गत प्राचीन भाषा-परम्परा से आगत संस्कृत, विदेशी भाषाओं से गृहीत नाम, सांकर शब्द तथा शब्दों का आनुपातिक विवेचन दिया गया है।

अध्याय 4—स्थान-नामों का अर्थ की दृष्टि से विवेचन, भौगोलिक आधार, राजनीतिक आधार, सामाजिक आधार, धार्मिक आधार, सांस्कृतिक आधार, और प्राकृतिक आधार पर नामों का निर्माण।

अध्याय 5—स्थान-नामों का भाषा और ध्वनि संबंधी विवेचन।

अध्याय 6—उपसंहार

परिशिष्ट 1—स्थान-नामों में प्रयुक्त प्रमुख प्रत्यय, पूर्वपद एवं परपद युक्त जिले के मानचित्र-संख्या 5।

परिशिष्ट 2—सहायक ग्रंथ-सूची।

12

सामग्री का संकलन—उसके स्रोत

रूपरेखा तैयार हो जाने के उपरान्त सामग्री के संकलन का कार्य प्रारम्भ होता है। उसके स्रोत दो प्रकार के होते हैं—(1) मौलिक (2) अनूदित। शोधकर्ता को मौलिक स्रोतों की खोज करनी चाहिए। 'सामग्री' निम्न स्रोतों से प्राप्त हो सकती है।

(1) **प्रकाशित ग्रन्थ**—विषय से सम्बन्धित प्रकाशित ग्रन्थों की सूची तैयार कर लेनी चाहिए। कई पुस्तकालयों के अध्यक्ष इतने प्रबुद्ध होते हैं कि वे आपके गृहीत विषय पर प्रकाशित ग्रन्थों की सूची तैयार करने में सहायता दे सकते हैं। विषय के निर्देशक से भी सहायता ली जा सकती है। प्रकाशित ग्रन्थों को पढ़ने का कार्य तो रूपरेखा तैयार करते समय ही हो जाना चाहिए। नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता और बम्बई में दुर्लभ ग्रन्थ प्राप्त हो सकते हैं। हिन्दुस्तानी एकेडमी, नागरी-प्रचारिणी सभा और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पुस्तकालयों में हिन्दी का प्राचीन साहित्य प्राप्य है।

(2) **अप्रकाशित ग्रन्थ**—(हस्तलिखित ग्रन्थ) हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची अच्छे पुस्तकालयों में विद्यमान रहती है। हिन्दी के ग्रन्थों की सूची नागरी-प्रचारिणी सभा काशी से प्राप्य है। 'हस्तलिखित हिन्दी-ग्रन्थों का विवरण' नाम से वह कई भागों में प्रकाशित हुई है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग, नागरी-प्रचारिणी सभा आगरा, ब्रज-साहित्य-मण्डल मथुरा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, आदि संस्थाओं ने भी अपने संग्रहालय के अप्रकाशित ग्रन्थों की सूचियाँ छापी हैं। राजस्थान के जैन-मंदिरों में हस्तलिखित ग्रन्थों का भाण्डार है। श्री अगरचन्द नाहटा का हस्तलिखित पुस्तकों का निजी संग्रह भी दर्शनीय है। यदि शोधार्थी उसका उपयोग करें तो प्राचीन साहित्येतिहास की कई विस्मृत कड़ियाँ जुड़ सकती हैं।

हैदराबाद का सालारजंग पुस्तकालय सूफी-साहित्य और दक्खिनी हिन्दी के अध्येताओं को विपुल सामग्री प्रदान कर सकता है। तंजावर, (आन्ध्र) ग्रंथागार, थियासाफिकल लाइब्रेरी आडयार, खुदाबख्श लाइब्रेरी पटना, बम्बई, धूलिया आदि स्थानों के ग्रन्थागार सार्वजनिक हैं। इनके अतिरिक्त कई विश्वविद्यालयों में भी हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह रहता है। उनके 'केटलॉग' प्राप्त किये जा सकते हैं। धार्मिक संस्थानों में भी हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ संगृहीत रहती हैं। नाथद्वारा कांकरौली (राजस्थान) में वल्लभ-सम्प्रदाय के भक्त कवियों के हस्तलिखित ग्रन्थों, 'वार्ताओं' आदि का अच्छा संग्रह है। सम्प्रदाय के कवियों

के चरित्र लिखने की परिपाटी रही है, जो 'वार्ता-साहित्य' या 'परची' में संकलित मिलता है। इनमें यद्यपि भक्त का माहात्म्य प्रतिपादित करने के लिए कई चमत्कारी घटनाएँ दी गयी हैं, फिर भी उनसे तथ्य निकाले जा सकते हैं। राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची भी प्रकाशित हो गयी है। 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान' सरकारी संस्था है। इसकी कोटा, उदयपुर, अलवर, जयपुर, टोंक और चित्तौड़ में शाखाएँ हैं, जहाँ हस्तलिखित पुस्तकों का अम्बार लगा हुआ है। विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर का ग्रन्थालय संस्कृत-साहित्य के शोधकर्ताओं की बड़ी सहायता कर सकता है। वहाँ भी हस्तलिखित ग्रन्थों का बहुमूल्य संग्रह है। देशी रियासतों के राजघरानों के अपने निजी संग्रहालय हैं। इन्हें भी छानने की आवश्यकता है।

दक्षिण के संग्रहालयों में जो साहित्य मिलता है, वह विभिन्न लिपियों में है। नागरी लिपि की अपेक्षा फारसी, तेलुगु, तमिल, मलयालम, कन्नड़ आदि लिपियों में अधिक है। अतः इन पुस्तकालयों का उपयोग लिपि-विशेषज्ञ की सहायता से ही हो सकता है। पंजाब में जो मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य गुरुमुखी लिपि में पाया गया है, उसका नागरीकरण होता जा रहा है।

हस्तलिखित ग्रन्थों को प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई अनुभव होती है। मराठी के एक पाण्डुलिपि-संग्राहक ने मुझे अपने अनुभव सुनाते हुए कहा था कि "एक बार मुझे पता लगा कि अमुक स्थान में एक सज्जन के पास रामदास-कालीन संतों की वाणियों का अच्छा संग्रह है। मैं उनके पास गया। उनसे बहुत अनुनय-विनय की कि आप वृद्ध हो गए हैं। ग्रन्थ संस्था को दे दीजिए, शोधार्थियों को लाभ होगा। उन्होंने पहले तो पाण्डुलिपि होने से ही इन्कार कर दिया; फिर बोले—फुरसत में देखूँगा। मैं कई बार उनके पास गया और प्रत्येक बार बोले, "अहो, वेल नाहीं मिलाला" (अभी समय नहीं मिला)। उन्होंने महीने बाद आने को कहा। इस बीच सुना कि उनका स्वर्गवास हो गया है। मैं उनके यहाँ संवेदना प्रकट करने गया। उनके पुत्रों ने स्वयं साश्रु कहा—"बाबा के ये ग्रंथ, जो उन्होंने अपने प्राणों के समान सँजोकर रखे हैं, मैं संस्थान को भेंट करता हूँ क्योंकि हमने देखा था कि आप इन्हें लेने कितने बार आये और बाबा ने नहीं दिये। एक प्रार्थना है! आप इन ग्रन्थों के साथ कहीं बाबा का नाम अवश्य जोड़ देना।"

कई साम्प्रदायिक संस्थाएँ अपने सम्प्रदाय के व्यक्तियों के अतिरिक्त दूसरे को ग्रन्थ छूने भी नहीं देतीं। ऐसी स्थिति में शोधकर्ता असत्य बोलकर भी अपना काम निकाल लेता है या किसी सम्प्रदायी व्यक्ति का सहारा लेता है। दुर्लभ पाण्डुलिपियों की माइक्रोफिल्म तैयार की जा सकती है। लंदन के ब्रिटिश म्यूजियम तथा इण्डिया लाइब्रेरी में भी पाण्डुलिपियों और दुर्लभ (प्रकाशित)

ग्रन्थों का संग्रह है। वहाँ के पुस्तकाध्यक्ष उनकी 'माइक्रोफिल्म' तैयार कर भेजने की व्यवस्था भी कर देते हैं। पाण्डुलिपियों को पढ़ने की भी कला है। कई प्राचीन प्रतियों में अक्षर की आकृति वर्तमान अक्षरों की आकृति से भिन्न मिल सकती है। तिथि, सम्वत् आदि उल्टे लिखे मिलेंगे—"अंको नाम वामतो गतिः।" कहीं अंक संकेताक्षरों में मिलेंगे, यथा 4 के लिए वेद, श्रुति आदि। 6 के लिए रस, ऋतु आदि।

(3) **रिपोर्ट**—समय-समय पर विभिन्न विषयों पर शासकीय, अशासकीय रिपोर्टें प्रकाशित होती रहती हैं। प्रतिवर्ष प्रत्येक प्रान्तीय सरकार अपने प्रान्त की प्रगति-सूचक रिपोर्ट प्रकाशित करती है। उनसे अभीप्सित सामग्री प्राप्त की जा सकती है।

(4) **संस्मरण**—डायरी, आत्मकथा या यात्रा-विवरण, लेखकों के पत्र आदि से भी सामग्री प्राप्त होती है। मुगलकालीन इतिहास की सामग्री अकबरनामा, जहाँगीरनामा आदि से प्राप्त की जा सकती है। हिन्दी में प्राचीनतम आत्मकथा बनारसीदास की 'अर्धकथा' के नाम से छप चुकी है। उसमें कवि ने अपने समय का अच्छा चित्रण किया है। 'डायरी' लिखने की प्रथा बहुत पुरानी नहीं है। आत्मकथाएँ बहुत लिखी गयी हैं। कुछ समय पूर्व हिन्दी में 'बच्चन' की 'प्रवास की डायरी' प्रकाशित हुई है। उससे अंग्रेज़ी-कवि तथा साहित्य की कई ज्ञातव्य बातों का पता लगता है। साहित्य-जगत् के अतिरिक्त इंग्लैण्ड के सामाजिक जीवन की झलक भी उसमें मिलती है।

प्रसिद्ध लेखकों के पत्रों से तत्कालीन परिस्थितियों तथा लेखक की मनोदशा का पता चलता है। पत्र लिखते समय लेखक स्वच्छन्दतापूर्वक अपने विचार प्रकट करता है। हिन्दी में आचार्य पद्मसिंह शर्मा, महावीरप्रसाद द्विवेदी, सुमित्रानन्दन पन्त के पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। पर 'पन्तजी' के वे ही पत्र प्रकाशित हुए हैं जो उन्होंने 'बच्चन' को लिखे हैं। हिन्दी के कुछ लेखक अच्छे पत्र-लेखक हैं; माखनलाल चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, शिवपूजन सहाय, बनारसीदास चतुर्वेदी, भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव आदि के पत्रों का प्रकाशन होना चाहिए। 'माधव' के पत्रों में प्रचुर साहित्य-छटा है। उनमें भावना और भाषा में मानो होड़ लगी मिलती है। कई लेखकों के पत्र केवल घटना या तथ्य-सूचक मात्र होते हैं, जैसे महावीर प्रसाद द्विवेदी के पत्र। पर ऐसे पत्रों का भी महत्व है। हमें हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के पत्रों को नष्ट नहीं होने देना चाहिए।

आधुनिक आत्मकथाओं में महात्मा गांधी की आत्मकथा काफी प्रसिद्ध है। हिन्दी के कुछ लेखकों की भी आत्मकथाएँ प्रकाश में आयी हैं। हाल ही में बच्चन की आत्मकथा के दो भागों—'क्या भूलूँ, क्या याद करूँ', 'नीड़ का पुनः निर्माण' की बड़ी चर्चा रही। उनमें बच्चन ने स्वयं अपना 'एक्स-रे'

किया है । इससे उनके सामाजिक दृष्टि से भद्र और अभद्र दोनों रूप प्रकाश में आये हैं । प्रश्न यह है कि क्या अभद्र रूप, जिसमें उनसे सम्बद्ध जीवित स्त्री-पुरुष भी उद्घाटित हुए हैं, प्रकाश्य हैं ? बच्चन के व्यक्तित्व तथा उनकी कविता के स्रोत को जानने के लिए उनकी सजीली, प्रवहमान जीवित भाषा-शैली में लिखित उनके आत्मचरित्र सहायक हो सकते हैं ।

प्राचीन तथा मध्यकाल के भारत-प्रवासी विदेशियों के यात्रा-वर्णनों से बहुत-कुछ शोध-सामग्री प्राप्त होती है । ऐसे यात्रियों में चीनी फाहियान, मेगस्थनीज़, अलबरूनी आदि के वर्णनों से बहुत-सी काम की बातें ली जा सकती हैं । जनगणना-रिपोर्टों में भी भाषा, इतिहास आदि की सामग्री मिलती है ।

(5) **गज़ेटियर**—ब्रिटिश काल में भारत-सरकार ने इम्पीरियल तथा डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर प्रकाशित किये थे जिनमें ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, भाषिक, साहित्यिक आदि सामग्री विस्तार के साथ दी गयी है । स्वराज्य प्राप्त होने के बाद पुराने गज़ेटियरों के संशोधित संस्करण प्रकाशित हो रहे हैं । इनसे भी शोधकर्ता अभीष्ट सामग्री प्राप्त कर सकता है । पर इनका उपयोग बहुत सतर्कता से करना चाहिए, क्योंकि बहुत-सी सामग्री किंवदन्तियों से संगृहीत है ।

(6) **पत्र-पत्रिकाएँ**—पत्र-पत्रिकाओं के अंकों में भी सामग्री बिखरी पड़ी रहती है । उनका अवलोकन भी लाभप्रद हो सकता है । प्राचीन पत्र-पत्रिकाओं से उपयोगी सामग्री मिल सकती है । 'छायावाद' नामकरण के सम्बन्ध में पं० मुकुटधर पाण्डेय का लेख जबलपुर की 'श्री शारदा' में छपा था । हिन्दी की पहली कहानी सप्रेजी के 'छत्तीसगढ़-मित्र' में छपी थी । राष्ट्रीय कविता के विकास को जानने के लिए कानपुर के 'प्रताप' और खण्डवा के 'कर्मवीर', गोरखपुर के 'स्वदेश', आगरा के 'सैनिक', और छायावाद की प्रगति के ज्ञान के लिए कलकत्ते के 'मतवाला' के अंक देखे जाने चाहिए । द्विवेदी-युग की साहित्यिक गतिविधि का 'सरस्वती' के अंकों को पढ़े बिना ज्ञान नहीं हो सकता । बाल-साहित्य पर काम करने वाले को 'शिशु', 'बालसखा', 'खिलौना', 'बालक' आदि पत्रों के प्राचीन अंक पढ़ने होंगे ।

(7) **व्यक्ति**—लोक-साहित्य, समाज-विज्ञान, इतिहास आदि विषयों की कुछ सामग्री जीवित व्यक्तियों से प्राप्त हो सकती है । लोक-साहित्य के अनुसंधाता तो इन्हीं पर निर्भर करते हैं । इतिहास के विस्मृत पृष्ठ दीर्घजीवी वृद्धों के वर्णनों से लिखे गए हैं । सन् 1857 की जन-क्रान्ति का, जिसे अंग्रेज़ 'सिपाही-विद्रोह' और जनता 'स्वाधीनता का प्रथम युद्ध' कहती है, बहुत-कुछ वर्णन वृद्धों के मुख से प्राप्त हुआ है । स्व० वृन्दावनलाल वर्मा ने 'झाँसी की

रानी' उपन्यास में वर्णित बहुत-सी घटनाएँ व्यक्ति-स्रोतों से ही प्राप्त की थीं।

व्यक्तियों से साक्षात् भेंट या पत्राचार द्वारा भी सामग्री प्राप्त की जा सकती है। समाज और भाषा के अनुसंधाताओं को कमरे में बैठकर पुस्तकों के अध्ययन के अतिरिक्त बाहर जन-समूह में जाकर भी सामग्री प्राप्त करनी पड़ती है। (इसे अंग्रेज़ी में 'फील्ड-वर्क' और हिन्दी में 'क्षेत्रीय कार्य' कहते हैं)। उन्हें बहुत-सी सामग्री प्रत्यक्ष अनुभव से भी प्राप्त करनी पड़ती है। इसमें अपनी आँखों और कानों का उपयोग करना पड़ता है। घटनाओं को प्रत्यक्ष देखने और अन्य व्यक्तियों के मुख से आवश्यक बातें सुनकर सामग्री प्राप्त की जाती है। भाषा या बोली का अध्ययन ऐसे व्यक्ति की सहायता से किया जाता है जो शोधकर्ता तथा अपनी भाषा का ज्ञाता होता है—यानी दुभाषिया होता है। ऐसा व्यक्ति 'सूचक' कहलाता है। सूचकों से कई विषयों के अनुसंधान में सहायता ली जाती है। कई बार एक ही नहीं, कई व्यक्तियों से साक्षात्कार द्वारा तथ्य एकत्र करना पड़ता है। 'बोली' के उच्चारण या शब्दार्थ की पुष्टि के लिए एकाधिक व्यक्तियों का सहयोग अनिवार्य होता है।

13

शोध-सामग्री के स्रोत

पुस्तकालय

शोधकर्ता को अपनी सामग्री एकत्र करने के लिए पुस्तकालय का उपयोग करना आवश्यक होता है। बड़े पुस्तकालय प्रत्येक विषय की पुस्तकों का संग्रह रखते हैं, क्योंकि पुस्तकों के भण्डार से अपने विषय से सम्बन्धित पुस्तकों को छाँटना भी परिश्रमसाध्य कार्य है। कई पुस्तकालयों के पुस्तकालयाध्यक्ष शोधार्थी की इस सम्बन्ध में सहायता करने को भी तत्पर रहते हैं। कुछ विषयों में तो उनकी इतनी अच्छी गति रहती है कि वे तत्सम्बन्धी पुस्तक-सूची तक तैयार करा देते हैं। परन्तु ऐसे विशेषज्ञ पुस्तकालयाध्यक्षों की संख्या हमारे देश में कम है। अतः शोधार्थी को अपनी समस्या स्वयं हल करने का प्रयत्न करना चाहिए। पुस्तकालय में जाने से पूर्व उसे यह निश्चय कर लेना चाहिए कि वह वहाँ क्या खोजने जा रहा है; अपने विषय के सम्बन्ध में क्या जानना चाहता है। यों ही पुस्तकों के शीर्षक या पृष्ठ पलटने से उसे अभिलषित सामग्री प्राप्त

नहीं होगी। उसे सर्वप्रथम अपने विषय की संदर्भ-सूची तैयार करनी चाहिए। इसमें पुस्तकों तथा शोधपत्र-पत्रिकाओं को सम्मिलित करना आवश्यक होता है। यदि संदर्भ-सूची लेकर पुस्तकालय में जाया जाये तो पुस्तकों की माँग तुरन्त की जा सकती है।

पुस्तकालय में पाठ्य-सामग्री (1) पुस्तकों तथा (2) पत्र-पत्रिकाओं में विभाजित रहती है। पुस्तकों के अन्तर्गत विभिन्न विषयों की पुस्तकें, पत्रक एवं वार्षिक विवरणिकाएँ आती हैं। पुस्तकालयों का पता 'कार्ड केटलॉग' से लग जाता है। प्रत्येक कार्ड पर लेखक का नाम, पुस्तक का शीर्षक, उसका संस्करण, प्रकाशक का नाम, प्रकाशन-तिथि आदि दी रहती हैं। अन्त में विशेष जानकारी भी दे दी जाती है (यथा, पृष्ठ-संख्या, आकार आदि)। 'कार्ड' के बाईं ओर 'काल नम्बर' (पुस्तक का वह नम्बर, जिससे वह अलमारी में खोजी जा सकती है) रहता है। इसके अतिरिक्त 'लेखक-कार्ड' भी रहता है जिस पर उसकी पुस्तक दर्ज रहती है। यह प्रायः प्रत्येक पुस्तकालय में रहता है। यदि पुस्तक के कई लेखक होते हैं तो कार्ड पर सम्पादक का नाम रहता है। पुस्तकालय में जितने विषयों की पुस्तकें होती हैं, उन सबके पृथक् कार्ड रहते हैं। सभी कार्ड अकारादि-क्रम से लगाये जाते हैं।

विभिन्न विषयों के विभाजन की विशिष्ट प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। वे हैं (1) एल० सी० प्रणाली (लाइब्रेरी साइंस प्रणाली) और (2) डी० वी० (डेसीमल प्रणाली)। एल० सी० प्रणाली से कई विषयों की पुस्तकों का विभाजन करने में आसानी पड़ती है परन्तु अधिकांश पुस्तकालयों में डी० वी० डेसीमल प्रणाली से विभाजन किया जा रहा है। एल० सी० प्रणाली में ए, बी, सी, डी से ज़ेड तक पुस्तकें वर्गीकृत होती हैं।

उदाहरणार्थ—ए—सामान्य पुस्तकें
बी—दर्शन, धर्म
सी—इतिहास
डी—विश्व-इतिहास
ई-एफ—अमरीकी इतिहास
जी—भूगोल, नृतत्त्व-विज्ञान
एच—समाज-विज्ञान
आई—राजनीति-विज्ञान
के—विधि
एल—शिक्षा (सामान्य)
एल-ए—शैक्षिक इतिहास
एल-बी —शिक्षा-सिद्धान्त

एल-सी—विशेष प्रकार

एल-डी—यू० एस० स्कूल

डी० वी० डेसीमल प्रणाली के विभाजन का रूप निम्नानुसार है, जो दशमलव से प्रारम्भ होता है।

सामान्य संदर्भ 000, दर्शन 100; मनोविज्ञान 200, धर्म 300, समाज-विज्ञान 310, सांख्यिकी 320, राजनीति-विज्ञान 340, विधि 350, प्रशासन 360, कल्याण-संस्थाएँ 370, शिक्षा (सामान्य) 370.1, सिद्धान्त और शिक्षा-दर्शन 370.9, शिक्षा का इतिहास 371, अध्यापक-अनुशासन-विधि 400, भाषा-विज्ञान 500, प्रकृति-विज्ञान 600, उपयोगी कला 700, ललित कला 800, साहित्य 800, इतिहास 900।

पुस्तकालय प्राय: दो विभागों अथवा कक्षों में विभक्त रहता है। एक में पुस्तकें और दूसरे में पत्र-पत्रिकाएँ संगृहीत रहती हैं। पत्र-पत्रिकाओं से सामग्री चुनने के लिए यदि लेख-संदर्भ-सूची उपलब्ध हो तो आवश्यक लेख तुरन्त खोजा जा सकता है, अन्यथा पत्र-पत्रिकाओं के यत्र-यत्र पृष्ठ उलटने पड़ते हैं।

हमारे देश में संदर्भ-ग्रंथों की बड़ी कमी है। पुस्तकों के तो सूची-ग्रंथ मिल भी जाते हैं, पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित शोधपरक लेखों की सूची प्राय: नहीं मिल पाती। कुरुक्षेत्र-विश्वविद्यालय से 'प्राची-ज्योति' नामक वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन होता है, जिसमें मानविकी से सम्बद्ध प्राय: प्रत्येक विषय पर देश-विदेश में प्रकाशित लेखों का सार-भाग प्रकाशित होता है। उससे पत्र-पत्रिका को खोजने में सहायता मिल जाती थी। हिन्दी में इस प्रकार के 'सार-संग्रहों' (डाइजेस्ट) के प्रकाशन की आवश्यकता है।हिन्दी में नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, परिषद्-पत्रिका, सम्मेलन-पत्रिका, गवेषणा आदि पत्रिकाओं में समय-समय पर जो शोध-सामग्री प्रकाशित हुई है, उसकी सूची प्रकाशित होनी चाहिए। इससे शोधकर्ताओं को अपने विषय-संदर्भ सरलता से प्राप्त हो सकेंगे। कतिपय प्रकाशन-संस्थाएँ भी मासिक प्रकाशनोंकी सूची दे रही हैं। हिन्दी में प्रकाशन-समाचार, साहित्य-परिचय, राष्ट्रभाषा- प्रकाशन आदि अपनी संस्था के प्रकाशनों के अतिरिक्त अन्य प्रकाशनों की भी सूची देते हैं। दिल्ली के 'प्रकर' तथा पटना की 'समीक्षा' नामक मासिक पत्रिका में भी विविध विषयों की पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित होती रहती हैं।

पुस्तकालयों में शोधार्थी को विश्वकोषों से भी सहायता लेनी चाहिए। अंग्रेजी में इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, इनसाइक्लोपीडिया अमेरिका, इनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन एण्ड एथिक्स, इनसाइक्लोपीडिया ऑव एजूकेशनल रिसर्च, इनसाइक्लोपीडिया ऑव सोशल साइंस। हिन्दी में बसु का विश्वकोश, नागरी-प्रचारिणी सभा का विश्वकोश, साहित्यकोश भाग एक और

दो, हिन्दी पुस्तक (स्व० माताप्रसाद गुप्त), उपन्यास-कोश (डॉ० गोपाल राय), पुराण-कोश (मेनन), भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र-कोश (चित्राव), भाषा-विज्ञान-कोश (भोलानाथ तिवारी) आदि से भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। पुस्तकालयों में सरकारी रिपोर्टों का अध्ययन भी बहुत कुछ सामग्री प्रदान कर सकता है। जनगणना-रिपोर्ट, ज़िलों के गज़ेटियर, विविध कमेटियों-कमीशनों की रिपोर्टें, यथा राधाकृष्णन् कमीशन शिक्षा रिपोर्ट, कोठारी कमीशन-रिपोर्ट आदि। नेशनल लाइब्रेरी से प्रकाशित सर्वभाषा-पुस्तक-सूची से भी सहायता ली जा सकती है।

व्यक्तियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रकाशन तथा साहित्य-संस्थाएँ, व्यक्ति-परिचय 'हूज़ हू, ईयर बुक' आदि की सहायता ली जा सकती है। हिन्दी-साहित्य-कोश भाग 2 में भी हिन्दी-लेखकों के ग्रंथों आदि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। Cumulitive Book-Index में अंग्रेजी की 1898 ई० से वर्तमान काल तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची है।

पुस्तकालय में आप जिस पुस्तक की माँग करते हैं यदि वह नहीं होती तो अन्य पुस्तकालय से कुछ समय के लिए उधार माँगी जा सकती है।

शोधार्थियों को हमारे देश के निम्नांकित ग्रंथागारों को सामग्री-संकलन तथा परामर्श के लिए उपयोग में लेना चाहिए—

(1) **राष्ट्रीय पुस्तकालय** (National Library) **कलकत्ता**—यह स्वाधीनता के पूर्व 'इम्पीरियल लाइब्रेरी' कहलाता था। इसमें भारतवर्ष में प्रकाशित सभी विषयों और भाषाओं की पुस्तकें संगृहीत हैं। यह पुस्तकालय लॉर्ड कर्ज़न के कार्यकाल में उन्हीं की प्रेरणा से स्थापित हुआ था। इसे 'कॉपीराइट लाइब्रेरी' का दर्जा प्राप्त है। इसका परिणाम यह हुआ है कि प्रत्येक प्रकाशक को अपने प्रकाशनों की निश्चित संख्या में प्रतियाँ अनिवार्यत: भेजनी पड़ती हैं। इसका संदर्भ-विभाग (Reference Section) शोधकर्ताओं को परामर्श भी देता रहता है। इसमें प्रत्येक विषय के प्राचीन-से-प्राचीन संदर्भ-ग्रंथ संगृहीत हैं, जहाँ बैठकर शोधार्थी यथेच्छ सामग्री प्राप्त कर सकता है। पुस्तकालय भारतीय राष्ट्रीय संदर्भग्रंथ-सूची तैयार कर रहा है। इसके कुछ भाग प्रकाशित भी हो चुके हैं।

(2) **लोकसभा-पुस्तकालय**—नई दिल्ली के लोकसभा-भवन में यह पुस्तकालय स्थित है। इसे भी 'कॉपीराइट लाइब्रेरी' का दर्जा प्राप्त है। इसलिए इसमें भी देश की सभी भाषाओं के प्रकाशन अनिवार्यत: प्राप्त होते रहते हैं। यद्यपि इसका उपयोग लोकसभा-सदस्य ही अधिकतर करते हैं पर विशेष अनुमति से अन्य व्यक्ति भी इससे लाभान्वित हो सकते हैं। इसी से संदर्भ और शोध-विभाग भी जुड़ा हुआ है जो शोधार्थियों की समस्याओं को सुलझाने में

सहायता देता रहता है। शासकीय प्रपत्र, अभिलेख आदि का अच्छा संग्रह नई दिल्ली के 'नेशनल आर्काइव्ज़' में किया मिलता है। यहाँ इतिहास की अलभ्य सामग्री प्राप्त होती है। ब्रिटिश शासनकाल के शासकीय अभिलेखों का अच्छा संग्रह है। हो सकता है, कुछ सामग्री अंग्रेजी शासकों ने राजनीतिक कारणों से नष्ट भी कर दी हो, फिर भी बहुत-कुछ शोधपरक सामग्री अभी सुरक्षित है। इतिहास और पुरातत्त्व के प्रेमियों और शोधकर्ताओं को इसका उपयोग करना चाहिए। समाजशास्त्र, नृतत्त्वविज्ञान, मनोविज्ञान, अंग्रेजी-साहित्य आदि विषयों पर शोधकर्ताओं को लखनऊ-विश्वविद्यालय के टैगोर पुस्तकालय से, हिन्दी, संस्कृत, भारतीय पुरातत्त्व विषयों के शोधार्थियों को बनारस-हिन्दू-विश्व-विद्यालय; मुस्लिम इतिहास, बंगला, संस्कृत, तिब्बती साहित्य के अध्येताओं को कलकत्ता-विश्वविद्यालय; भाषा-विज्ञान के अनुसंधाताओं को पूना के डेकन-कॉलेज; इतिहास, प्राचीन साहित्य, पुरातत्त्व के अध्ययनकर्ताओं को भंडारकर ओरियण्टल रिसर्च-इंस्टीट्यूट, पूना तथा कलकत्ता और बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी-पुस्तकालयों का लाभ उठाना चाहिए। प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों का विशिष्ट भाण्डार तंजौर तथा मद्रास के आडयर पुस्तकालयों में है।

हिन्दी-साहित्य के अध्येताओं को नागरी-प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-पुस्तकालय तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग के ग्रंथ-संग्रहों से लाभान्वित होना चाहिए। भारतीय प्राचीन साहित्य, विशेषकर अंग्रेज-कम्पनी-शासनकाल का साहित्य, ब्रिटिश म्यूज़ियम लाइब्रेरी तथा इण्डिया-हाउस लाइब्रेरी लंदन में सुरक्षित है। वहाँ की ग्रंथ-सूची प्राप्त कर लेनी चाहिए। वहाँ के पुस्तकालयाध्यक्ष आवश्यक सामग्री की 'माइक्रोफिल्म' तैयार कर आपको उचित दाम पर भेज सकते हैं।

14

टीप (NOTES) कैसे ली जाय ?

संदर्भ-ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते समय उनसे आवश्यक तथ्य टीप लेने की भी पद्धति है। आपकी दृष्टि जब संदर्भित स्थल पर जम जाय तब आप उसे अपने 'कार्ड' या नोटबुक में उद्धरण-सहित टीप लीजिये। टीप कभी लेखक के शब्दों में उद्धरण-चिह्न सहित ली जाती है और कभी पदच्छेद (पेरा) या पृष्ठ का सार-भाग ही लिया जाता है। ऐसी स्थिति में उद्धरण-चिह्न आवश्यक

नहीं होते, क्योंकि आप अपनी ही भाषा में उसे टीप रहे हैं। कभी-कभी आप उद्धृत अंश पर अपनी प्रतिक्रिया भी टीपते हैं।

टीपने के लिए टीप (नोट)-कार्ड 4″×6″ आकार के मिलते हैं। कार्ड पर 'विषय-बिन्दु' (टॉपिक) शीर्षक रहे, उसके नीचे उद्धृत वाक्य, वाक्य के नीचे क्रमशः लेखक का नाम, ग्रंथ या पत्र-पत्रिका का नाम, संस्करण और पृष्ठ-संख्या रहनी चाहिए। अन्त में यदि आवश्यक समझा जाए तो आप अपनी प्रतिक्रिया भी टीप लें। एक कार्ड के समाप्त होने पर यदि विषय-बिन्दु पर टीप करना शेष रह गया हो तो दूसरे कार्ड का उपयोग कीजिये और उसे पहले कार्ड के साथ नत्थी कर लीजिये। कार्ड में टीपने का नमूना—

रामचरितमानस की रचना

"रामचरितमानस का यथेष्ट भाग काशी में रचा गया था और इसका प्रचार तथा पठन-पाठन यों तो सभी जगह है पर अयोध्या और काशी में विशेष रूप से है। रामायण के ये दोनों मुख्य केन्द्र हैं।"

—श्री शंभूनारायण चौबे, मानस-अनुशीलन (प्रथम संस्करण), पृ० 8

उपर्युक्त कार्ड में लेखक के वाक्य ज्यों-के-त्यों उद्धृत हैं।

नीचे कार्ड में मूल लेखक के विचारों को शोधार्थी ने अपने शब्दों में टीप लिया है और नीचे मूल लेखक के ग्रंथ का उल्लेख कर दिया है—

आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास

आधुनिक काल में शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती इत्यादि भाषाओं का विकास हुआ; मागधी अपभ्रंश से बिहारी, बँगला, असमिया, उड़िया आदि भाषाओं का, अर्द्ध मागधी के अपभ्रंश से पूर्वी हिन्दी का और महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी भाषा का। विस्तृत विवेचन के लिए देखिये—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा-कृत हिन्दी भाषा का इतिहास, 1949, भूमिका, पृ० 47-48।

नीचे के कार्ड में शोधार्थी ने उद्धृत मत पर अपनी प्रतिक्रिया टीपी है—

काव्य की परिभाषा

1. "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" —विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, चौखम्बा सीरीज़, प्रथम परिच्छेद, पृ० 23।
2. "गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न, न भिन्न"
   —तुलसी, रामचरितमानस, गीताप्रेस—संस्करण, पृ० 72
3. "इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली"—दंडी, काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद, सूत्र 10

टिप्पणी—उपर्युक्त उद्धरणों में काव्य के संबंध में दो मत प्रस्तुत हुए हैं; एक (दंडी का) मत है जो काव्य में शब्द अर्थात् 'पदावली' को प्रधानता देता है, अन्य मत विश्वनाथ और तुलसी के हैं जो शब्द और अर्थ दोनों के समभाव को 'काव्य' मानते हैं। हमें तुलसी की व्याख्या तर्क-सम्मत प्रतीत होती है। केवल शब्द और केवल अर्थ काव्य नहीं है। दोनों के समभाव में ही काव्य का वास्तविक रूप अन्तर्हित है। तुलसी इसी से शब्द और अर्थ-द्वैत की सत्ता मानने को तत्पर नहीं हैं। निरर्थक शब्द की वे कल्पना भी नहीं करते। उन्होंने काव्य की अद्वैतवादी ढंग से व्याख्या की है।

पत्रिका से टीप लेने की विधि

कला की सफलता

"कलाकार अपनी कल्पना को मूर्त रूप केवल विनोद के लिए नहीं प्रदान करता बल्कि प्रत्येक कला के साथ एक निश्चित उद्देश्य जुड़ा होता है और उस उद्देश्य का सम्प्रेषण ही कलाकार का लक्ष्य होता है। किसी कलाकृति की सफलता न तो केवल उसके पीछे जुड़ी कल्पना में है और न शिल्पकारिता में है। उसकी सफलता तो इन दोनों के सहयोग से सम्प्रेषित उद्देश्य में निहित है।"

—श्री चन्द्रेश्वरी तिवारी—कला का स्वरूप, परिषद्-पत्रिका (पटना), जनवरी 1966 ई०, पृ० 95।

यह मान्यता है कि उद्धरण विषय-विशेषज्ञ के विचारों के होने चाहिए और शोधपत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का उपयोग करना चाहिए। पर कभी-कभी साप्ताहिक पत्रों में भी शोधपरक सामग्री छप जाती है। यदि अप्रसिद्ध लेखक भी कोई नयी बात कहीं प्रकाशित करता है तो वह उपेक्षणीय नहीं होनी चाहिए। विचारों का नावीन्य या उनकी शोधपरकता का महत्त्व है, लेखक या पत्र-पत्रिका का नहीं। कई बार शोधार्थी प्रसिद्ध लेखकों के सामान्य विचारों को भी उद्धृत कर देता है, केवल इस भ्रम में कि प्रबन्ध में उद्धरण की बहुलता से उसे गम्भीरता प्राप्त होगी। गम्भीरता उद्धरण की भरमार से नहीं, विषय-सामग्री की विश्लेषण-पटुता से सिद्ध होती है।

प्रत्येक कार्ड पर विषय का शीर्षक रहना चाहिए और एक विषय (टॉपिक) के सब कार्ड साथ नत्थी कर लेने से अध्याय लिखने में सरलता हो जाती है। यदि पुस्तकालय की पुस्तक से उद्धरण लिया गया हो तो कार्ड के कोने में उसका 'काल नम्बर' भी टीप लेना चाहिए जिससे यदि उसकी पुनः आवश्यकता पड़े तो आसानी से खोजी जा सके। एक कार्ड पर एक ही विषय (टॉपिक) की टीप होनी चाहिए। जो टीप ली जाय वह अधूरी न हो और स्पष्ट शब्दों में सावधानी से लिखी गयी हो, जिससे दुबारा स्रोत-पुस्तक या पत्र-पत्रिका को खोजने की झंझट न रहे। अपने टीप के कार्ड की स्थायी फाइल बनाइये क्योंकि उनका 'प्रबन्ध' के प्रस्तुतीकरण के पश्चात् भी कभी किसी लेख में उपयोग लिया जा सकता है।

यदि टीपने की कार्ड-विधि का प्रयोग न करना चाहें तो छोटी-छोटी कापियों से काम चलाइये। प्रत्येक 'कापी' में कार्ड के समान ही टीपने का कार्य कीजिये।

पुस्कालय में आप जब जायें तब अपने साथ एक नोट-बुक अवश्य रखें और उसमें आवश्यक सामग्री टीप लें। घर जाकर उसे 'कार्ड' या कापी में यथास्थान उतार लें।

15

तथ्य-संचय का साधन—साक्षात्कार अथवा संलाप

इतिहास के विस्मृत तथ्य, भाषा की प्रकृति तथा वर्तमान समस्याओं पर विशिष्ट व्यक्तियों के विचारों को जानने का साधन सम्बन्धित व्यक्तियों का साक्षात्कार है। जिस व्यक्ति से साक्षात्कार करना हो उसे अपने आने की पूर्व सूचना देनी चाहिए। उसे साक्षात्कार के उद्देश्य से अवगत ही नहीं कराना चाहिए वरन् उसे अपने प्रमुख प्रश्नों की प्रति भी भेज देनी चाहिए जिससे वह आपके प्रश्नों का उत्तर भी तैयार रखे। कई बार साक्षात्कारकर्ता बिना सूचना दिये ही पहुँचकर कहने लगते हैं, "क्षमा कीजिये, मैं आपका कुछ समय लेना चाहता हूँ। आपसे अमुक विषय पर चर्चा करना चाहता हूँ।" चूँकि आपने 'व्यक्ति' को पूर्व सूचना नहीं दी थी, इसलिए वह आपको निराश भी कर सकता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने दैनिक विहित कार्य में व्यस्त रहता है। अतः आपके एकदम धमक पहुँचने पर वह आपके प्रश्नों का उत्तर देने को तैयार नहीं होता। वह या तो झुँझला उठता है या झुँझलाता नहीं है तो आपके ही शब्दों को दुहरा देता है, "क्षमा कीजिये, आज तो मुझे समय नहीं है, आप अमुक दिन आइये!" निराशा से बचने के लिए आपको पूर्व सूचना तथा अपनी समस्या की पूर्व तैयारी के साथ 'व्यक्ति' के पास जाना चाहिए। व्यक्ति के पास पहुँचकर आपको उसके प्रति विनम्रता और आदर का भाव प्रदर्शित करना चाहिए। "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्"—बिना श्रद्धा के ज्ञान प्राप्त नहीं होता, यह सनातन सत्य है। आप प्रश्न इस ढंग से न पूछें कि 'व्यक्ति' यह समझ बैठे कि आप उसके ज्ञान की परीक्षा ले रहे हैं। वह आपके प्रश्नों का जो भी उत्तर दे उसे या तो भलीभाँति स्मरण रखें या उसी के सामने कागज़ पर टीप लें। साक्षात्कार की समाप्ति पर आप अपनी टीप को उसे सुना या पढ़ा दें और उसके हस्ताक्षर ले लें, साथ ही उससे उसे प्रकाशित करने की अनुमति भी प्राप्त कर लें। शिक्षित व्यक्ति का साक्षात्कार निर्बाध हो सकता है और सबाध भी। यह साक्षात्कार लेने और देने वाले के स्वभाव पर निर्भर करता है। यदि आप साक्षात्कार देनेवाले से, जिसे हमने 'व्यक्ति' कहा है, सौहार्द स्थापित कर सकें, तब तो आपके प्रश्न चाहे जितने उलझे या अस्पष्ट होंगे, वह उनको प्रतिप्रश्नों के द्वारा स्पष्ट करवा लेगा और आपको आवश्यक जानकारी दे देगा। यदि 'व्यक्ति' का स्वभाव चिड़चिड़ा होगा तो आपको

उससे एक ही बैठक में सारी बातें प्राप्त नहीं हो पायेंगी। आपको उससे एकाधिक बार भेंट करनी होगी, या उसके किसी सम्बन्धी या मित्र के माध्यम से उसके पास जाना होगा। अपरिचित व्यक्ति के साक्षात्कार में परिचित मित्र की सहायता से शीघ्र कार्य-सिद्धि हो जाती है।

यदि साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति अशिक्षित है तब उससे तथ्य की बात निकालने में कई बार कठिनाई होती है। वह आपको या तो कोई सरकारी अफसर समझकर बिदक सकता है या कोई भेदिया समझकर उत्तर देने में संकोच कर सकता है। लोक-साहित्य के अनुसंधाता को ऐसे व्यक्तियों से साक्षात्कार करने में इसी प्रकार की कठिनाई पड़ती है। अतः उनका कार्य परिचित व्यक्ति की सहायता के बिना सम्पन्न नहीं हो पाता। समसामयिक शोध में साक्षात्कार (Interview) अनिवार्य हो जाता है। समाज-विज्ञान, भाषा-विज्ञान, इतिहास आदि विषयों के शोधार्थियों को साक्षात्कार या सलाप-कला का ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है और इस कला का ज्ञान बहुत कष्टसाध्य नहीं है। ज़रा अपने स्वभाव में मृदुता और नम्रता लाइये तथा समालाप्य (Interviewee) के पास पूर्ण तैयारी के साथ जाकर उसकी तत्कालीन मनोवृत्ति को भाँपकर उसके अनुरूप आचरण कीजिये और उसे यह अनुभव कराइये कि आप उसे ही विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उपयुक्त समालाप्य मानते हैं। ज़रा मनोविज्ञान का सहारा लीजिये—'श्रद्धा दीजिये, ज्ञान लीजिये' इस गीतोक्त मन्त्र को न भूलिये।

कुछ विषय ऐसे होते हैं जिनमें एक ही व्यक्ति का साक्षात्कार 'अलम्' नहीं होता। एक व्यक्ति के साक्षात्कार से प्राप्त तथ्यों की संपुष्टि के लिए एकाधिक व्यक्तियों के साक्षात्कार की भी आवश्यकता पड़ सकती है। समालाप के समय एक बात का ध्यान अवश्य रखा जाए कि समालाप्य के शिक्षा के स्तर के अनुरूप ही वार्तालाप की भाषा का रूप हो, जिससे वह आपके प्रश्नों का ठीक आशय समझ सके। उदाहरणार्थ, आप नई कविता की सम्प्रेषणीयता के सम्बन्ध में किसी सामान्य पढ़े-लिखे व्यक्ति की सम्मति लेना चाहते हैं। आप उससे पूछ बैठते हैं—"आप आज की कविता के किन हस्ताक्षरों की रचनाओं से प्रभावित होते हैं?" वह काव्य-प्रेमी तो है, पर आज की नयी शब्दावली से परिचित नहीं है। अतः वह आपके प्रश्न के अर्थ को तब तक सोचता ही रहेगा जब तक आप स्वयं उसका अभिधा में अर्थ न बता दें। आप 'नये हस्ताक्षर' के स्थान पर 'नये कवि' का प्रयोग करते तो आपको तुरन्त उत्तर मिल जाता। तात्पर्य यह कि आपको अपने संभाष्य या प्रश्नों में ऐसी शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए जिसे संलाप्य सहज समझ सके।

संलाप यदि 'टेप' में भर लिया जाये, (रिकार्ड कर लिया जाये) तो वह

शत-प्रतिशत प्रामाणिक होगा। पहले हमने 'संलाप' को टीपकर संलाप्य के हस्ताक्षर लेने का सुझाव दिया था, पर यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक संलाप्य शिक्षित हो ही। ऐसी दशा में संलाप या भेंट-वार्ता का 'टेप-रिकार्ड' कर लेना ही अधिक उपयोगी होगा। शिक्षित संलाप्य व्यक्ति को भी अपनी 'वार्ता' को 'टेप' में रिकार्ड करवाना अधिक रुचिकर होगा। वार्ता की समाप्ति पर आप 'टेप' चलाकर उसे उसकी ही आवाज़ में उसकी 'वार्ता' सुना दीजिये। वह चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित, प्रसन्नता से उत्फुल्ल हो उठेगा।

शोधकर्ता को यों तो संलाप्य से अधिक बहस नहीं करनी चाहिए पर कभी-कभी बहस या जिरह की आवश्यकता पड़ जाती है।

सामाजिक शोध में सम्बन्ध-विच्छेद (Divorce) के कारणों को जानने के लिए जब शोधार्थी किसी महिला के पास जाता है तो उसे बड़ी कठिनाई अनुभव होती है। पहले तो वह सत्य बात छिपाती है पर संलापक के पुनः-पुनः उलट-पलटकर प्रश्न करने पर वह भाव-प्रवण हो सत्य कह उठती है। इसी प्रकार का एक 'संलाप' गूडे और हटन की 'मेथड ऑफ़ सोशल रिसर्च' से उद्धृत किया जाता है—

"**Interviewer**—Were there any times where you felt you did not play fair with your husband ?

Respondent—Never, I always played square with him. I never ran round on him until after divorce.

Interviewer—Pardon me, but I'd like to be certain. I have this correct. You say that you did not date until after divorce ?

Respondent—That's right. I was a good wife and I thought that would be immoral.

Interviewer—Then I must have written down same thing earlier that was not correct and did you not mention earlier that your main activity when you were separated was dating ?

Respondent—(Exitedly) well I never considered that real running around. Dick was like one of the family, a good friend of ours even while we were married. (In tears) Any way after what he was doing to me, I figured I had the right to do any thing I wanted.

Interviewer—Just what was he doing ?

Respondent—Well, I said a while ago that we got divorced because we just did not get along but that is not right. The truth was, he started to run around with my kid cousin who was only seventeen at the time, and got her in trouble. O'h it was a big scandal in the family, and I felt horrible about it. (Page 205)"

यहाँ यदि संलापक ने संलाप्य महिला के प्रथम कथन पर विश्वास कर उससे आगे जिरह न की होती तो सम्बन्ध-विच्छेद के सत्य कारण की बात प्रकाश में न आती। अतः कभी-कभी संलाप्य से जिरह भी करनी पड़ती है।

कभी-कभी संलाप्य आपके संलाप में इतनी अधिक रुचि लेने लगता है कि आपको आपके प्रश्नों के अतिरिक्त अधिक जानकारी दे देता है और आप तो संलाप के पश्चात् उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, वह भी आपके प्रति कम कृतज्ञ नहीं होता, क्योंकि आपने उसे महत्त्व दिया और उसके विचारों को प्रकाश में लाने का संकल्प व्यक्त किया। अपने शोध-प्रबन्ध में आप उसका उल्लेख करेंगे। उसके संलाप को 'प्रबन्ध' में उद्धृत करेंगे, यह उसके लिए कम प्रसन्नता का विषय नहीं हो सकता। संलाप के पश्चात् वह आपको 'जलपान' सहित 'पुनरागमनाय च' कहकर विदाई भी दे सकता है।

16

तथ्य एकत्र करने के साधन

(अ) तालिका (Schedule)
(आ) प्रश्नावली (Questionnaire) और
(ई) अभिमत पत्र (Opinionnaire)

विषय की सामग्री एकत्र करने के अनेक साधनों में परिपृच्छा-प्रपत्र भी एक साधन है। ये प्रपत्र तालिका (Schedule), प्रश्नावली (Questionnaire) और अभिमत-पत्र (Opinionnaire) का रूप धारण कर सकते हैं। जब व्यक्ति (शोधार्थी) प्रश्नकर्ता के सम्मुख ही प्रपत्र में प्रश्नों का उत्तर भर देता है तो वह पत्र 'तालिका'; और जब प्रपत्र डाक द्वारा व्यक्ति के पास भेजे जाते हैं तो वह 'प्रश्नावली'; और जब केवल व्यक्ति की सम्मत्यर्थ भेजा

जाता है तो उसे 'अभिमत-पत्र' कहा जाता है। शैक्षिक शोध में तालिका-प्रणाली का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है। अन्य विषयों की शोध में भी प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता आमने-सामने रहते हैं। तब प्रश्नकर्ता को अपने प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने में बड़ी सुविधा हो जाती है। वह बड़ी आत्मीयता से तथ्य एकत्र कर लेता है। डाक द्वारा प्रपत्र भेजने पर या तो समय पर उत्तर नहीं मिलता या मिलता है तो अपूर्ण मिलता है, या कभी-कभी नहीं भी मिलता। अतः किसी समस्या को समझने के लिए प्रत्यक्ष प्रपत्र भराने की प्रणाली अधिक सुविधाजनक है। क्योंकि यदि उत्तरदाता प्रश्न का ठीक अर्थ नहीं समझ पाता तो शोधार्थी उसी समय उसका स्पष्टीकरण कर देता है। डाक से भेजे गये प्रश्नों में कुछ प्रश्न उत्तरदाता के लिए प्रश्न ही बने रह सकते हैं।

(अ) प्रश्नावली

शोधार्थी जब दूरस्थ व्यक्ति से अपनी समस्या के समाधान के लिए प्रश्नों का प्रपत्र भेजता है, तब उसे निम्नलिखित बातों की सावधानी बरतनी चाहिए।

(1) प्रश्न स्पष्ट हों, उनकी शब्दावली भ्रामक न हो। उदाहरणार्थ—यदि आप किसी की अवस्था जानना चाहते हैं तो 'आपकी आयु क्या है?' यह प्रश्न ठीक न होगा, क्योंकि 'आयु' शब्द तो सम्पूर्ण जीवनकाल का द्योतक है। हमें आयु के स्थान पर अवस्था शब्द का प्रयोग करना चाहिए। साथ ही प्रश्न का उत्तर अनिश्चित भी हो सकता है, अतः आपको पूछना चाहिए कि "आपका जन्म किस तिथि-संवत् या तारीख-वर्ष में हुआ?"

इसी तरह यदि आपका प्रश्न है—'आप प्रतिबद्धता से क्या समझते हैं?' तो बहुत स्पष्ट नहीं होगा। आपको पूछना चाहिए—'आप साहित्यकार की प्रतिबद्धता का क्या अर्थ लगाते हैं?'

(2) **प्रश्नावली बहुत लम्बी न हो**—लम्बी प्रश्नावली का उत्तर देने में व्यक्ति अलसा सकता है। यदि देगा भी तो विलम्ब से देगा और संक्षिप्त रूप में देगा।

(3) प्रश्न ऐसा न हो कि जिसका उत्तर एक लघु निबन्ध का ही रूप धारण कर ले। उदाहरणार्थ—यदि आप पूछें कि 'काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में संस्कृत-आचार्यों के मत से आप कहाँ तक सहमत हैं?' या 'क्या रस-सिद्धान्त नयी कविता का मूल्यांकन कर सकता है?' तो इसका उत्तर सचमुच लघु निबन्ध का रूप धारण कर सकता है।

(4) यदि आप विषय के विशेष पक्ष पर प्रश्नकर्ता का मत चाहते हैं तो उस शब्द को रेखांकित कर दीजिये। जैसे—'क्या आप कविता में अलंकार

छन्द की प्रयुक्ति आवश्यक समझते हैं ? यदि समझते हैं तो क्यों ?' उत्तरदाता 'छन्द' की आवश्यकता-अनावश्यकता पर कुछ विस्तार के साथ अपना मत प्रकट करेगा।

(5) आप प्रश्नकर्ता से ऐसे प्रश्न न पूछें जिनका उत्तर ग्रंथों से उपलब्ध हो सकता है। यदि आप उत्तरदाता का मत किसी ऐसे विषय पर जानना चाहते हैं जिसका उत्तर उसने पहले किसी ग्रंथ, पत्र-पत्रिका में प्रकाशित कर दिया है तो फिर उससे उसी विषय पर प्रश्न पूछना अनावश्यक है। यदि आप प्रकाशित मत का स्पष्टीकरण चाहते हों तो डाक द्वारा सम्भवतः आपका अभीष्ट सिद्ध न हो। आपको प्रत्यक्ष भेंट के माध्यम से अपनी शंकाओं का निवारण करना अधिक उचित होगा।

(6) एक ही प्रश्न में कई प्रश्नों को नहीं भर देना चाहिए।

(7) प्रश्न मनोवैज्ञानिक क्रम से हों—सामान्य से विशेष की ओर।

निम्नानुसार प्रश्नों का क्रम ठीक नहीं है—

1. छायावाद के प्रमुख कवि आप किन्हें मानते हैं ?
2. प्रयोगवाद के प्रमुख कवि कौन हैं ? आप छायावाद का क्या अर्थ समझते हैं ? रहस्यवाद और छायावाद में क्या भेद है ?
3. प्रयोगवाद का प्रवर्तक आप किसे मानते हैं ?
4. प्रगतिवाद क्या छायावाद की प्रतिक्रिया है ?

प्रश्नों को निम्नलिखित क्रम से रखा जाना उचित होगा—

1. छायावाद का आप क्या अर्थ समझते हैं ?
2. छायावाद और रहस्यवाद में क्या अन्तर है ?
3. छायावाद के प्रमुख कवि आप किन्हें मानते हैं ?
4. क्या प्रगतिवाद छायावाद की प्रतिक्रिया है ?
5. आप प्रयोगवाद का प्रवर्तक किसे मानते हैं ?
6. आपके मत से प्रयोगवाद के प्रमुख कवि कौन हैं ?

हिन्दी-काव्य की ऐतिहासिक प्रवृत्ति के अनुसार उपर्युक्त प्रश्नावली अधिक वैज्ञानिक है।

प्रश्नावली के प्रकार

पाश्चात्य शोध-शिल्पियों ने प्रश्नावली के प्रकार भी निर्दिष्ट किये हैं। गूडे और हट्ट उसके मुख्यतः दो भेद करते हैं—(1) संरचनात्मक और (2) असंरचनात्मक। संरचनात्मक प्रश्नावली बहुत सोच-समझकर समस्या-सम्बन्धी ठीक उत्तर प्राप्त करने की दृष्टि से रची जाती है; जो असंदिग्ध और निश्चित

शब्दों में व्यक्त होती है। उत्तरदाता से विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए मुख्य प्रश्नों के अतिरिक्त गौण प्रश्न भी जुड़े रहते हैं। उदाहरणार्थ, 'नयी कहानी के तत्त्व (आज की भाषा में तेवर) क्या हैं ?' यह प्रश्न स्पष्ट है, पर प्रश्नकर्ता इस सम्बन्ध में उत्तरदाता से और अधिक जानकारी प्राप्त करने लिए पूछ सकता है—'नयी कहानी' और 'पुरानी कहानी' में आपको क्या भेद दृष्टिगोचर होता है ? क्या कहानी का नया-पुराना भेद उचित है ?

असंचरनात्मक प्रश्नावली में उत्तरदाता मनमाना उत्तर देने में स्वतन्त्र रहता है क्योंकि आपके प्रश्न किसी समस्या या विषय-बिन्दु पर निश्चित रूप से शब्दायित नहीं रहते। इस प्रकार की प्रश्नावली पूर्व-संरचित नहीं होती। प्रश्नकर्ता प्रश्नों के कच्चे नोट लिख लेता है और स्वयं उत्तरदाता के पास पहुँचकर उत्तर प्राप्त करता है। चूँकि प्रश्नावली प्रणाली का साक्षात्कार नहीं होता, अत: असंचरनात्मक प्रणाली का भेद ही व्यर्थ है।

प्रश्नावली बहुत सावधानी से तैयार करने के उपरान्त उसे अपने मित्रों को दिखलाइये, जिससे वे प्रश्नों की अस्पष्टता की ओर आपका ध्यान खींच सकें। विषय का ज्ञान होने से आप प्रश्न के अन्तर्हित भाव को समझे रहते हैं इसलिए प्रश्न आपको अस्पष्ट प्रतीत नहीं होते; पर आपके मित्र सन्दर्भ से अपरिचित रहने के कारण कह सकते हैं कि प्रश्न की भाषा ऐसी है जो प्रश्न के अर्थ को ठीक-ठीक व्यक्त नहीं करती।

बहुधा प्रश्न ऐसे व्यक्तियों के पास भेज दिये जाते है जो विषय के ज्ञाता नहीं होते, साहित्य या अन्य क्षेत्रों में लब्धप्रतिष्ठ मात्र होते हैं। ऐसे व्यक्तियों से यदि उत्तर प्राप्त होता है तो उससे आपको विशेष सहायता नहीं मिल सकती। लुण्डबर्ग ने 'प्रश्नावली' के द्वारा तथ्य एकत्र करने की प्रणाली को साक्षात्कार-पद्धति से अधिक महत्त्व इसलिए दिया है क्योंकि साक्षात्कार में बहुत बार उत्तरदाता कुछ प्रश्नों के उत्तर देने में संकोच करता है पर डाक द्वारा उन्हें लिख भेजने में वह मुक्त रहता है। इसीलिए लुण्डबर्ग इसे प्रेरणाओं का समूह कहता है; उत्तरदाता को अपनी बात कहने की प्रेरणा देता है।

शोधार्थी को प्राप्त उत्तरों का तटस्थ भाव से उपयोग करना चाहिए। यदि उत्तर उसकी विषय-परिकल्पना के विरुद्ध पड़ते हैं तो उसे इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यदि अन्य स्रोतों से भी ऐसे तथ्य प्राप्त होते हैं जो उसकी पूर्व-निर्धारित परिकल्पना का खंडन करते हैं तो उसे नि:संकोच अपनी परिकल्पना, और परिणामत: रूप-रेखा में, यथोचित संशोधन कर लेना चाहिए।

प्रश्नावली के कई उपभेद भी किये गये हैं। यथा—

(1) **सीमित प्रश्नावली**—इसमें प्रश्न के साथ-साथ निर्दिष्ट उत्तर भी

अंकित रहते हैं। उदाहरणार्थ, उत्तरदाता किसी एक पर स्वीकारात्मक चिह्न लगा देता है, दूसरे को काट देता है।

प्रश्न	उत्तर
(1) क्या आप कहानी में कथातत्त्व की आवश्यकता अनुभव करते हैं ?	हाँ, नहीं
(2) क्या साहित्य में जीवन का यथार्थ चित्रण होता है ?	नहीं, हाँ
(3) क्या सभी नाटकों का रंगमंचीय होना आवश्यक है ?	हाँ, नहीं

(2) **अप्रतिबन्धित अथवा असीमित प्रश्नावली**—यह ठीक सीमित प्रश्नावली के विरुद्ध प्रणाली है। इसमें प्रश्न तो रहते हैं, पर उत्तर नहीं सुझाये जाते। उत्तरदाता प्रश्न का विस्तार के साथ भी उत्तर देने में स्वतन्त्र है। वह उपर्युक्त सीमित प्रश्नों के उत्तर देते समय वर्तमान साहित्यिक प्रवृत्तियों का आलोचनात्मक उत्तर भी दे सकता है।

(3) **मिश्रित प्रश्नावली**—इसमें सीमित-असीमित दोनों प्रकार के प्रश्न तैयार किये जाते हैं। सामाजिक सर्वेक्षण में इसी प्रणाली से कार्य किया जाता है।

प्रश्नावली-प्रणाली से लाभ-हानि

प्रश्नावली भेजकर तथ्य प्राप्त करने में सबसे बड़ा लाभ समय और द्रव्य की बचत है और दूसरा लाभ यह है कि उत्तर से प्राप्त मत का दायित्व उत्तर-दाता पर रहता है। जब व्यक्ति अपने विचारों को लिपिबद्ध करता है तब वह अधिक सतर्कता वरता है। इस तरह शोधार्थी तटस्थ भाव से व्यक्ति के विचारों का उपयोग करने में समर्थ होता है।

इस प्रणाली की सीमाएँ भी हैं—प्रश्नावली केवल शिक्षित और अधिकारी व्यक्तियों को ही भेजी जा सकती है जो उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं हैं। यदि देता है तो यह आवश्यक नहीं कि वह खुलकर अपने विचार व्यक्त करे ही। बोलचाल की भाषा में कह सकते हैं—वह अपने हाथ नहीं कटाना चाहेगा। अत: यदि आपको विशिष्ट व्यक्ति के विचार जानना अनिवार्य प्रतीत होता हो तो आपको प्रत्यक्ष साक्षात्कार विधि को अपनाना होगा।

कभी-कभी उत्तरदाता की अवाच्य लिपि भी कठिनाई उपस्थित कर देती है। मैं अपना ही उदाहरण आपको दे रहा हूँ। एक बार हालैण्ड के एक विश्व-विद्यालय के एक शोधार्थी ने मुझसे कुछ प्रश्न पूछे थे। मैंने उनका उत्तर अपने

हस्तलेख द्वारा भेज दिया था। कुछ समय बाद उनका पुन: पत्र आया जिसमें उन्होंने मेरे हस्तलेख की अस्पष्टता के कारण विचारों को जानने में बड़ी कठिनाई अनुभव की।

17

सामग्री-संग्रह का साधन—प्रेक्षण-पद्धति
(Observation Method)

शोध के कुछ विषय ऐसे हैं जिनकी सामग्री प्रत्यक्ष देखने पर अधिक विश्वसनीय समझी जा सकती है। समाजशास्त्र, भूतत्त्वविज्ञान, व्यावहारिक भाषाविज्ञान, लोक-साहित्य आदि से सम्बद्ध विषयों में पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा चाक्षुष ज्ञान की उपयोगिता असंदिग्ध है। प्रेक्षण-पद्धति को हम चाक्षुष पद्धति भी कह सकते हैं क्योंकि इसमें 'चक्षु' का माध्यम प्रमुख है। किसी जाति या सम्प्रदाय के सामाजिक जीवन का अध्ययन प्रश्नावली-पद्धति से सम्यक् रीति से नहीं किया जा सकता। शोधार्थी को समाज के अनुसंधेय अंग के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। यदि हलवा-समाज और उसकी भाषा का अध्ययन हमें अभीष्ट हो तो हमें उससे सम्बन्धित प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रंथों के अध्ययन-मात्र से संतोष नहीं मान लेना चाहिए। हमें हलवा-समाज के बीच रहकर उनके रहन-सहन और भाषा से परिचित होकर अपने अनुभूत निष्कर्ष निकालने चाहिए।

प्रेक्षण दो प्रकार के होते हैं—(1) अनियन्त्रित और (2) नियन्त्रित। अनियन्त्रित प्रेक्षण भी दो प्रकार के होते हैं। एक में तो शोधार्थी समाज के बीच रहकर उसके क्रिया-कलाप का समभोगी बनता है। भारत में अमेरिका के कई समाजशास्त्रीय शोधकर्ता भारतीय परिवारों में महीनों रुककर उनके सामाजिक जीवन के प्रत्येक अंग से परिचित हो जाते हैं और अपने विषय की प्रामाणिक सामग्री एकत्र कर लेते हैं। दूसरे प्रकार में शोधार्थी अध्येय समाज के साथ सम्पर्क तो स्थापित करता है, पर उसके कार्यकलाप में सहभागी नहीं बनता। उसकी 'जलाम्बुज' जैसी स्थिति रहती है। वह समाज के व्यक्तियों के रहन-सहन आदि का तटस्थ भाव से अध्ययन करता है। पर क्या समाज के बीच रहकर भी उससे सर्वथा विलग रहा जा सकता है? कहावत है, "काजर की कोठरी में केतौ हू सयानो जाय, एक लीक काजर की लागि है पै लागि है।"

परिवार के सम्पर्क में आने पर उसके कुछ व्यक्तियों से रागात्मक सम्बन्ध भी स्थापित हो ही जाता है। अतः प्रेक्षण की अनियन्त्रित पद्धति के दो उपभेद अनावश्यक-से प्रतीत होते हैं।

नियन्त्रित प्रेक्षण—योजनाबद्ध होता है। प्रेक्षक सामाजिक घटनाओं में से उन्हीं तक अपने को सीमित रखता है जिनका उसके विषय से सम्बन्ध है। वह अनुसूची तैयार कर उसमें निरीक्षित तथ्य को स्वयं दर्ज करता जाता है। अनुसूची में दर्ज करने के अतिरिक्त डायरी का भी प्रयोग किया जा सकता है। दृष्टश्रुत वस्तु को फोटो, फिल्म, टेप-रिकार्डर आदि के माध्यम से संचित किया जा सकता है और करना भी चाहिए। सामाजिक सर्वे—शोधकार्य में कभी एक ही व्यक्ति और कभी एकाधिक व्यक्ति पृथक्-पृथक् अवलोकन कर अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं। इससे तथ्य अधिक प्रामाणिक बन जाते हैं। एक व्यक्ति का निरीक्षण आत्मपरक (Subjective) हो सकता है। परिणामतः निष्कर्ष में उसका अपना दृष्टिकोण झलक सकता है। सामूहिक निरीक्षण के निष्कर्षों का तुलनात्मक परीक्षण होता है और जो निष्कर्ष बहुमान्य पाया जाता है उसे ही अन्तिम रूप दिया जाता है। यह कार्य केन्द्रीय शोध संस्थान द्वारा सम्पन्न हो सकता है।

जीवित भाषा के अध्ययन में प्रेक्षण-पद्धति का अच्छा उपयोग हो सकता है। ग्रंथों से भाषा का अध्ययन दोषपूर्ण भी हो सकता है। आँखों से वक्ता की भाव-भंगी और कानों से उसकी बोली की ध्वनियाँ ग्रहण होती हैं। भाषा के उच्चारण में ओंठ किस प्रकार विवृत या संवृत होते हैं, यह ज्ञान 'प्रेक्षण' द्वारा सहज ग्राह्य हो जाता है। यों भी छोटे बच्चे सम्पर्क मात्र से ही कोई भी भाषा सीख लेते हैं।

× × ×

प्रेक्षण-प्रणाली में कुछ दोष भी हैं जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रेक्षण नेत्रों द्वारा होता है। हम उन्हीं वस्तुओं और दृश्यों को देखने को उत्सुक रहते हैं जो हमें प्रिय होते हैं। अतः अप्रिय घटनाएँ या दृश्य, जो समाज में विद्यमान रहते हैं, उनकी ओर हमारी आँखें जाकर भी लौट आती हैं। हमारी प्रवृत्ति उनपर उन्हें ठहरने ही नहीं देती। कहने का आशय यह कि प्रेक्षण-पद्धति में आत्मपरकता बाधा बनती है, प्रेक्षक के रूढ़ संस्कार उसके निरीक्षण-परीक्षण को प्रायः वस्तुनिष्ठ नहीं रहने देते, उसमें पक्षपात आ सकता है। आप समाज-विशेष के जीवन का अध्ययन करने जब परिवार के साथ उसी का अंग बनकर रहने लगते हैं तो परिवार के व्यक्ति यह जानकर कि आप उनके रहन-सहन का अध्ययन करने के लिए आये हैं, अपने व्यवहार में स्वाभाविकता नहीं रख पाते, वे आपको रुचने वाले ढंग से व्यवहार करने लगते

हैं। ऐसी स्थिति में आपके अध्ययन का परिणाम वास्तविकतापरक नहीं हो पाता।

18

संचित सामग्री की प्रामाणिकता की परीक्षा

विभिन्न स्रोतों में संचित सामग्री की प्रामाणिकता की परीक्षा आवश्यक है। जिस प्रकार हस्तलिखित ग्रंथों में लेखन-प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं उसी प्रकार मुद्रित ग्रंथों में भी लेखन और मुद्रण-प्रभाव की अवस्थिति पायी जा सकती है। कभी लेखक अपने पूर्ववर्ती लेखक की भूल को दुहराते जाते हैं और कभी अपने व्यक्तिगत विश्वासों के आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। उदाहरणार्थ, एक प्रगतिवादी समीक्षक ने तुलसी की रचनाओं में 'प्रगतिवाद' को आरोपित कर दिया। यह सत्य है कि कवि कालजयी होता है। वह अपने युग तक सीमित न रहकर आने वाले युगों की आकांक्षाओं को भी ध्वनित कर देता है; पर उसे किसी 'वाद' से बाँधने में समीक्षक की दृष्टि 'वाद-ग्रह-गृहीत' होती है। भाषा-विज्ञान, व्याकरण और अन्य शास्त्रीय ग्रंथों का अशुद्ध मुद्रण भी भ्रांतिजनक होता है। एक मात्रा की कमी या वृद्धि से भाषा के रूप की गलत धारणा बन जाती है। उदाहरणार्थ, छत्तीसगढ़ी बोली में मन-प्रत्यय से बहुवचन बनता है। यदि पुस्तक में 'मन' के स्थान पर 'मान' छप जाए तो भाषा की प्रवृत्ति का गलत रूप प्रस्तुत हो जायेगा। शोधार्थी को अन्य स्रोतों से भी शुद्ध रूप को जान लेना चाहिए।

शोधार्थी को किसी विषय पर किसी एक अधिकारी व्यक्ति के मत को श्रद्धाभाव से अन्तिम प्रमाण नहीं मान लेना चाहिए। उस पर अन्य विशेषज्ञों के मतों को भी जानना चाहिए। उदाहरण के लिए हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में यदि उनका यह कथन कि "आदिकाल की, (जिसे उन्होंने 'वीरगाथा-काल' कहना उचित समझा है) जैनधर्मी रचनाएँ साहित्य की कोटि में नहीं आतीं," स्वीकार कर लिया जाता तो जैन मन्दिरों और प्रतिष्ठानों के संचित साहित्य की सम्पदा से हिन्दी-साहित्य वंचित हो जाता। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने शुक्लजी के कथन की स्वबुद्धि से परीक्षा की और कथित जैनधर्मी ग्रंथों में साहित्यिक तत्त्व खोज निकाले और उनका साहित्यिक मूल्यांकन कर उन्हें साहित्य के इतिहास में स्थान दिया। यदि हम

जैनधर्म पर आश्रित साहित्य को साम्प्रदायिक मानेंगे तो हमें भक्तिकालीन तुलसी, सूर, जायसी आदि कवियों के साहित्य को भी साम्प्रदायिक मानकर उसे साहित्य-इतिहास से पृथक् करना होगा। हाँ, जिन कृतियों में केवल धर्म या सम्प्रदाय के सिद्धान्त या आधार-मात्र वर्णित हों वे निश्चय ही साहित्य की कोटि में नहीं आयेंगी; पर जिन कृतियों में मानव जाति के मनोभावों का चित्रण है वे भले ही किसी धर्म की भूमिका को धारण किये हों, साहित्य के अन्तर्गत ही आयेंगी। अनुसंधान की गति वहीं रुक जाती है जहाँ पूर्वनिर्णयों की परीक्षा परवर्ती शोधार्थियों द्वारा नहीं होती।

परीक्षण-विश्लेषण के बिना शोध में वैज्ञानिकता नहीं आ पाती। इसे हमें सदा स्मरण रखना चाहिए।

19

'सामग्री' का वर्गीकरण-विश्लेषण

शोध-सामग्री एकत्र हो जाने पर उसे व्यवस्थित रीति से संयोजित करने की आवश्यकता होती है। तथ्यों को सादृश्य या सम्बन्ध की दृष्टि से वर्गों में छाँटने का कार्य 'वर्गीकरण' कहलाता है।

वर्गीकरण से 'प्रबन्ध' को व्यवस्थित ढंग से लिखने में सहायता मिलती है। समान तथ्यों के आधार पर विश्लेषण तथा निष्कर्ष का कार्य आसान हो जाता है। उदाहरण के लिए हम डॉ० सत्येन्द्र की भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-विषयक काव्य-सम्बन्धी परिकल्पना लेते हैं। उनकी परिकल्पना है: "भारतेन्दु ब्रजभाषा के कवि और संधि-युग के कवि थे।" इस परिकल्पना की परीक्षा के लिए उन्होंने पहले तथ्य-सामग्री एकत्र की, फिर डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार काव्य-सामग्री का निम्नानुसार विभाजन किया—
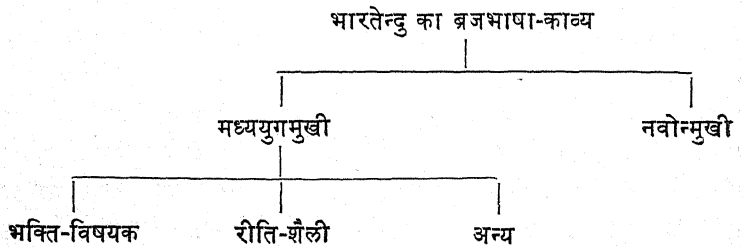
भक्ति-विषयक कविताओं के अध्ययन से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि वे वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। होली, राग-संग्रह, वर्षाविनोद, विनय, प्रेम-पचासा, प्रेममालिका आदि में अनेक ऐसी रचनाएँ मिलती हैं जो उन्हें अनन्य वैष्णव सिद्ध करती हैं। उन्होंने रचनाओं के माध्यम से यह निष्कर्ष निकाला है। रीतिशैली की रचनाओं में उन्होंने प्रेममालिका, प्रेम-फुलवारी, वर्षा-विनोद, मधु-मुकुल, प्रेम-तरंग, प्रेम-प्रलाप और होली रचनाएँ छाँटकर यह निष्कर्ष निकाला कि इनकी रीतिशैली की रचनाएँ देव, घनानन्द, ठाकुर बोधा, हठी पद्‌माकर, आलम आदि की परिपाटी की हैं। इनमें प्रेम की स्वच्छन्दता है, नूतनता और आंतरिक भावनाओं की अभिव्यंजना भी है।

नवोन्मुखी रचनाओं के वर्गीकरण में अंगरेजी राज के सुखसाज-सम्बन्धी गीत, विदेशियों द्वारा धन लूट ले जाने के भाव, भारत की दुर्दशा को व्यक्त करने वाले विचार नवोन्मुखी प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हैं। इन वर्गीकरणों से लेखक ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि भारतेन्दु ने यह सिद्ध किया है कि ब्रजभाषा न केवल मध्ययुगीन-रीतिकालीन भावों की अभिव्यक्ति करने की क्षमता रखती है, प्रत्युत वह आधुनिक भावों की अभिव्यक्ति का भी वाहन बन सकती है।

विषयवार वर्गीकरण से चिन्तन तथा निष्कर्ष में क्रम तथा स्पष्टता आ जाती है। एक **शोध-प्रबन्ध**[1] में यह परिकल्पना की गई कि "दक्षिणापथ (महा-राष्ट्र) में हिन्दी-प्रवेश का इतिहास आर्यों के दक्षिण-सम्पर्क का परिणाम है।" यह स्थापना उस पूर्वस्थापना का खण्डन करती है जिसके द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया था कि मुसलमानों के संचार के कारण दक्षिणापथ में हिन्दी का प्रवेश हुआ। शोधकर्ता ने अपनी परिकल्पना के आधार पर राजनीतिक, धार्मिक सामाजिक तथा आर्थिक आदि स्रोतों से सामग्री का संकलन किया और फिर परिकल्पना के विषय और पक्ष के तथ्यों का निम्नानुसार वर्गीकरण किया—

विपक्षी तथ्य—

(1) अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के पश्चात् तेहरवीं शताब्दी में हिन्दी का संचार हुआ।

(2) मुहम्मद तुगलक ने जब चौदहवीं शताब्दी में अपनी राजधानी दिल्ली से दौलताबाद स्थानान्तरित की, तब समस्त दिल्ली के साथ वहाँ की भाषा भी दक्षिण में पहुँची।

---

1. हिन्दी को मराठी संतों की देन, अध्याय 2।

पक्ष में—

(3) मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व उत्तरभारतीय नाथपंथियों ने महाराष्ट्र की धार्मिक जागृति में योगदान दिया और इस तरह उनके द्वारा वहाँ हिन्दी का प्रवेश हुआ तथा महानुभाव एवं वारकरी पंथ-प्रवर्तकों ने उसका प्रचार किया ।

(4) मुसलमानों के आक्रमण के समय आर्यों ने अपनी सांस्कृतिक एकता स्थिर रखने के लिए मध्य देश की भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया और इस तरह क्रमशः हिन्दी का दक्षिण में स्वतन्त्र प्रवेश हुआ ।

तथ्यों के वर्गीकरण ने परिकल्पना के अनुरूप तथ्यों के विश्लेषण और निष्कर्ष निकालने में सहायता दी । तथ्यों के वर्गीकरण से किस प्रकार विश्लेषण की प्रक्रिया निर्दिष्ट हुई और निष्कर्ष तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त हो सका, इसे हम नीचे दे रहे हैं ।

तथ्यों की परीक्षा

अब हम उपर्युक्त तथ्यों की क्रमशः परीक्षा करेंगे—

तथ्य (1) और (2) के सम्बन्ध में निवेदन है कि मुसलमान शासकों के देवगिरि या सुदूर मदुरा तक पहुँच जाने मात्र से वहाँ उत्तर की भाषा का संचार नहीं हो सकता । किसी भी भाषा को जनता तक पहुँचने के लिए समय अपेक्षित है । यह हो सकता है कि अलाउद्दीन खिलजी और मोहम्मद तुगलक के बार-बार दक्षिण-अभियान और अन्त में वहाँ शासन-व्यवस्था स्थापित करने से जनता हिन्दुई या देहलवी भाषा से थोड़ी-बहुत परिचित हो गई हो; क्योंकि उसे अधिकारियों और फौजियों के सम्पर्क में बार-बार आना पड़ता था । पर दक्षिण में हिन्दी-प्रवेश तुर्क शासकों के पूर्व ही हो चुका था । देवगिरि के यादवों के काल में ही हम महानुभावों और वारकरी संतों को हिन्दी में पदों की रचना करते हुए देखते हैं । वारकरी संत नामदेव का समय, जिनके बहुत अधिक हिन्दी-पद मिलते हैं, सन् 1270 और 1350 के मध्य है और उनके पूर्व महानुभाव-पंथ के संस्थापक चक्रधर स्वामी के मत का प्रचार-काल 1263 और 1271 ई० के मध्य है । चक्रधर की हिन्दी चौपदी मिलती है । अतएव तुर्कों के दक्षिण-विजय के पूर्व दक्षिण में हिन्दी का प्रवेश और प्रचार हो गया था । मुसलमानों के संसर्ग से यह अवश्य हुआ कि प्रचलित हिन्दी में विदेशी फारसी-अरबी शब्द क्रमशः आने लगे । पहले तो मुसलमान कवि ही उनका प्रयोग करते रहे, परन्तु बाद में वे इतने अधिक प्रचलित और टकसाली हो गये कि हिन्दी-संतों की

जबान पर भी चढ़ गये और उनकी 'वाणियों' में उतरने लगे। महाराष्ट्र में वारकरियों से पूर्व महानुभावपंथी संतों की वाणियों में खड़ी बोली के साथ-साथ ब्रज-भाषा और मराठी का पुट मिलता है। अरबी-फारसी शब्दों का प्रवेश उनमें नहीं है।

वारकरी-संत नामदेव ने भी मुसलमानी सम्पर्क के पूर्व हिन्दी में पद-रचना प्रारम्भ कर दी थी। तात्पर्य यह कि तुर्की के महाराष्ट्र में प्रवेश के पूर्व शौरसेनी अपभ्रंश से उत्पन्न हिन्दी के ब्रज और खड़ी बोली के रूप वहाँ विद्यमान थे और मुसलमानों के प्रवेश के पश्चात् उनमें विदेशी शब्दों का आगमन होने लगा।

तथ्य (3) के सम्बन्ध में निवेदन है कि नाथ-पंथ ने वारकरी-सम्प्रदाय के पूर्व ही महाराष्ट्र में धर्म-जागृति का कार्य किया है। नाथों के प्रसिद्ध गुरु गोरखनाथ, जो ज्ञानेश्वर की गुरु-परम्परा में आते हैं, कब पैदा हुए और कब दक्षिणापथ में आये, ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, पर ईसा की बारहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में इस पंथ का खूब प्रचार था। मुसलमानों के दक्षिण-प्रवेश के पूर्व उनका वहाँ पहुँचना असन्दिग्ध है। नाथों के मत-प्रतिपाद्य ग्रंथ मराठी के अतिरिक्त हिन्दी में भी हैं। जादू-टोने के मन्त्र भी, जो महाराष्ट्र में नाथों द्वारा प्रचलित हुए थे, हिन्दी में हैं और जनता उनका उच्चारण करती रही है। वारकरी संतों में गुरु गोरखनाथ के हिन्दी-उपदेशों को जानने की स्वाभाविक इच्छा रही होगी। उनके द्वारा उनका मनन-चिन्तन और उपदेश भी होता होगा। हिन्दी और मराठी भाषाओं में लिपि और प्रवृत्तियों की दृष्टि से निकटता है। अतएव हिन्दी पढ़ने और सीखने में मराठी-भाषियों को विशेष कठिनता का अनुभव नहीं हुआ। 'नाथों' के महाराष्ट्र-प्रवेश के पूर्व भी महाराष्ट्र के मालखेट में दसवीं शताब्दी में रचित अपभ्रंश-कृतियों में हिन्दी-विकास के चिह्न दिखलायी देते हैं। अतएव नाथों को भी दक्षिण में सबसे प्रथम हिन्दी ले जाने का एकान्त श्रेय नहीं दिया जा सकता। वे प्रचारक ही कहे जा सकते हैं।

चौथे और अन्तिम तथ्य के सम्बन्ध में निवेदन है कि आर्यों की सांस्कृतिक भाषा संस्कृत का सुदूर दक्षिण में तुर्कों और नाथों के आगमन के पूर्व ही प्रचार रहा है। धर्म, दर्शन, काव्य आदि ग्रंथों का प्रणयन अनेक दाक्षिणात्यों द्वारा हुआ है। मध्यप्रदेश में संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत भाषाओं का जब महत्त्व बढ़ा, तब वे भी दक्षिण में पहुँचीं। सन् 1129 ई० में चालुक्यवंशीय राजा सोमेश्वर तृतीय-रचित 'अभिलषितार्थचिन्तामणि' में जहाँ संस्कृत के अतिरिक्त कन्नड़, तेलुगु और मराठी भाषा के उदाहरण मिलते हैं, वहाँ हिन्दी के भी उदाहरण विद्यमान हैं। और यदि पुष्पदत्त की प्राकृताभास भाषा के हिन्दी-रूप

पर विचार करें, तो दक्षिण में हिन्दी के चिह्न ईसा की दसवीं शताब्दी तक देखे जा सकते हैं।

"प्राचीन लेखों तथा ग्रंथों से यही ज्ञात होता है कि शौरसेनी अपभ्रंश, जो नागर अपभ्रंश भी कहलाती थी, लगभग 800 ई० से शुरू होकर लगभग 1200-1300 ई० तक उत्तर भारत में विराट् साहित्य-भाषा के रूप में विराजती रही। संस्कृत के बाद इस शौरसेनी अपभ्रंश का स्थान था। चार-छह सौ वर्षों तक सिन्धु-प्रदेश से पूर्वी बंगाल तक और काश्मीर, नेपाल, मिथिला से लेकर महाराष्ट्र और उड़ीसा तक तमाम आर्यावर्ती देश इस शौरसेनी या नागर अपभ्रंश नामक साहित्यिक भाषा का क्षेत्र बन गया था।" तभी दिल्ली में पैदा होने वाला पुष्पदत्त महाराष्ट्र के मालखेट में जाकर शौरसेनी अपभ्रंश में सहज ही ग्रंथ-रचना करने में समर्थ हो सका।[1]

सन् 800 और 1000 ई० काल तक स्थिति यह थी कि "किसी उत्तर-भारतीय आर्यभाषी को यदि देशाटन करना होता और साथ-साथ साधारण जनों तथा शिष्टजनों से मिलना होता था, तो संस्कृत के अतिरिक्त शौरसेनी अपभ्रंश के सिवा उसका कार्य ही नहीं चलता था। शौरसेनी अपभ्रंश उन दिनों अन्तःप्रादेशिक भाषा थी। आजकल की ब्रज, खड़ी बोली और विभिन्न प्रकार की हिन्दी का उद्गम इस शौरसेनी अपभ्रंश से ही हुआ है। आज की तरह एक हजार वर्ष पहले हिन्दी ही अपने पूर्व रूप में अन्तःप्रादेशिक भाषा के रूप में अखिल उत्तर भारत में व्याप्त थी और तमाम आर्यभाषी लोगों में पढ़ी-पढ़ायी और लिखी जाती रही है।"[2]

निष्कर्ष यह कि दक्षिण में हिन्दी का संचार आर्यों के दक्षिण-प्रवेश का स्वभाविक परिणाम है। दक्षिण के आर्यों ने अपने मूल स्थान मध्य देश से सम्पर्क बनाये रखने के लिए वहीं की भाषा को अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा स्वीकार किया। राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि कारणों से दक्षिण और उत्तर भारत के आर्यों का किस प्रकार परस्पर सम्पर्क होता रहता था, यह हम देख ही चुके हैं।

दक्षिणापथ अर्थात् महाराष्ट्र में मुसलमानों के आगमन के पूर्व हिन्दी प्रचलित थी, यह महानुभावों और अन्य संतों की वाणी से सिद्ध हो जाता है। मुसलमानों के राज्य स्थापित होने का यह परिणाम अवश्य हुआ कि ब्रज और खड़ीबोली-मिश्रित हिन्दी में अरबी-फारसी के शब्दों का विशेष समावेश होने

---

1. विनयमोहन शर्मा—हिन्दी को मराठी संतों की देन, अ० 2।
2. डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी—पोद्दार-अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० 79।

लगा और हिन्दी की नवीन शैली का जन्म हुआ, जिसे बाद में हिन्दी, दक्खिणी हिन्दी, रेखता आदि नामों से अभिहित किया गया।

20
प्रबन्ध-लेखन

शोध-विद्यार्थी प्राय: पूछा करते हैं कि प्रबन्ध-लेखन की भी कोई वैज्ञानिक विधि है ? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि शोध का प्रत्येक भाग वैज्ञानिक प्रविधि से ही लिखा जाता है। प्रबन्ध मुख्यत: तीन भागों में विभाजित होता है। पहला भाग भूमिका से सम्बन्ध रखता है, दूसरा विषय-प्रतिपादन से और तीसरे में विषय का उपसंहार होता है।

भूमिका-भाग को विषय से सम्बन्धित ही होना चाहिए, अविच्छिन्न नहीं। बहुधा यह देखा गया है कि भूमिका अथवा प्रस्तावना अथवा पृष्ठभूमि इतने अधिक पृष्ठ घेर लेती और असम्बद्ध होती है कि विषय-प्रतिपादन का भाग क्षीण हो जाता है। भूमिका-भाग का अनावश्यक विस्तार शोध-प्रबन्ध से वितृष्णा पैदा कर देता है। बहुत से प्रबन्धों में लगभग प्रत्येक मानविकी-विषय के स्रोत ऋग्वेद में खोजे जाते हैं। उसकी ऋचाओं के उद्धरणों से परिकल्पना के पक्ष और विपक्ष में भी सामग्री खोजी जा सकती है। यदि प्रबन्ध का विषय वैदिक वाङ्मय से सम्बद्ध न हो तो शोधार्थी को बहुत दूर की कौड़ी लाने की आवश्यकता नहीं है। यह भी देखा गया है कि विषय का प्रारम्भ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों से होता है। यदि वर्ण्य-विषय के प्रतिपादन में उक्त परिस्थितियों का वर्णन आवश्यक हो तो उनका देना भी आवश्यक हो जाता है; परन्तु यदि विषय तो साहित्यशास्त्र से सम्बद्ध है और उसकी भूमिका उक्त परिस्थितियों से प्रारम्भ हो, तो उसे हम अप्रस्तुत और अनावश्यक समझेंगे।

भूमिका में शोधार्थी को सर्वप्रथम अपने विषय पर किये गये पूर्ववर्ती कार्यों का आलोचनात्मक सिंहावलोकन करना चाहिए और फिर अपने कार्य की उस दिशा का उल्लेख करना चाहिए जो अशोधित रह गई हो। पाठक को भूमिका से यह अवगत हो जाना चाहिए कि शोधार्थी अपने शोध से, विषय के क्षेत्र में, ज्ञान की किस रूप में वृद्धि कर रहा है। दूसरे शब्दों में, उसे अपने शोधकार्य के उद्देश्य को स्पष्ट शब्दों में निर्दिष्ट करना चाहिए। साथ ही सामग्री के संचयन

में उसे जो कठिनाइयाँ अनुभव हुई हों और उनके कारण प्रबन्ध में जो कमियाँ रह गई हों उन्हें भी अंकित कर लेना चाहिए। प्रबन्ध जिस प्रविधि से प्रस्तुत किया जा रहा है उसका संकेत भी इसी भाग में आवश्यक है।

रूपरेखा तैयार करते समय प्रबन्ध विषयवार अध्यायों में पहले ही विभक्त किया जा चुका है, अतः भूमिका-भाग के अनन्तर प्रत्येक अध्याय को विषयक्रम से लिया जाना चाहिए। यदि आवश्यक समझा जाए तो रूपरेखा के अध्याय-क्रम को परिवर्तित भी किया जा सकता है। अध्याय से सम्बद्ध सामग्री की काटछाँट भी की जा सकती है। कई बार एकत्रित की गई सम्पूर्ण सामग्री की विषय-प्रतिपादन में आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। ऐसी स्थिति में कलेवर बढ़ाने वाली अनावश्यक सामग्री को पृथक् किया जा सकता है।

सामग्री एकत्र करते समय यदि प्रत्येक विषय (टॉपिक) कार्ड पर टीपे गये हैं तो उन्हें क्रमवार एकत्र कर लेने से लेखन में सहायता मिल जाती है। यदि कार्ड के स्थान पर कॉपियों का प्रयोग किया गया हो तब भी उन्हें विषय-क्रम से जमाकर लेखन-कार्य किया जा सकता है। प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय, उपसंहार, में एक प्रकार से प्रबन्ध का सार-भाग ही समाविष्ट हो जाता है। उसमें शोध-समस्या का पुनः उल्लेख किया जा सकता है और उसको किस तरह प्रतिपादित किया गया है इसका संक्षिप्त विवरण भी दिया जाना चाहिए। अन्त में शोध के निष्कर्षों को प्रस्तुत कर दिया जाय। अपनी विषय-सीमा के भीतर उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही निष्कर्ष निकाले जाते हैं और अनुपलब्ध सामग्री के उपलब्ध हो जाने पर निष्कर्षों में संशोधन या परिवर्तन सम्भव है, इसका भी संकेत दे देने से उसी विषय या उससे सम्बन्धित विषय पर कार्य करने के इच्छुक भावी शोधार्थी का मार्ग सरल हो जाता है। प्रबन्ध के सभी अध्याय लिखे जाने के बाद उसमें परिशिष्ट जोड़ा जाता है जिसके उपभाग भी होते हैं जिन्हें अ, ब, स आदि से नामांकित किया जाता है। परिशिष्ट में निम्न बातें सम्मिलित की जानी चाहिएँ—परिशिष्ट (अ) में प्रबन्ध में प्रयुक्त शास्त्रीय या तान्त्रिक शब्दावली का स्पष्टीकरण। उदाहरणार्थ, अनहद, कुण्डलिनी, प्रतिबद्धता आदि का स्पष्टीकरण हो। 'अनहद' शब्द को ही लें तो इसके स्पष्टीकरण में लिखा जा सकता है कि अनहद—अनाहत—अर्थात् बिना किसी चोट के बजने वाला नाद। यह योग की विशिष्ट क्रिया से साधक को सुनायी देने वाला नाद है। जब साधक अपने प्राणों को सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र की ओर, जिसे सहस्रार कहते हैं, संचरित करता है तब यह नाद सुनायी देता है। संत-वाणियों में अनाहत नाद का बार-बार उल्लेख हुआ है। विशेषकर कबीर और उनके मार्ग पर चलने वाले संतों ने इस नाद की अपनी साधनामूलक वाणी में चर्चा की है। परिशिष्ट (ब) में अकारादि

क्रम से संदर्भग्रन्थ-सूची भी दी जानी चाहिए। इस सूची में ग्रन्थों और पत्र-पत्रिकाओं का भाषावार वर्गीकरण किया जाए। उदाहरणार्थ, ग्रन्थों का उल्लेख निम्नानुसार हो—

1. **कबीर-ग्रन्थावली**—(सम्पादक : श्यामसुन्दर दास) ना० प्र० स०, काशी (प्रथम संस्करण)।

2. पत्रिका-सूची में हो—पहले पत्रिका का नाम, प्रकाशन-स्थान, वर्ष, अंक/संख्या।

3. प्रबन्ध में प्रयुक्त शब्दों की संकेत-चिह्न-सूची (एब्रीविएशन लिस्ट) एक पृष्ठ में दी जाए। जैसे ना० प्र० स०=नागरी-प्रचारिणी सभा; नाम०= नामदेव आदि।

4. सामग्री एकत्र करते समय यदि विशेषज्ञों से आवश्यक पत्र-व्यवहार हुआ हो तो उसे भी एक परिशिष्ट में जोड़ देना चाहिए। कभी-कभी शिलालेखों से भी सामग्री ली जाती है। ऐसी दशा में उसकी 'फोटो स्टेट' कॉपी भी संलग्न कर देनी चाहिए।

प्रबन्ध के अध्यायों तथा परिशिष्टों का लेखन-कार्य समाप्त हो जाने पर उसकी प्रारम्भिका की सज्जा होनी चाहिए। प्रबन्ध का शीर्षक-पृष्ठ तैयार किया जाए जो नीचे लिखे अनुसार हो सकता है—

(अ) शीर्षक में विषय का नाम दिया जाये।

(ब) विश्वविद्यालय का नाम—जिस उपाधि के लिए प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया हो, उसका नाम।

(स) शोधकर्ता का नाम।

(द) प्रस्तुत करने की तारीख।

शीर्षक-पृष्ठ के बाद के पृष्ठों में पृष्ठ-संख्या सहित विषय-सूची अध्यायक्रम से दी जाए। प्रत्येक अध्याय में क्या विवेचित किया गया है, इसको संक्षेप में इंगित कर दिया जाए। इससे शोध की रूपरेखा का ज्ञान हो जाता है। स्पष्टीकरण के लिए एक प्रबन्ध की विषय-सूची के एक अध्याय का विवरण नीचे दिया जाता है—

प्रथम अध्याय—प्रबन्ध का उद्देश्य, मनोविज्ञान और उपन्यास की परिभाषा (पाश्चात्त्य आलोचकों की दृष्टि से और भारतीय आलोचकों की दृष्टि से भी) मनोवैज्ञानिक अध्ययन के रूप, मनोवैज्ञानिक उपन्यास का तंत्र, निष्कर्ष।

इस एक अध्याय के विवरण से, जो नमूने के रूप में प्रस्तुत किया गया है, उसमें वर्णित विषय का संकेत मिल जाता है।

विषय-सूची के बाद शोधकर्ता एक पृष्ठ और जोड़ देता है जिसमें वह आत्मकथन के रूप में विषय के चुनाव आदि के बारे में चर्चा करता है और

जिन व्यक्तियों ने उसे उसके कार्य में सहायता पहुँचायी है उनके प्रति आभार व्यक्त करता है।

यदि तालिकाओं, पाण्डुलिपियों, व्यक्तियों आदि के चित्र प्रबन्ध में दिये गये हों तो उन्हें भी विषय-सूची के अन्त में निबद्ध कर देना चाहिए।

प्रारंभिक पृष्ठों को रोमन अंकों में टंकित किया जा सकता है।

लेखन-शैली

लेखन प्रौढ़ और साहित्यिक भाषा-शैली में लिखा जाए—अनावश्यक चलतू शब्दों का प्रयोग न किया जाए। भाषा विषय की गरिमा के अनुरूप हो। शोध-प्रबन्ध की भाषा समाचारपत्र, कथा-नाटक आदि ललित साहित्य की भाषा से भिन्न होती है, पर साथ ही वह इतनी अधिक पांडित्य-प्रदर्शक भी न हो कि जिसका भाव ग्रहण करने में पाठक को अत्यधिक श्रम उठाना पड़े। क्योंकि शोध-प्रबन्ध में तटस्थता बरती जाती है, उससे वस्तुनिष्ठा की अपेक्षा की जाती है इसलिए लेखक को 'मैं', 'मेरा' के स्थान पर शोधार्थी या प्रबन्ध-लेखक शब्द का प्रयोग करना चाहिए। यथा 'मेरा मत है' के स्थान पर 'शोधकर्ता या लेखक का मत है' लिखना अधिक तटस्थता का द्योतक है।

संकेत-चिह्नों (Abbreviations) का प्रयोग पाद-टिप्पणियों में करना चाहिए, विषय-प्रतिपादन के साथ नहीं।

हिन्दी में कई शब्दों की एकाधिक वर्तनी प्रचलित हैं। जैसे, राजनीतिक-राजनैतिक, जाएगा-जायेगा-जावेगा। ऐसी दशा में शोधकर्ता को किसी एक वर्तनी को स्थायी रूप से स्वीकार कर लेना चाहिए। 'प्रबन्ध' में आदि से अन्त तक एक ही वर्तनी प्रयुक्त होनी चाहिए। प्रभावोत्पादक प्रबन्ध-लेखन आसान काम नहीं है, वह परिश्रम-साध्य है। अच्छे शोधार्थी को भी अपने अध्यायों को बार-बार लिखने की आवश्यकता पड़ सकती है। क्योंकि शोध के प्रत्येक शब्द का महत्त्व होता है, इसलिए उसे शब्दों का सोच-विचार कर प्रयोग करना चाहिए। कभी-कभी शोधकर्ता जब अपनी मातृ या शिक्षा-भाषा से भिन्न भाषा में प्रबन्ध लिखता है तब हास्यास्पद शब्दों या मुहावरों का प्रयोग कर जाता है। एक प्रबन्ध में शोधकर्ता ने निर्देशक को धन्यवाद देते हुए लिखा, "गुरुजी ने 'रुग्ण-सेज' पर लेटे-लेटे मेरे प्रबन्ध को सुना।" इस वाक्य में 'सेज' शब्द का प्रयोग कितना भदेस है। 'सेज' के स्थान पर 'शय्या' शब्द उपयुक्त होता। इसी प्रकार एक शोध-प्रबन्ध में लिखा गया, "इस विषय पर संशोधन मैं पहली बार सादर कर रहा हूँ।" शोधकर्ता मराठी-भाषी था। वह कहना चाहता था कि "मैं इस विषय पर पहली बार शोध प्रस्तुत कर रहा हूँ।" मराठी में शोध के लिए संशोधन और प्रस्तुत करने के लिए 'सादर करना' शब्द प्रचलित हैं। और

दोनों शब्द संस्कृत के हैं। अतः शोधार्थी ने यह नहीं सोचा कि हिन्दी में इन दोनों शब्दों का अर्थ भिन्न है। 'संशोधन' सुधार का और 'सादर' आदर-सहित का अर्थ देता है। शोधार्थी को तनिक भी सन्देह होने पर किसी प्रामाणिक कोश को तुरन्त देख लेना चाहिए। कोश में प्रायः एक शब्द के एक से अधिक अर्थ दिये रहते हैं। अतः प्रसंग के अनुसार अभीष्ट अर्थ वाले शब्द को चुनने की सतर्कता बरतनी चाहिए। कोशों में शब्दों की दी गई वर्तनी पर भी ध्यान रखें। शब्दों के लिंग प्रान्त-भेद से भिन्न भी प्रयुक्त होने लगे हैं। ऐसी दशा में आदर्श कोश की सहायता लेनी चाहिए।

अंत में एक परामर्श और देना है। वह यह है कि 'प्रबन्ध' को भारी-भरकम, हजार-डेढ़-हजार पृष्ठों का, बनाने का मोह त्याग देना चाहिए। गहन-से-गहन विषय को सूक्ष्म अध्ययन द्वारा कम पृष्ठों में ही लिपिबद्ध किया जा सकता है।

डॉ० रा० क्र० हर्षे ने कुछ विदेशी विद्वानों के इस प्रकार के संक्षिप्त और ठोस प्रबन्धों की चर्चा की है। वे हैं (1) प्रो० जूल ब्लॉक का शोध-प्रबन्ध 'लेंडो आर्यां' है। इसमें 335 पृष्ठों में लगभग 2500 वर्ष के आर्य-भारतीय भाषाओं के इतिहास और विकास का निरूपण है। इसका प्रत्येक पृष्ठ पूर्णरूप से विवेचित दृष्टान्तों से गुँथा हुआ है जो लेखक के असीम कष्ट और सहिष्णुता का परिचय देता है। काल-खण्ड के लम्बे होने पर भी उन्होंने अपने विषय के यथार्थ स्वरूप को बहुत ही सफलता के साथ थोड़े में प्रस्तुत किया है।

(2) डॉ० जाँ फिल्योज़ा ने 'रावण का कुमारतन्त्र' नामक 12 पद्यों के निबंध पर कार्य करते समय पूरे एशिया महाद्वीप से प्राप्त उसके तुलनात्मक पाठों का अध्ययन किया और क्राउन साइज के 192 पृष्ठों में अपना शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर दिया। उन्होंने दूसरे शोध-ग्रंथ में इस बात का भी विवेचन किया है कि परम्परागत हिन्दू-धारणाओं के अनुसार आयुर्वेद को किस प्रकार वेदों का उपवेद कहा जा सकता है। उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में वैदिक और वैदिकोत्तर पाठों का तुलनात्मक अध्ययन कर अपनी स्थापनाओं को रॉयल आक्टेवो आकार के 227 पृष्ठों में पूर्ण विवेचन के साथ प्रस्तुत किया है, जिसका शीर्षक 'लॉ दॉक्यी क्लास्सीक द ला मेद्सीन अँदीयन्न' है। हिन्दी-शोधार्थियों की यह गलत धारणा बन गयी है कि प्रबन्ध जितना ही बहुपृष्ठीय होगा उतना ही वह उपाधि-प्राप्ति के योग्य समझा जायेगा। परीक्षक को भारी पोथे को पढ़ने का एक तो अवकाश ही नहीं रहता, और यदि पढ़ेगा भी तो दयावश 'पास' कर ही देगा। उसकी यह धारणा कुछ हद तक ठीक भी हो सकती है, पर वह क्यों इतना गर्दभ-परिश्रम पृष्ठसंख्या-वृद्धि में करे? उसे परिश्रम विषय के अध्ययन में करना चाहिए, अर्थात् सामग्री को संयत भाषा-शैली में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करना चाहिए।

× × ×

प्रबन्ध प्राय: टंकित होते हैं। उनमें अशुद्धियों की भरमार भी होती है। शोधकर्ता को टंकण-दोषों को सावधानी से दुरुस्त करके ही प्रबन्ध को विश्व-विद्यालय में प्रस्तुत करना चाहिए। यदि किसी पृष्ठ पर अधिक अशुद्धियाँ हों तो उसे पुन: टंकित करा लेना चाहिए।

'प्रबन्ध' की बाह्य साज-सज्जा—जिल्द और आवरण (कवर)—आकर्षक होने से पाठक उसे शीघ्र पढ़ने को उत्सुक हो उठता है। यथास्थान नक्शे, डायग्राम आदि भी देने चाहिए।

पाद-टिप्पणियाँ

शोध-प्रबन्ध में पाद-टिप्पणियाँ शोधकर्ता अपने मत के समर्थन या दूसरे मत के विरोध के प्रसंग में देता है। ये टिप्पणियाँ या तो पृष्ठ के नीचे या अध्याय के अन्त में दी जाती हैं। पृष्ठ के नीचे देना अधिक सुविधाजनक होता है। इससे पाठक को 'उद्धरण' के स्रोत को जानने के लिए सम्पूर्ण अध्याय के पृष्ठों को उलटने का श्रम नहीं उठाना पड़ता। उद्धरण देते समय उद्धरण-चिह्न (' ') अवश्य देने चाहिए और उसकी समाप्ति पर पाद-टिप्पणी को इंगित करने के लिए ऊपर अंक दे देना चाहिए। उद्धरण विषय-विशेषज्ञों की कृतियों से लिये जाते हैं क्योंकि विशेषज्ञ के समर्थन से ही लेखक के मत को बल मिलता है। सामान्य लेखक के मत का समर्थन अधिक विश्वसनीय नहीं माना जाता। उद्धरण प्रकाशित और अप्रकाशित (हस्तलिखित) ग्रन्थ, शोधपत्र-पत्रिका, शिला-लेख, दानपत्र आदि स्रोतों से लिये जाते हैं।

अन्य भाषा का उद्धरण प्रबन्ध की भाषा में लिखा जाय और पृष्ठ के मुख्य भाग में दिया जाय। पाद-टिप्पणी में उद्धरण की भाषा को यथावत् दिया जाय। प्रबन्ध के पृष्ठ में बीच-बीच में दूसरी भाषा के उद्धरणों को देने से उसके साथ ही कोष्ठक में उसका प्रबन्ध की भाषा में अनुवाद देना पड़ता है। अत: मूल उद्धरण को पाद-टिप्पणियों में देना अधिक उचित है। यही क्रम मनोविज्ञान तथा शोधप्रबन्ध के लेखन-तंत्र के अनुरूप है।

अध्याय का प्रारम्भ, जहाँ तक सम्भव हो, किसी उद्धरण से न हो। कई शोधार्थी प्रबन्ध को उद्धरणों से भर देते हैं। यह उनके विचारों के दीवालियेपन को प्रकट करता है और उनकी विषय के अध्ययन की कमी को भी।

एक ही पृष्ठ पर जब एक ही लेखक के एक से अधिक विचार उद्धृत किए जायँ तो प्रथम बार तो पृष्ठ में चिह्नित अंक देकर लेखक का नाम, ग्रन्थ का नाम, संस्करण और पृष्ठ-संख्या दे दी जाय और दूसरी बार केवल 'वही' लिख-कर पृष्ठ-संख्या दे देनी चाहिए।

मान लीजिए, यदि पृष्ठ के मूलभाग में लिखा गया है : 'तुलसी ने काव्य के लिए कवित्त और भणिति का प्रयोग एक ही पृष्ठ में किया है', तो कविता और भणिति के ऊपर 1 और 2 अंक देकर पाद-टिप्पणियों में दीजिए—

1. 'निज कवित्त केहि लाग न नीका'

—रामचरितमानस (गीता-प्रेस, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 766)

2. 'जे पर भणिति सुनत हरषाहीं' वही

(यहाँ ग्रन्थ और पृष्ठ पूर्व टिप्पणीवत् हैं) । यदि लेखक के नाम को देकर उद्धरण दिया गया है तो पाद-टिप्पणी में अंकित चिह्न के साथ ग्रन्थ और पृष्ठ-संख्या मात्र दी जानी चाहिए । जैसे, यदि पृष्ठ के मुख्य भाग में लिखा गया हो—'भरत के पश्चात् भामह प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने काव्य की व्याख्या करते हुए लिखा है—शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्द्विधा ?' तो नीचे पाद-टिप्पणी में लिखिए—1. काव्यालंकार, प्रथम परिच्छेद, सूत्र 1,6 ।

(यहाँ संस्करण, पृष्ठ आदि लिखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि किसी भी संस्करण में ग्रंथ के परिच्छेद और सूत्र-संख्या में अन्तर नहीं आयेगा ।)

यदि पृष्ठ के मुख्य भाग में लेखक तथा ग्रन्थ का नाम भी उद्धरण के पूर्व दिया गया हो तो पाद-टिप्पणी में ग्रन्थ की पृष्ठ-संख्या देना ही पर्याप्त होगा । जैसे—कविता के लिए कवित्त शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'बिहारी-सतसई' (पुस्तक भण्डार-संस्करण) के दोहों में यह प्रयुक्त है—

"तंत्रीनाद कवित्त रस सरस राग रति रंग ।
अनबूड़े बूड़े तरे जो बूड़े सब अंग ।।"

क्योंकि पृष्ठ में लेखक और पुस्तक का नाम देकर उद्धरण दिया गया है इसलिए नीचे पाद-टिप्पणी में केवल 'पृष्ठ 142' देना पर्याप्त होगा ।

जहाँ अंग्रेजी भाषा से मत उद्धृत करना होता है वहाँ पृष्ठ के मुख्य भाग में प्रबन्ध की भाषा और नीचे पाद-टिप्पणी में मूल अंश देना चाहिए । यदि पृष्ठ के मुख्य भाग में लिखा गया हो—मलयालम में कवियों की रुझान प्रबन्ध काव्य-लेखन की ओर अधिक रही है । उन्होंने महाभारत और श्रीमद्भागवत के आधार पर उनकी रचना की है। 'मलयाली विष्णु, शिव, भागवत या राम के अनुयायियों में कोई भेद नहीं करते । वे नाम के अतिरिक्त एक-दूसरे में भेद नहीं मानते ।'

(ऊपर का उद्धरण अँग्रेजी में लिखे एक विद्वान् के मत का अनुवाद है ।) अतः उसे अंक देकर नीचे पाद-टिप्पणी में इस प्रकार दिया जाना चाहिए—

1. The Malyalis make no difference among the followers of Vishnu, Siva Bhagwath or Rama. They do not know one from the other except in name.

—Padmanathan Manon, History of India, Vol. IV (First Edition); Page 4.

यदि पृष्ठ के मुख्य भाग में मूल भाषा का उद्धरण दिया जाय तो उसके साथ ही कोष्ठक में प्रबन्ध की भाषा का अनुवाद भी दिया जाना चाहिए। अनुवाद पाद-टिप्पणी में नहीं दिया जाना चाहिए। यदि पृष्ठ भाग में लिखा गया —वाल्मीकि मुनि का स्थान अयोध्या से 'गंगायास्तु परेपारे' ! (गंगा के उस पार था)[1]—तो नीचे पाद-टिप्पणी में उद्धृत अंश का स्रोत देना होगा—

1. वाल्मीकिरामायण, उत्तरकाण्ड 45/16।

शोधार्थी प्रायः पाद-टिप्पणियों में एकरूपता नहीं बरत पाते। वैज्ञानिक प्रविधि क्रम और व्यवस्था चाहती है। अतः पाद-टिप्पणियाँ भी किसी एक क्रम के अनुरूप पूरे प्रबन्ध में दी जानी चाहिए।

सामाजिक शोध-प्रतिवेदन

सामाजिक शोध के प्रतिवेदन (रिपोर्ट) में निम्न बातों का होना आवश्यक है—

1. शोधकर्ता ने, किसके लिए और किसकी अर्थसम्बन्धी सुविधा से शोध-कार्य प्रारम्भ किया, इसकी जानकारी।
2. शोध का उद्देश्य।
3. क्षेत्रीय कार्य कब से प्रारम्भ किया गया और कब समाप्त हुआ।
4. जो नमूने लिये गए उनका विस्तृत वर्णन। नमूने किस प्रणाली से एकत्र किए गए, साक्षात्कार की विस्तृत जानकारी—उनकी संख्या आदि।
5. तथ्य-संकलन के स्रोतों, प्रपत्र, अभिलेख-पत्र, निरीक्षण-साक्षात्कार आदि का विस्तृत वर्णन; जिस प्रविधि से वे संचित किए गए, उनका उल्लेख।
6. शोधकार्य-सहायकों तथा उनके निरीक्षकों के सम्बन्ध में जानकारी।
7. प्रश्नावली, शेड्यूल या साक्षात्कार-निदेशिका, जिसका भी प्रयोग किया गया हो, उन सबकी नकल।
8. तथ्य जो ज्ञात हुए उनका उल्लेख। इनमें वे तथ्य भी सम्मिलित किये जायँ जो शोध की परिकल्पना के विरुद्ध पाए गए।
9. जहाँ तथ्य प्रतिशतों या अन्य रूपों में प्रस्तुत किए गए हों, वहाँ उन तालिकाओं की संख्या भी दी जाय जिन पर वे आधारित हों।
10. एकत्रित साक्ष्य का अन्य शोधकार्यों से प्राप्त जानकारी का तुलनात्मक सम्बन्ध बतलाया जाय।
11. निष्कर्ष।

द्वितीय भाग

है—उसकी नकल प्रति और प्रतिलिपियाँ कहलाती हैं। पाठालोचन का कार्य वहीं प्रारम्भ होता है जहाँ हमें कवि की मूलकृति उपलब्ध नहीं होती और उसकी प्रतिलिपियाँ ही उपलब्ध होती हैं। प्रतिलिपियों की ही दो श्रेणियाँ होती हैं : एक को प्रति और दूसरी को प्रतिलिपि कहना अधिक सुविधाजनक होगा। प्रति मूल ग्रंथ की मूल नकल होती है और प्रतिलिपि प्रथम प्रति की नकल। 'नकलबाजी' का यह क्रम काल-कालान्तर तक चलता जाता है। मुद्रण-कला के पूर्व तक प्राचीन लोकप्रिय ग्रन्थ इसी प्रकार प्रचारित किए जाते रहे हैं। प्रतिकार (लिपिक) प्रत्येक बार अपनी 'आदर्श प्रति' की हुवहू नकल नहीं कर पाता। कहीं-न-कहीं च्युतिसंस्कृति अथवा प्रसंग-छूट के प्रमाद जाने-अनजाने हो ही जाते हैं। 'मत्स्यपुराण', 'काव्यमीमांसा' आदि ग्रन्थों में आदर्श लिपिकार के लक्षण बताते हुए कहा गया है कि आदर्श लिपिकार वह है जो सर्वभाषा-कुशल है, नानालिपिज्ञ है, सर्वशास्त्र-विशारद है और अपनी आदर्श प्रति पर अन्ध-विश्वास रखता है और 'मक्षिकास्थाने भक्षिका' रखने का धैर्य रख सकता है।

कभी-कभी लेखक स्वयं भी अपनी कृति का संशोधन कर मूल प्रति तैयार कर लेता है। ऐसी स्थिति में प्रतिलिपियों में पाठ-भेद बहुत मिलता है। क्योंकि जब दो मूल ग्रन्थ विद्यमान रहते हैं तब दोनों से पहली और बाद की प्रतियाँ होने लगती हैं और उनमें मूल संशोधित ग्रन्थ का ठीक-ठीक पाठ-निर्धारण करना कठिन हो जाता है। प्रायः लेखक अपनी भाषा और शैली-रूपों में स्वयं परिवर्तन कर लेते हैं। कभी उनकी भाषा अधिक तत्सम-बहुला और कभी तद्भव हो जाती है तो कभी लोकभाषाभिमुख और कभी विदेशी शब्द-संकुल हो जाती है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की भाषा में हमें ऐसे शब्द-रूप-विभेद के कई उदाहरण मिलते हैं। विषय-भेद के अनुसार भी एक ही लेखक की विभिन्न रचनाओं में भाषा-भेद दिखाई देता है। 'निराला' 'गरम पकौड़ी' में बाज़ारू, देशी-विदेशी शब्दमयी भाषा लिखकर 'तुलसीदास' में अति संस्कृत-प्रचुर भाषा भी लिख सके हैं।

लिपिकार दृष्टि और मति-भ्रम से भी आदर्श प्रति को ठीक-ठीक लिपिबद्ध नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में मूल लेखक का पाठ-निर्धारण कठिन हो जाता है। जो शोधार्थी किसी प्राचीन कवि के ग्रन्थ के सम्पादन पर कार्य करना चाहता है उसे सर्वप्रथम उस कवि की काल-क्रमानुसार सभी प्राप्त अप्रकाशित-प्रकाशित प्रतियों को एकत्र करना चाहिए। यह उसकी मूल सामग्री होगी। अनेक हस्त-लिखित प्रतियों में पुष्पिका मिलती है जिसमें लिपिकार का नाम, स्थान तथा काल (तिथि-संवत् आदि) दिया रहता है। इससे पाण्डुलिपि के काल का सहज ज्ञान हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसे उन ग्रन्थों को भी एकत्र करना चाहिए जिनमें उस ग्रन्थ से उद्धरण दिए गए हैं। उदाहरण के लिए, भट्ट लोल्लट के

रस-निष्पत्ति-संबंधी विचार हमें अभिनवगुप्त की टीका में मिलते हैं। हमें भट्ट लोल्लट के ग्रन्थ की किसी प्रकार की प्रति उपलब्ध नहीं होती। अतः हमें अभिनवगुप्त की टीका में उद्धृत भट्ट लोल्लट के विचारों से ठीक पाठ को समझने में सहायता मिल सकेगी। कई बार मूल ग्रन्थ के अनुवादों से भी पाठ-निर्धारण में सहायता मिल जाती है। पूना के 'भांडारकर शोध-संस्थान' में महाभारत का प्रामाणिक संस्करण वर्षों से तैयार हो रहा है। उसमें 11वीं शताब्दी में तेलुगु और जावानी भाषा में अनूदित महाभारत की प्रतियों की भी सहायता ली गयी है। टीका-ग्रन्थों में प्रायः मूल लेखक की पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं, अतः वे भी शोधार्थी को कवि की किसी पंक्ति-विशेष के मूल पाठ को निर्धारित करने में सहायक हो सकते हैं। कभी-कभी किसी लोकप्रिय ग्रन्थ के अनुकरण पर लिखे ग्रन्थों से भी सहायता मिल जाती है। कालिदास के 'मेघदूत' के आधार पर कई पवनदूत लिखे गए हैं। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' का क्षेमेन्द्र आदि ने अनुकरण किया है। इनमें मूल लेखक के शब्द भी यत्र-तत्र पाए जाते हैं, जो पाठालोचक की, किसी प्रसंग में प्रयुक्त, शब्दों की उलझनों को दूर कर सकते हैं। इन सब ग्रन्थों का समावेश सहायक सामग्री के अन्तर्गत आता है। शोधार्थी को सर्वप्रथम मूल सामग्री अर्थात् ग्रन्थ की प्रति और प्रतिलिपियों और सहायक सामग्री का संग्रह अवश्य कर लेना चाहिए। संग्रह के पश्चात् काल-क्रमानुसार सामग्री का विभाजन किया जाना चाहिए। मान लीजिए, शोधार्थी को किसी कवि की कृति की एक ही प्रति प्राप्त हुई है। उसका सम्पादन वह कैसे करे? इसके लिए उसे उसी प्रति को बार-बार ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए और कृतिकार की शिक्षा-दीक्षा से परिचित होकर उस काल की उपलब्ध कृतियों का भी अध्ययन करना चाहिए। तभी वह प्राप्त प्रति की, भाषा की दृष्टि से, पुनर्रचना कर सकता है। एक दो संदर्भ-ग्रंथों के सहारे ही सम्पादन-कार्य में प्रवृत्त नहीं हो जाना चाहिए। विभिन्न प्रकार की सहायक सामग्री की सहायता से उस प्रति का पुनर्निर्माण करना चाहिए। उदाहरण के लिए मान लीजिए, हमें रामचरितमानस की 17वीं शताब्दी की एक ही प्रति उपलब्ध है और उसमें रांम, कांम, नांम जैसे सानुनासिक अन्त्यवर्णात्मक शब्दों के पूर्ववर्ण पर अनुस्वार मिलता है। यदि हमें तुलसी के अन्य ग्रंथों में भी ऐसे शब्द-रूप मिलते हैं तो उन्हें ही हमें मूल कृति के रूप स्वीकारना होगा। जब समान-पाठ की अनेक प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हों तो हमें उनके मूलादर्श की खोज करनी पड़ती है। मूलादर्श प्राप्त हो जाने पर सम्पादन-कार्य सुकर हो जाता है। उसके प्राप्त न होने पर कई प्रतियों के मिलान से जब यह ज्ञात हो जाय कि वे किसी एक प्रति की नकल हैं (बीच-बीच में वे भले ही त्रुटित या खंडित हों), तब उस एक प्रति को काल्पनिक आदर्श प्रति मानकर कार्यारम्भ किया जा सकता है। पर कभी ऐसा

भी होता है कि किसी ग्रंथ की विभिन्न पाठ-परम्पराओं की प्रतियाँ मिलती हैं, ऐसी स्थिति में कार्य अधिक श्रमसाध्य हो जाता है। पाठ-परम्पराएँ शब्द-लोप, प्रक्षेप, संक्षेप, परिवर्तन, परिवर्धन, वर्णागम, लोप, विपर्यय आदि से भिन्न हो जाती हैं। यहाँ लिपिक अपने ज्ञान या अज्ञान का परिचय देता है। लिपि-ज्ञान के अभाव में वह मनमाने वर्ण लिख जाता है। कई प्रतियाँ ऐसी भी प्राप्त होंगी जिनके प्रथम या अन्तिम या दोनों ही पृष्ठ खंडित मिलेंगे, या नहीं मिलेंगे। ऐसी स्थिति में सहायक सामग्री से उन पृष्ठों का पुनर्निर्माण किया जा सकता है।

पुनर्निर्माण कैसे किया जाय ?

सम्पादनीय ग्रंथ के पुनर्निर्माण का उद्देश्य उसके रचयिता के पाठ की पुनः-प्रतिष्ठा करना है। शोधार्थी को लेखक की भाषा, शैली आदि के आधार पर विभिन्न प्रतियों के मिलान के पश्चात् यह निश्चय करना होगा कि अमुक पाठ ही लेखक का हो सकता है। यदि कोई पाठ अप्रासंगिक हो, अथवा विचार-धारा के विपरीत हो, तो उसे प्रक्षिप्त या अशुद्ध समझकर तिरस्कृत कर देना चाहिए। शब्द-रूप, वाक्य-रचना आदि को रचयिता के काल की भाषा-प्रवृत्ति के अनुसार रखना चाहिए। कई बार शोधार्थी-सम्पादक को दूषित या खंडित पाठ में सुधार करना भी अभीष्ट हो जाता है। इस सम्बन्ध में दो मत हैं : पहले मत के अनुसार सम्पादक को कालक्रमानुसार प्राचीन प्रतियों के मिलान के पश्चात् आदर्श प्रति तैयार कर सुधार करना उचित नहीं है। पाठ में यदि दोष हैं—अर्थसंगति नहीं है—तो उसे रचयिता के ही दोष समझकर उसमें निहित अर्थ को निश्चित करना चाहिए। इससे कई बार शब्दों से मनमाने अर्थ निकाले जाते हैं जैसा 'पद्मावत' की विभिन्न सम्पादित प्रतियों में देखा गया है। दूसरा मत यह है कि सम्पादक को शब्दों का खींच-तान कर अर्थ नहीं लगाना चाहिए। पाठ में थोड़ा-बहुत सुधार कर देना चाहिए, जिससे साहित्य का निर्विघ्न रसास्वादन किया जा सके। दूसरा मत आधुनिक है। इसके अनुसार संदिग्ध पाठों को विशेष रूप से निर्दिष्ट किया जाता है। अंत में काल्पनिक मूलादर्श की प्रति के निश्चयन की विधि से यह प्रसंग समाप्त किया जाता है।

मान लीजिए, तुलसीकृत रामचरितमानस के अयोध्याकांड का पुनर्निर्माण करना है। हमें उसकी विभिन्न कालों की आठ प्रतियाँ उपलब्ध हो सकी हैं। हम उन्हें प्रति क, प्रति ख, प्रति ग, प्रति घ, प्रति ङ, प्रति च, प्रति छ और प्रति ज नाम देंगे। इनके पाठ-मिलान से यह निश्चय हुआ कि इनमें प्रथम पाँच का एक गण बन जाता है और शेष तीन का दूसरा गण। प्रथम गण की प्रतियाँ काल्पनिक आदर्श 'प' प्रति के आधार पर लिखित हैं और दूसरे गण की प्रतियाँ काल्पनिक आदर्श 'फ' प्रति के आधार पर लिखित हैं। पुनःपरीक्षण पर ज्ञात हुआ कि

प-गण के तीन उपगण हो सकते हैं : (1) क ख, (2) ग घ और (3) ङ। क ख का काल्पनिक आदर्श 'ल' और ग घ का 'व' है। इनमें ख क की प्रतिलिपि है और च, छ, ज का काल्पनिक आदर्श प है और इन सबका मूल स्रोत काल्पनिक आदर्श 'श' है। यदि यह निश्चित हो जाता है कि ख क की प्रतिलिपि है तो 'ख' प्रति को पृथक् किया जा सकता है। इस प्रति का उपयोग वहीं होगा जहाँ क प्रति का कोई अंश त्रुटित होगा। इसे इस वृक्ष से समझा जा सकता है—
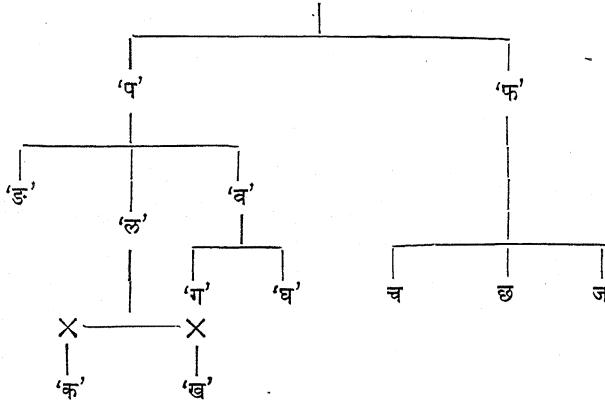
अब हमें 'श' नामक काल्पनिक आदर्श प्रति का निर्माण करना है। अतः यदि क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज प्रतियों में समान पाठ मिलता है तो वह आदर्श प्रति का पाठ है। यदि प-गण और फ-गण के पाठों में अन्तर है तो हमें केवल इसीलिए कोई पाठ सहसा स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए कि वह बहुप्रतियों में विद्यमान है। हो सकता है, एक प्रतिलिपिकार के प्रमाद का अनुकरण अन्यों ने किया हो। अतः सम्पादक को अन्य सहायक सामग्री की सहायता से स्वयं मूल पाठ निर्धारित करना पड़ेगा। अब हमें 'प' काल्पनिक प्रति का पुनर्निर्माण करना है। अतः हमें देखना होगा कि क्या ग घ के पाठ समान हैं ? यदि हैं तो वह 'व' आदर्श प्रतिलिपि का पाठ है और यदि वे पाठ असमान हैं पर वे 'प' गण की शेष प्रतियों में मिलते हैं तो वह 'व' का पाठ होगा। इसी प्रकार ग घ प्रतियों का पाठान्तर यदि फ गण की किसी प्रति में मिलता हो तो वही 'व' का पाठ समझा जायेगा। यदि ग घ के पाठ प या फ-गण की प्रतियों से न मिलते हों तो हम 'व' का पाठ संदिग्ध ही रखेंगे। 'ल' काल्पनिक आदर्श प्रति का पाठ-

निर्धारण भी ऊपर की ही 'ब' गण की विधि से होगा। 'फ' आदर्श प्रति का पुनर्निर्माण, यदि च, छ, ज प्रतियों में समान पाठ है तो, सहज-साध्य हो जाता है। यदि इन प्रतियों में पाठ-भेद हो और वह पाठ प-गण की किसी भी प्रति में मिलता हो तो वह समान पाठ ही 'क' आदर्श प्रति का होगा और वही 'श' का भी होगा। च, छ, ज का कोई पाठ किसी भी गण की प्रति से न मिलता हो तो वह संदिग्ध पाठ होगा और अपपाठ माना जायेगा। 'प' और 'फ' आदर्श प्रतियों के समपाठ ही आदर्श प्रति 'श' के पाठ होंगे। यदि कोई पाठ इन दो प्रतियों में भिन्न हो तो कोई भी पाठ 'श' प्रति का पाठ हो सकता है पर उसे संदिग्ध पाठ ही मानना होगा। यदि काल्पनिक आदर्श प्रति 'श' से अनेक शाखाओं प फ व आदि का उद्‌गम हुआ हो तो 'श' का पुनर्निर्माण एक से अधिक प्रतियों के पाठ के आधार पर होगा। यह भी सम्भव है कि एक लिपि-कार किसी ग्रन्थ के विभिन्न अंशों को विभिन्न प्रतियों से भी लिपिबद्ध कर सकता है। ऐसी दशा में संकर प्रतियों के पाठ को पाठान्तर ही मानना पड़ेगा।

इसमें सन्देह नहीं, प्राचीन ग्रंथ-सम्पादन का कार्य सहज साध्य नहीं है, कष्ट-साध्य है और समय-सापेक्ष भी है। पूना के भाण्डारकर शोध-संस्थान में महाभारत का सम्पादन-कार्य विभिन्न विद्वानों द्वारा हो रहा है। ज्ञात नहीं, उसे पूर्ण होने में कितना समय और लगेगा।

पाठालोचन लेखक द्वारा स्वहस्तलिखित ग्रन्थ का भी हो सकता है। वर्तमान मुद्रित ग्रन्थ भी पाठालोचित हो सकते हैं क्योंकि मुद्रित ग्रन्थ के सम्बन्ध में हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि वह लेखक की प्रति का यथावत् मुद्रण है। कई बार प्रकाशक और प्रूफरीडर तक अपनी इच्छा के अनुसार वाक्य-रचना या शब्दों में परिवर्तन कर देते हैं। ऐसे परिवर्तन जब लेखक के सामने आते हैं तब वह पुस्तक के अन्त में भूल-सुधार का पृष्ठ जुड़वा देता है। फिर भी कुछ गलतियाँ छूट ही जाती हैं। मुद्रण-कला ने हस्तलेखन की कला को समाप्त ही कर दिया है। अतः वर्तमान लेखक की स्वहस्त प्रति को, यदि वह प्राप्त हो सके तो, हस्तगत करके ही हम उसकी भाषा आदि पर अपने विचार प्रकट कर सकते हैं और यदि प्राप्ति न हो सके तो उसके अन्य मुद्रित ग्रन्थों की भाषा-शैली आदि सहायक सामग्री के आधार पर उसकी सम्भावित मूल प्रति का पुनःनिर्माण किया जा सकता है।

ग्रंथों का ही नहीं, शिलालेखों में उत्कीर्ण लेख या लघु रचना का भी पाठा-लोचन अथवा पुनर्निर्माण किया जा सकता है क्योंकि शिलालेख पर काल या मनुष्य का असंस्कारी कार्य उसके कुछ या अधिक भाग को खंडित कर देता है। ऐसी दशा में पाठालोचक संदर्भ से शब्दों को यथास्थान जोड़कर मूल 'पाठ' को निर्मित कर देता है। हिन्दी में स्व० माताप्रसाद गुप्त ने 'राउल वेल' नामक

कृति का, जो 'शिला' पर उत्कीर्ण थी और यत्र-तत्र खंडित थी, पाठोद्धार किया है। इससे साहित्य के इतिहास की पुरानी कड़ी का पता चला है। यह ग्यारहवीं शताब्दी की रचना प्रेम-काव्य है जिसका रचयिता रोड़ है। एक ही शिला पर पद्य-गद्य में पूरी काव्य-कृति उत्कीर्ण है। इसमें कलचुरी-वंश के किसी सामन्त की सात नायिकाओं का नखशिख-वर्णन है। ये नायिकाएँ सामन्त की नवविवाहिताएँ हैं जो महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान आदि भिन्न-भिन्न प्रान्तों की हैं। इस कृति का महत्त्व इसलिए है कि यह लोगों की इस धारणा को खंडित करती है कि नव्य भारतीय-आर्य भाषाओं का साहित्य में प्रयोग वि० सं० 1400 के पूर्व नहीं हुआ। यह ईस्वी ग्यारहवीं शती की रचना है और भाषा-भाव दोनों में प्रौढ़ है। शिला की अन्तिम पंक्ति के कटकर निकल जाने से इसकी रचना-तिथि अनिश्चित थी, पर पाठालोचक डॉ० गुप्त ने सहायक सामग्री का उपयोग कर उसे निश्चित कर दिया। उन्होंने उसकी लिपि की परीक्षा कर यह निश्चय किया कि वह भोजदेव के 'कूर्मशतक' वाले धार के शिलालेख से मिलती है। दोनों में एक भी मात्रा का अन्तर नहीं है और उसके बाद के लिखे हुए अर्जुन वर्मदेव के समय के 'पारिजात-मंजरी' के धार के शिलालेख की लिपि किंचित् बदली हुई है (देखिए, इमिग्राफिया इण्डिया, जिल्द 8, पृष्ठ 961) इसलिए इस लेख का समय 'कूर्मशतक' के उक्त शिलालेख के आसपास, अर्थात् 11वीं ई० शती, होना चाहिए। इस प्रकार, जैसाकि हम पहले कह चुके हैं, सहायक सामग्री से तथ्य-निर्धारण में सहायता मिल जाती है।

अभिलेखों, शिलालेखों, ताम्रपत्रों और सिक्कों पर उत्कीर्ण प्रलेखों की प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध है क्योंकि कारीगरों के मार्गदर्शन के लिए वे प्रारम्भ में भूर्जपत्रों या ताड़पत्रों पर लेखकों द्वारा लिखे जाते होंगे। हस्तलिखित ग्रन्थों को तो लिपिकों द्वारा लिखवाया जाता रहा है और एक ग्रन्थ की कई लिपि-प्रतिलिपियाँ होती रही हैं। अतः उनमें विकृतियों का आ जाना स्वाभाविक है। यदि लिपिक बुद्धिमान और ग्रंथ के विषय का ज्ञाता भी हुआ तो वह मूल ग्रन्थ की नकल करते समय अपनी बुद्धि से यत्र-तत्र घटाई-बढ़ाई भी करता होगा। इसीलिए हस्तलिखित ग्रन्थों का पाठ-निर्धारण आवश्यक होता है। 'राजशेखर' ने 'काव्य-मीमांसा' में लिखा है कि कवियों को काव्यों की सुरक्षा के लिए उनकी कई प्रतिलिपियाँ तैयार करा लेनी चाहिए। अतः ग्रन्थकर्ता के जीवन-काल में ही अच्छे ग्रन्थ कई व्यक्तियों द्वारा लिखे जाते रहे होंगे और पुस्तकालयों में संगृहीत होने पर पुस्तकालयाध्यक्ष भी उनकी प्रतिलिपि कराते रहे होंगे। इन सब कारणों से हस्तलिखित ग्रन्थ की मूल प्रति की आदर्श प्रति की निर्धारणा आवश्यक हो जाती है। प्रतिलिपि कैसे तैयार की जाती रही होगी, इसकी ठीक-ठीक जानकारी हमें नहीं है, पर मूल प्रति की सुरक्षा का ध्यान अवश्य रखा

जाता होगा। श्री कत्ते की आधुनिक समय की धवला, जयधवला तथा महाधवला की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियाँ दक्षिणी कनाडा के मुदिविद्री नामक जैन-भण्डार में सुरक्षित पायी गयीं। इन ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ प्राप्त करने के लिए बड़े धैर्य और चातुर्य से काम लेना पड़ा।

कई नष्ट ग्रंथों का पता हमें अनुवाद, अन्य ग्रंथों में उनके उद्धरण व टीका-ग्रंथों से लगा है। अनेक बौद्ध ग्रन्थ चीन, तिब्बत तथा चीन के प्राचीन अभिलेखागारों तथा विद्वानों के यहाँ भोट या चीनी भाषा में अनूदित रूप में प्राप्त हुए हैं। राहुल सांकृत्यायन, डॉ० रघुवीर आदि शोधकर्ताओं ने ऐसे कई ग्रंथों का पता लगाकर उन्हें अपने देश में लाकर पुनः नागरी में, संस्कृत में रूपान्तरित कर सुरक्षित रखा है।

हम देखते हैं कि प्राचीन ग्रंथों की प्रतिलिपियों की परम्परा भिन्न-भिन्न होती है। वे कहीं अनुवाद-रूप में, कहीं चित्रलिपि में और कहीं भिन्न देश में प्राप्त होती हैं। अतः उनको प्राप्त कर उनका पाठ-निर्धारण करना आसान कार्य नहीं है। यूरोप के विद्वानों ने लैटिन-ग्रंथों के पाठालोचन की निम्नलिखित प्रणाली अपनायी थी—

(1) हस्तलिखित ग्रंथों एवं उनके साक्ष्य की सारी सामग्री इकट्ठी की गयी; और उसे वंश-परम्परा के रूप में व्यवस्थित किया गया।

(2) संचित सामग्री का पुनःस्थापन किया गया।

(3) ग्रंथकर्ता द्वारा लिखित पाठ का पुनःस्थापन किया गया।

(4) मूल ग्रंथ-लेखक द्वारा उपयोग में लाए गए स्रोतों का पृथक्करण किया गया।

पाठों के परिवर्तन के सम्बन्ध में डॉ० सुखटनकर ने निम्न सुझाव दिए हैं—

"किसी काव्य-ग्रंथ का पाठालोचन करना हो तो किसी अच्छे संस्करण को आधारभूत मानकर कविता के एक-एक पद को इकाई मानना चाहिए और उन्हें स्पष्ट रूप से वर्णक्रम के अनुसार कोष्ठकों में पृथक्-पृथक् कागज़ पर ऊपर वाले हिस्से में लिखना चाहिए। जिन पदों में भेद हो, उन्हें कागज के नीचे वाले हिस्से में सम्बन्धित पद के नीचे वर्णक्रम के अनुसार कोष्ठकों में लिखना चाहिए। कागज़ के बायें हाशिये में प्रत्येक कोष्ठक के साथ उन हस्तलिखित प्रतियों का नाम होगा जिनका परितुलन हुआ हो और दाहिने हाशिये में कुछ अन्य अतिरिक्त जानकारी लिखने के लिए खाली स्थान सुरक्षित रखना चाहिए।" डॉ० सुखटनकर ने महाभारत के संस्करण के उपोद्घात में इस प्रक्रिया की विस्तृत जानकारी दी है, उसे पढ़ लेना चाहिए।

एडगर्टन ने पंचतंत्र के पाठालोचन में जिस प्रक्रिया का प्रयोग किया है वह इस प्रकार है—

उन्होंने सर्वप्रथम पंचतंत्र के उन सभी संस्करणों को एकत्र किया, जो मूल पंचतंत्र की पुनर्रचना में सहायक हो सकते थे। तत्पश्चात् उन्होंने प्रत्येक संस्करण की सामग्री की, दूसरे संस्करण की सामग्री से बारीकी से तुलना की। इसके लिए उन्होंने पाठ को छोटी-छोटी इकाई में जो नियमत: कभी एक वाक्य, पद या वाक्यांश की थी, विभाजित किया। तदनन्तर ऊपर बताई हुई विधि से उनका परितुलन किया। इस रीति से उन्होंने गद्य-पद्य दोनों के संतुलन का कार्य पूरा किया।

उपर्युक्त प्रविधि को और स्पष्ट रूप से समझाया जाता है। पाठालोचक उपलब्ध प्रतियों को उनकी पुष्पिकाओं के आधार पर काल-क्रमानुसार जमाता है। उसके पश्चात् उनकी तुलना करता है। तुलना करने के पूर्व प्रतियों पर क्रमांक 1, 2, 3, 4, 5 आदि डालता है। फिर क्रमांक 1 की प्रति की, जिसे वह आदर्श मानकर चलता है, प्रत्येक पंक्ति को शब्दों में बाँटकर लिखता है और उसके नीचे अन्य प्रतियों को उसी पंक्ति में लिखता जाता है। इससे पाठ-भेद का तुरन्त ज्ञान हो जाता है। नीचे तुलना का ढंग दिया जाता है—

प्रति-क्रमसंख्या	काव्य-पंक्ति-विभाग										विशेष
प्रति क्र०—1	मिरगावती	निहचों	कै	जानाँ	वहै	कुँवर	जा	मन	कर	मानाँ	
प्रति क्र०—2	,,	निस्चै	कै	जानाँ	उहइ	कुँवर	जा	मन	कर	माना	
प्रति क्र०—3	,,	निहचौं	कै	जानाँ	वहै	कुँवर	जा	मुनि	कर	माना	
प्रति क्र०—4	,,	निहचों	कै	जानाँ	उहइ	कुँवर	जा	मन	करि	माना	

उपर्युक्त विधि से समस्त पुस्तक के पाठ को विभाजित कर लेना चाहिए। 'विशेष' खाने में पंक्ति में खंडित, त्रुटित आदि शब्दों का उल्लेख कर देना चाहिए।

विकृतियों का संशोधन

क्या पाठ-निर्धारण के समय पाई जानेवाली विकृतियों में सुधार किया जाना चाहिए या उन्हें ज्यों-का-त्यों रहने दिया जाना चाहिए ? इस सम्बन्ध में

विद्वानों में मतभेद है। जहाँ तक सम्भव हो, प्राचीन उपलब्ध प्रतियों का खूब अध्ययन करने के उपरान्त ही संशोधन करना चाहिए। यदि आपने अर्थ-संगति के आधार पर किसी स्थल पर संशोधन किया है तो यह प्रयत्न लगातार होता रहे कि वह संशोधित पाठ किसी प्राचीन लिपि में मिलता है या नहीं। यदि मिल जाता है तो संशोधन उचित माना जायगा। यदि नहीं मिलता है तो उसे 'संदिग्ध' या 'विचारार्थ' लिख देना उचित होगा।

हस्तलिखित ग्रंथों में विकृतियों के कारण

हम पहले कह चुके हैं कि विकृतियाँ बहुधा लिपिकार के अज्ञान या बहुत अधिक सज्ञान होने के कारण हो जाती हैं। मनुष्य से भूल होना स्वाभाविक है। इस सिद्धान्त को मान लेने पर भी हम यदि उनके कारणों को जान जायँ तो पाठ-निर्माण में सहायता मिल जायगी।

अतः पाठालोचन के विशेषज्ञों—हाल, कत्रे आदि—ने पांडुलिपियों में विकृतियों के निम्नलिखित कारण खोज निकाले हैं—

(1) **वर्ण-साम्य**—जब पंक्ति में पास-पास एक ही वर्ण या अक्षर आ जाता है तो बीच का समान वर्ण लिखने से छूट जाता है।

(2) **शब्द-साम्य**—जिस प्रकार समान वर्ण या अक्षरों के कारण वर्ण-लोप हो जाता है, उसी प्रकार समान शब्दों के कारण भी अशुद्धि हो जाती है।

(3) संक्षिप्त रूपों का मिथ्या अर्थ लगाना।

(4) अशुद्ध समास-विग्रह।

(5) शब्दों के अन्त्याक्षरों को अशुद्ध रीति से मिलाना और एक शब्द को दूसरे वाक्य में मिलाना।

(6) वर्णों, शब्दों एवं वाक्यों का क्रम-परिवर्तन; वाक्यों, खण्डों एवं पृष्ठों का विस्थापन।

(7) प्राकृत अथवा आधुनिक भाषाओं में संस्कृत का अशुद्ध प्रयोग और प्राकृत अथवा आधुनिक भाषाओं के अंशों का संस्कृत में अशुद्ध प्रयोग।

(8) उच्चारण-परिवर्तन के कारण अशुद्धियाँ।

(9) अंकों में विभ्रान्ति।

(10) नामवाचक संज्ञाओं (प्रापर नाउन्स) में विभ्रान्ति (इसका उदाहरण डॉ० कत्रे की भारतीय पाठालोचन की भूमिका के हिन्दी-अनुवाद में मिलता है)। कत्रे की पुस्तक अँग्रेजी में है जिस पर उनका नाम रोमन लिपि में KATRE लिखा हुआ है। अनुवाद-ग्रंथ में कत्रे का 'कात्रे' छप गया है। इसी प्रकार 'हिन्दी-साहित्य का बृहत् इतिहास' प्रथम भाग के पृष्ठ 273 पर रोमन लिपि में लिखित Madhukar Anant Mehandale का नाम 'डॉ० मधुकर अनन्त

मेहेडेल' छपा है। उनके नाम का आस्पद 'मेंहदले' है। यह भूल महाराष्ट्रीय नामों से अपरिचित रहने और रोमन लिपि के कारण हुई है। हिन्दी में रोमन में लिखित कई नाम गलत लिखे जाते हैं—विशेषकर फ्रेंच और रूसी नाम।

(11) अपरिचित शब्दों के लिए परिचित पर्याय या शब्द का प्रयोग। जब प्रतिलिपिकार किसी शब्द से परिचित नहीं होता, तो वह उसी का पर्याय शब्द रख देता है, पर उससे कवि का भाव-सौन्दर्य नष्ट होने की सम्भावना रहती है। इसे वह भूल जाता है। 'प्रसाद' के 'आँसू' का एक अंश है—

"रो-रोकर सिसक-सिसक कर,
कहता मैं करुण कहानी।
तुम सुमन नोचते जाते,
करते जानी अनजानी।"

इन पंक्तियों में एक चित्र खींचा गया है। उद्यान में प्रेमी और प्रेमिका खड़े हैं। प्रेमी प्रेमिका से अपना प्रेम-निवेदन करता है—रो-रोकर सिसक-सिसक-कर—पर प्रेमिका खड़ी-खड़ी सुमन की पंखुड़ियों को नोचती जाती है और उपेक्षाभाव दर्शाती है या उसका अभिनय करती है। इस पर प्रेमी क्षुब्ध होकर कहता है—"तुम जानबूझकर सुमन नहीं, मेरे 'सु-मन' को मसल रही हो।" 'सुमन' में श्लेष है। प्रेमी अपने मन को सुमन—सुन्दर मन—इसलिए कहता है कि उसमें उसकी प्रेमिका का अधिवास है। अब यदि 'सुमन' के स्थान पर इसका पर्याय कुसुम रख दिया जाय तो कवि का सारा भाव-सौन्दर्य ही नष्ट हो जायगा। 'सुमन' शब्द ने ही उसमें सौरभ भरा है। इसीलिए कहा गया है कि प्रतिलिपिकार को सावधानी से मूल प्रतिलिपि में शब्दों में परिवर्तन करने का साहस करना चाहिए।

(12) पुरानी वर्तनी के स्थान पर नई वर्तनी का प्रयोग। पुरानी पाण्डु-लिपियों में राम, काम में रा और का के ऊपर अनुस्वार लगा हुआ मिलता है। यदि आधुनिक लिपिकार उनपर से अनुस्वार हटा देता है तो वह मूल प्रतिलिपि की रक्षा नहीं करता।

(13) क्षेपक अथवा अज्ञान में हुई भूलों के परिणामों में सुधार करने का प्रयत्न।

(14) **लोप**—एक ही शब्द या अक्षरों के आरम्भ तथा अन्त होने वाले शब्दों को छोड़ना।

(15) किसी भी प्रकार का सामनय लोप।

(16) **वृद्धि**—पास या अतिनिकट के छन्द या पाठ की पुनरावृत्ति।

(17) दो पंक्तियों के बीच अथवा हाशिया में अपनी ओर से कुछ जोड़ देना।

(18) प्रक्षिप्त पाठ या प्रक्षेप ।

डॉ० कत्रे ने उपर्युक्त दोषों के उदाहरण ग्रन्थों से दर्शाए भी हैं ।

हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतिलिपि करना भी एक श्रम-साध्य व्यापार है। प्रतिलिपिकार को ग्रन्थ की भाषा तथा विषय का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। उसे ग्रन्थ की लिपि का ही नहीं, विदेशों की भी लिपियों का ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि इधर कई ग्रन्थ अभारतीय लिपियों में भी लिप्यन्तरित किए गए हैं। अतः जब तक विभिन्न लिपियों का ज्ञान न होगा, भूलें होना स्वाभाविक है।

कई बार प्रतिलिपिकार मूल ग्रन्थ या आदर्श प्रति को दूसरे से पढ़वाता है और उसे सुनकर लिखने लगता है। ऐसी स्थिति में जो प्रति तैयार होगी वह लिपिकार की अपनी शब्द-वर्तनी और प्रवृत्ति के अनुसार होगी। ऐसा ज्ञात होता है कि सन्तों की कापी की प्रतिलिपि करने में अधिक सावधानी बरती जाती रही है, क्योंकि उनके शब्दों में मन्त्र-शक्ति निहित मानी गई है। पर साहित्य-ग्रन्थों के सम्बन्ध में आवश्यक सतर्कता कम बरती गई है।

पाण्डुलिपियों के सम्पादन के कतिपय व्यावहारिक सुझाव

हम संगृहीत प्रतिलिपियों की पाठ-तुलना की विधि बता चुके हैं कि आलोच्य ग्रन्थ की प्रत्येक पंक्ति को शब्दों में किस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है। नीचे हम डॉ० कत्रे के कतिपय सुझावों को दे रहे हैं—

(1) पाठालोचक को अपनी भूमिका में उस सब सहायक सामग्री का उल्लेख करना चाहिए जो ग्रन्थ के अध्ययन के लिए उपयुक्त समझी गई है।

(2) सहायक सामग्री के अन्तर्गत, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, टीकाएँ, संक्षेप, सुभाषित, गृहीत अंश (एडेप्टेशन्स) आदि आते हैं।

(3) प्रत्येक प्रतिलिपि के संकेत-चिह्न के ऊपर उसकी लेखन-काल भी संकलित कर देना चाहिए। जैसे आपने एक प्रति को 'क' नाम दिया है और वह 14वीं शती की है तो आप प्रति में जहाँ 'क' लिखा है, वहीं उसके ऊपर 14 लिख दें ($क^{14}$)। इससे आपको तुरन्त ज्ञात हो जायगा कि प्रतिलिपि का लिपि-काल 14वीं शताब्दी है। यहाँ यह स्मरण रहे कि भूमिका में संकेत-चिह्नों की व्याख्या की जाय।

(4) भूमिका में विभिन्न प्रतियों में पायी जाने वाली समानताओं-असमानताओं का भी उल्लेख होना आवश्यक है।

(5) सम्पादक को विभिन्न प्रतियों के पाठों की विशेषताओं का और विभिन्न प्रतियों के पाठों के आपसी सम्बन्धों पर विचार करना चाहिए।

(6) यदि सम्पादित ग्रन्थ के अन्य सम्पादकों द्वारा सम्पादित संस्करण उपलब्ध हों तो उनकी न्यूनता और स्वसम्पादित संस्करण की विशेषता की भी

चर्चा होनी चाहिए।

(विशेष जानकारी के लिए डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त द्वारा पाठालोचित कुतुबन-कृत मिरगावती, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा सम्पादित पद्मावती-भाष्य, डॉ० माताप्रसाद गुप्त तथा आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रामचरितमानस के संस्करण की भूमिकाएं देखिए।)

एक दृष्टि में

पाठालोचन निगमन-प्रणाली का शास्त्र

उपर्युक्त उपकरणों पर अंकित आलेख सहायक सामग्री के अन्तर्गत आते हैं।
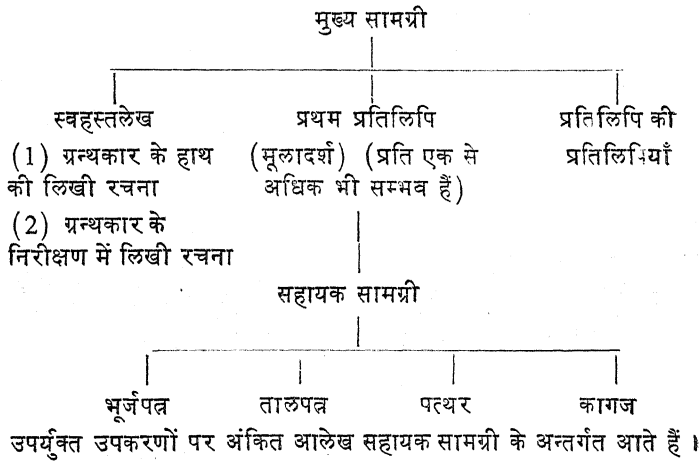
आदर्श प्रतिलिपि के पाठ-निर्धारण की वैज्ञानिक प्रविधि
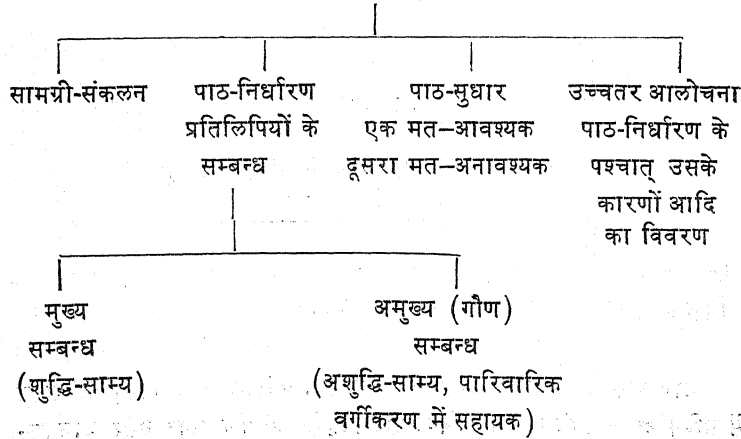
(प्रतिलिपियों के परिवारों की सभी या अधिक शाखाओं में पाया जाने वाला पाठ ग्राह्य माना जाता है।)

टिप्पणी—पाठालोचन साहित्यालोचन नहीं है; वह केवल रचना के मूलरूप को विशेष प्रतिक्रिया द्वारा निर्धारित करता है।

साहित्यालोचन रचना की पुनर्निर्मिति के पश्चात् उसके साहित्यिक मूल्य का निर्धारण करता है। तात्पर्य यह कि साहित्यालोचन का कार्य तभी प्रारम्भ हो पाता है जब पाठालोचन का कार्य समाप्त हो जाता है। क्योंकि जब तक कृतिकार द्वारा लिखित रचना का वास्तविक रूप प्रस्तुत नहीं होगा, रचना की आलोचना सम्भव नहीं हो सकेगी।
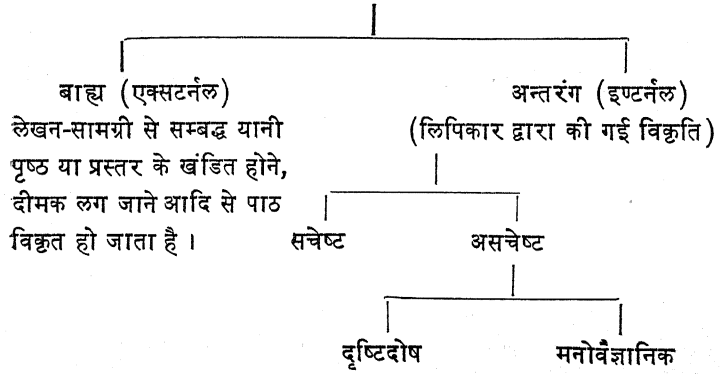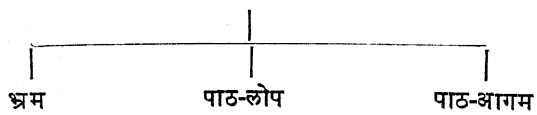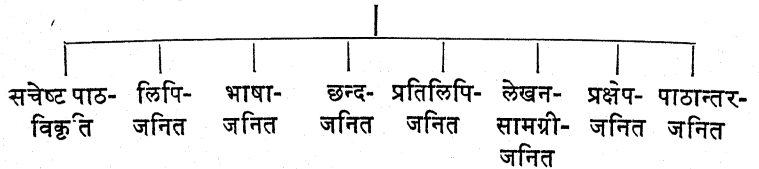
डॉ० गुप्त ने पाश्चात्य पाठालोचकों के सभी वर्गीकरणों को अपने वर्गीकरण में सम्मिलित कर लिया है। सचेष्ट पाठ-विकृति प्रतिलिपिकार स्वयं जानबूझ-

कर करता है। यदि उसकी सूझबूझ बहुत तेज हुई, तो वह मूल पाठ को सर्वथा भ्रष्ट भी कर सकता है।

पाठालोचन की दो प्रक्रियाएँ हैं : एक वैज्ञानिक और दूसरी साहित्यिक। शुद्ध वैज्ञानिक प्रक्रिया 'मक्षिकास्थाने मक्षिका'—नीति का अनुसरण करती है। साहित्यिक प्रक्रिया प्रतिलिपियों में जिन स्थलों पर एकरूपता या संवादिता नहीं मिलती, वहाँ प्रसंगानुरूप सार्थक शब्द रखने में संकोच नहीं करती। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र (इसी सन्दर्भ में) लिखते हैं, "कोरी वैज्ञानिक प्रक्रिया से हिन्दी के किसी ग्रन्थ का ठीक-ठीक सम्पादन नहीं हो सकता। उसके लिए साहित्यिक सम्पादन की सरणि का परित्याग अहितकर है। वैज्ञानिक प्रक्रिया भारतीय दार्शनिक दृष्टि से विज्ञान होने से जड़ है। साहित्यिक प्रक्रिया दर्शन होने से चेतन है। मूल ग्रन्थ के लेखन से लेकर सम्पादन तक सभी चेतन प्राणी होते हैं। जड़ की गतिविधि जितनी व्यवस्थित होती है, उतनी चेतन की नहीं। अतः चेतन का प्रयास सर्वथा नियत नहीं होता। वैज्ञानिक प्रक्रिया शब्द पर अधिक ध्यान देती है और साहित्यिक प्रक्रिया शब्द पर ध्यान देते हुए भी अर्थ पर विशेष दृष्टि रखती है। साहित्य 'शब्द और अर्थ का संपृक्त रूप' होता है, अतः शब्द और अर्थ दोनों पर समान दृष्टि ही प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन में उपयोगी हो सकती है। वैज्ञानिक सरणि के नियम का इतना ही सदुपयोग या पालन हो सकता है कि सम्पादक किसी शब्द के हस्तलेखों में न मिलने पर उसे अर्थ-बल पर बदल न सके। अतः दोनों सरणियों के तुल्य बल-संयोजन से ही सर्वोत्तम कार्य हो सकने की अधिक सम्भावना है।" (मानस के काशिराज-संस्करण के 'आत्मनिवेदन' से)

कतिपय प्राचीन ग्रन्थों के पाठ-निर्धारण की प्रक्रियाएँ

'मधुमालती' मंझन की प्रसिद्ध कृति है जिसका रचना-काल सन् 1545 ईस्वी है। इसका सम्पादन स्व० डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने किया है। डॉ० गुप्त पाठालोचन की वैज्ञानिक प्रक्रिया के समर्थक हैं। उन्हें 'मधुमालती' की केवल चार प्रतियाँ प्राप्त हुई थीं, जिनका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—

(1) 'रा'—यह प्रति रायपुर से प्राप्त हुई। अतः इसका नामकरण 'रा' कर दिया गया। इस प्रति की पुष्पिका फारसी में है। इसमें केवल प्रारम्भ का एक पत्र नहीं है। यह फारसी लिपि में लिखा गया होगा। इसी की एक अन्य प्रतिलिपि भारत कला-भवन, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में और एक माइक्रोफिल्म-कॉपी नेशनल आर्काइव्ज, नई दिल्ली, में है।"

(2) 'भा'—यह प्रति भारत कला-भवन, वाराणसी से प्राप्त होने के कारण 'भा' नामांकित है। यह प्रति भी फारसी लिपि में लिपिबद्ध है। आकार

9″×7″ के लगभग। यह प्रति आदि, मध्य और अन्त में त्रुटित है जिसके कारण प्रस्तुत संस्करण के छंद 1-35, 41-78, 107-110, 538 तथा 539 इसमें नहीं हैं। यह बहुत ही सावधानी से लिखी हुई है और फारसी के लिपि-चिह्नों का प्रयोग इसमें बड़ी पूर्णता के साथ किया गया है।

(३) 'मा'—यह प्रति भी भारत कला-भवन, वाराणसी से ही प्राप्त हुई है। यह अत्यधिक त्रुटित है। यह माधोदास की लिखी हुई है। (इसी से इसका नाम 'मा' से चिह्नित किया गया है।) यह आदि में प्रस्तुत संस्करण के छंद 286 तक और फिर उसके बाद प्रस्तुत संस्करण के छंद 346 से 422 तक त्रुटित है। जिस समय सम्पादक इसका पाठ-मिलान करने गए, यह प्रति उन्हें नहीं प्राप्त हो सकी। अतः उन्होंने इसकी सं० 1999 की सावधानी से की हुई प्रतिलिपि से ही काम निकाला।

(४) 'ए'—यह एकड़ला (जिला फतेहपुर) की प्रति है। इसकी पुष्पिका निम्नलिखित है—

"इति श्री मधुमालती पोथी समाप्त है जो संवत् 1744 समै
नाम जेठ सुदी दुजी को तैआर भई बार बुधवार को।
पंडितजन सौं बिनती मोरी। टूटा अक्षर मेरबहिं जोरी।
गुफ्तार मियां मंझन क्रितः राममलूक सहाय लिखित गहिराम।"

केवल प्रथम छंद के लिए 'ए' प्रति का उपयोग किया गया है।

प्रतियों की लिपि-परम्परा

रचना की प्रतियाँ दो लिपियों में पायी जाती हैं—नागरी तथा फारसी में। नागरी में लिखी हुई प्रतियों में नागरी लिपि-सम्बन्धी विकृतियाँ और फारसी लिपि से सम्बन्धित विकृतियाँ स्वभावतः पायी जायँगी। इन्हें सम्पादित पाठ के साथ दिए हुए पाठान्तरों में दिया गया है। किन्तु जिस प्रति की जो लिपि इस समय है, भिन्न लिपि से सम्बन्धित विकृतियाँ उसमें भी पायी जाती हैं। यह ध्यान देने योग्य है। डॉ० गुप्त ने इसी तथ्य को उद्‌घाटित करने वाली पाठ-विकृतियों का उल्लेख किया है।

'मा' प्रति नागरी में लिपिबद्ध है। इसमें फारसी लिपि से सम्बन्धित असावधानियों के कारण विकृतियाँ हुई हैं। यथा—

'वे' को 'ये' समझने के कारण—वियापिउ—पिया पीउ।

'चे' को 'जीम' पढ़ने के कारण—उछाहा—उजाहा।

'गाफ' को 'काफ' पढ़ने के कारण—थिगथिग—थकथक।

'भा'—यह प्रति फारसी में लिपिबद्ध है किन्तु इसमें कुछ पाठ-विकृतियाँ

नागरी लिपि से सम्बन्धित हैं। यथा—

'आ' की मात्रा को 'ई' की मात्रा समझने के कारण—कमान—कमीन।

'ज' को 'त' समझने के कारण—जारी—तारी।

'रा'—यह प्रति फारसी लिपि में है किन्तु इसमें ऐसी विकृतियों की भरमार है जो नागरी लिपि से सम्बन्धित हैं—

'ई' की मात्रा को 'आ' की मात्रा समझने के कारण—सिर—सीर—सार।

'ग' को 'म' समझने के कारण—गम—मम।

'न' को 'र' पढ़ने के कारण—हनेउ—हरेउ।

पुनरावृत्तिसूचक '2' को न समझकर छोड़ देने के कारण—चढ़ि 2—चढ़ि।

'ए' प्रति नागरी लिपि में है किन्तु इसमें फारसी से सम्बन्धित पाठ-विकृतियों की भरमार है। इसके अनेक उदाहरण सम्पादक ने दिये हैं।

विकृति-साम्यों के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों की ओर डॉ० गुप्त ने ध्यान आकर्षित किया है—

(1) 'मा', 'भा', 'ए' के विकृति-साम्य के स्थल रचना के लगभग चौथाई भाग से हैं।

'मा'-प्रति का लगभग दो तिहाई भाग खंडित है, और 'भा' भी अंशतः खंडित ही है, अन्यथा विकृति-साम्य के स्थलों की संख्या लगभग चौगुनी होती।

(2) 'भा' 'ए' के विकृति-साम्य के समस्त स्थलों पर भा खंडित है। इसलिए इस या-ए के विकृति-साम्य के भी मा-भा-ए की विकृति-साम्य होने की पूरी सम्भावना है। और साम्य के स्थलों की संख्या काफी बड़ी है या अंशतः खंडित है। अन्यथा इसकी संख्या कदाचित् कुछ और बड़ी होती।

(3) 'मा' 'भा' के विकृति-साम्य के समस्त स्थल मा-भा-ए के विकृति-साम्य के स्थलों की भांति रचना के लगभग चौथाई भाग से हैं, क्योंकि मा तथा भा दोनों उपर्युक्त प्रकार से खंडित हैं। अन्यथा विकृति-साम्य के स्थलों की संख्या लगभग चौगुनी होती।

(4) 'मा' 'ए' के विकृति-साम्य के रचनास्थल लगभग एक-तिहाई भाग से हैं। क्योंकि जैसा ऊपर कहा गया है, 'भा' का लगभग दो-तिहाई भाग खंडित है। अन्यथा विकृति-साम्य के स्थलों की संख्या लगभग तिगुनी होती।

(5) 'रा' 'ए' दोनों लगभग पूर्ण प्रतियाँ हैं। विकृति-साम्य के स्थलों में उस प्रकार की वृद्धि की सम्भावना नहीं है। फलतः यह प्रकट है कि विभिन्न प्रतियों के उपर्युक्त प्रकार के सम्बन्ध निश्चित पाठ-विकृतियों की एक पर्याप्त रूप से बड़ी संख्या पर आधारित हैं और इसलिए सुनिश्चित हैं। इन सम्बन्धों

को निम्न रेखाचित्र द्वारा व्यक्त किया गया है—
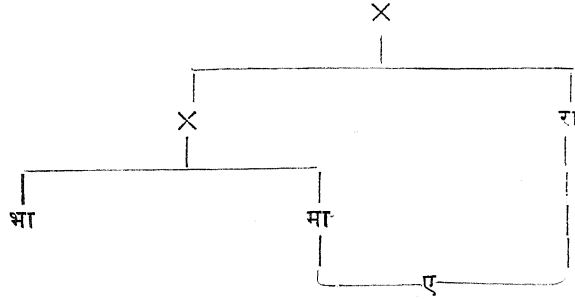
इससे ज्ञात होगा कि 'भा' और 'मा' एक कुल की हैं, 'रा' भिन्न कुल की है तथा 'ए' दोनों कुलों के मिश्रण का परिणाम है।

प्रतियों के पाठ-सम्बन्धों के आधार पर निम्नलिखित प्रकार से रचना का सम्पादन किया गया है—

1. जो पाठ समस्त प्रतियों में समान है उसे स्वीकार किया गया है।

2. जो 'मा' और 'भा' में से किसी में और 'रा' में है, उसे स्वीकार किया गया है।

3. जहाँ पर 'मा', 'भा' में एक पाठ और 'रा' में भिन्न पाठ है, वहाँ पर दोनों में से जो पाठ-विषयक समस्त अंतरंग और बहिरंग सम्भावनाओं की दृष्टि से सम्भव ज्ञात हुआ है, वह स्वीकारा गया है।

4. 'ए' प्रति का पाठ दोनों शाखाओं के मिश्रण का परिणाम होने के कारण रचना के पाठ-निर्धारण के लिए उन्हीं स्थलों पर देखा गया है जहाँ पर 'मा' और 'भा' दोनों के समान रूप से खंडित होने के कारण दो में से किसी का भी पाठ प्राप्त नहीं है, और एक का पाठ 'रा' के पाठ से भिन्न है।

5. रचना के प्रथम छन्द में केवल 'ए' का पाठ प्राप्त होने के कारण आवश्यक संशोधनों के साथ उसी को ग्रहण करना पड़ा है।

इन सिद्धान्तों का प्रयोजन केवल विभिन्न स्थलों पर पाठ-निर्धारण के लिए ही नहीं किया गया है वरन् रचना के छंद-निर्धारण के प्रश्न—अर्थात् कौन-से छंद मूल रचना के होने चाहिए और कौन से प्रक्षिप्त—को हल करने में भी इन्हीं सिद्धान्तों का आश्रय लिया गया है। रचना की दो स्वतन्त्र शाखाओं के पाठ प्राप्त हो जाने से पाठ-निर्धारण अपेक्षित प्रकार का हो सका है। पाठ-संशोधन की आवश्यकता बहुत ही कम पड़ी है।

यद्यपि डॉ० गुप्त ने वैज्ञानिक प्रणाली को महत्त्व दिया है फिर भी जहाँ उन्हें संशोधन की आवश्यकता पड़ी है वहाँ निःसन्देह साहित्यिक प्रणाली का ही

सहारा लेना पड़ा है। अतः पाठालोचन में एक प्रणाली के आग्रह से काम नहीं चलता।

नन्ददास-ग्रन्थावली का सम्पादन

पं० उमाशंकर शुक्ल ने 'पाठालोचन' शास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया है। उन्होंने नन्ददास के ग्रन्थों के सम्पादन में जिस प्रविधि का प्रयोग किया है उसे हम उनकी सम्पादित ग्रन्थावली से दे रहे हैं।

किसी भी ग्रन्थ के सबसे अधिक सम्भावित मूल रूप का उद्धार करना ही उस ग्रन्थ के सम्पादन का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। इस सम्भावित रूप तक पहुँचने का प्रधान साधन उस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। हस्तलिखित प्रतियों में भी जो पाठ कवि के रचना-काल तथा निवास-स्थान से अधिक निकट हैं उन्हीं पाठों के प्रामाणिक होने की अधिक सम्भावना है। नन्ददास के काव्य-ग्रन्थों का प्रस्तुत सम्पादन यथासम्भव ऐसी ही प्रतियों के आधार पर हुआ है। 'रास-पंचाध्यायी', 'भँवरगीत' आदि के मुद्रित संस्करणों में ऐसे बहुत-से पाठ मिले जिनका पोथियों में कोई अस्तित्व न था। अतएव विवश होकर उन्हें मूल पाठ से हटा देना पड़ा।

कवि की भाषा के व्याकरणिक रूपों को स्थिर करने में पोथियों की प्रवृत्तियों के अध्ययन के साथ ही प्रयोगों की ऐतिहासिकता पर विचार करना भी लाभप्रद सिद्ध होता है—कम-से-कम प्राचीन तथा आधुनिक प्रयोगों की जानकारी से हमारे निष्कर्षों में अधिक दृढ़ता आ जाती है। इस प्रणाली का जिस रूप में उपयोग हुआ है, उसके कुछ व्यावहारिक उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

1. मथुरा तथा भरतपुर आदि स्थानों की प्रतियों में अर्द्ध-विवृत ए-ओ ध्वनियाँ क्रमशः ऐ-औ द्वारा व्यक्त की गई हैं जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि की मूल कृति में भी इन्हें इसी रूप में लिखा गया होगा। कभी-कभी पोथियों ने तत्सम शब्दों को भी इसी प्रकार लिखा है जैसे 'तैजमय', 'प्रैम', 'रौम', 'जौति'। उच्चारण की दृष्टि से इन परिवर्तनों का मिलान स्वाभाविक है; किन्तु पोथियों में ये रूप नियमित रूप से नहीं हैं, फलतः इन्हें प्रश्रय देना उचित नहीं है।

तत्सम शब्दों की 'ङ्', 'ण्' आदि अनुनासिक तथा 'श्', 'ष्' आदि ऊष्म ध्वनियाँ भी नियमित रूप से नहीं प्रयुक्त हुई हैं। 'संग', 'चंचल', 'मणि', 'शास्त्र', 'शेष', 'शुकदेव' आदि प्रचलित शब्द क्रमशः 'संग', 'चंचल', 'मनि', 'सास्त्र', 'सेस', 'सुखदेव' के रूप में अधिक संख्या में मिलते हैं। अप्रचलित या कम-प्रचलित शब्दों के सम्बन्ध में परिस्थिति भिन्न है। प्रतियों में 'अश्रप',

'किल्विष', 'शोषन', 'विश्रब्ध', 'निश्चित', 'धिषन', 'श्रमकन', 'आश्रय' को 'अस्त्रप', 'किल्विस', 'सोसन',' विस्त्रब्ध', 'निस्चित', 'धिसन', 'स्त्रकन', 'आस्त्रय' करके नहीं लिखा गया है। ऐतिहासिकता के विचार से कवि के समय ध्वनियों का उच्चारण चाहे जिस प्रकार से होता रहा हो, किन्तु जब प्रतियों में तत्सम रूपों को ग्रहण किया गया है तब हमें भी इन्हें इसी रूप में रखना चाहिए।

2. परसर्ग 'कौं' की अनुनासिकता एक विवादग्रस्त विषय है। मान्य प्रतियों में कर्म-सम्प्रदान में इसे बहुधा अनुनासिक रूप में रखा गया है किन्तु षष्ठी के अर्थ में इसके अनुनासिक तथा निरनुनासिक दोनों रूप व्यवहृत किये हैं। प्राचीन ब्रज में कर्म-सम्प्रदान में दोनों रूप तथा सम्बन्ध में निरनुनासिक रूप ही मिलते हैं। आधुनिक ब्रज में भी मथुरा के आसपास सम्बन्ध में निरनुनासिक रूप पाये जाते हैं। सम्भवत: कवि के समय में भी इस अर्थ में निरनुनासिक रूप (अर्थात् 'को') का ही चलन रहा होगा। अत: इसे ग्रहण कर लिया गया है।

संज्ञाओं तथा सर्वनामों में 'हि' अथवा 'हिं' प्रत्यय लगाकर अनेक संयोगात्मक रूप विभिन्न कारकों के लिए पोथियों में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें संज्ञाओं के रूप बहुधा निरनुनासिक 'हि' के योग से बने हैं (जैसे 'आदि बिन कमलहि को पहचानै', 'मन-बच-क्रम जु हरिहि अनुसरे')। षष्ठी के अर्थ में सर्वनामों के रूप भी प्राय: निरनुनासिक हैं (जैसे—'जिहि भीतर जगमगत, निरन्तर कुँवर कन्हाई', 'सो पुनि तिहि संगति निस्तरी'), किन्तु अन्य कारकों के लिए इनके अधिकांश रूप सानुनासिक मिलते हैं (जैसे 'सुर मुनि रीझत जिहिं', 'जिहिं निरखत नासै', 'मोहिं नहिं करिहौ दासी', 'इनहिं निवेसित कीजै')। प्राचीन ब्रज में सूरदास में संज्ञाओं में भी सानुनासिक रूप मिलते हैं (जैसे, 'पूतहिं भले पढ़ावति')। इस ग्रन्थ में संज्ञा तथा सर्वनाम के रूपों में एकरूपता स्थापित न करके पोथियों की प्रवृत्ति का अनुसरण किया गया है।

3. संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के साथ प्रयुक्त केवलार्थक तथा समेतार्थक अव्यय 'हि' तथा 'हु' नियमित रूप से मिलते हैं (जैसे 'प्रथमहि प्रनऊँ प्रेममय', 'सुनतहि मोहन मुख की बानी', 'सरद कमल दलहू तैं लौने')। सर्वनाम के साथ इन रूपों के अतिरिक्त इनके सानुनासिक रूप भी प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। बहुधा यह देखा गया है कि अनुनासिक-ध्वनियों वाले सर्वनामों के साथ के अव्यय भी सानुनासिक हो गए हैं। प्रतियों में 'न' की अपेक्षा 'म' के बाद के अव्ययों में अधिक अनुनासिक-रूप दिये गए हैं। इसका कारण कदाचित् यह है कि 'म' के उच्चारण में 'न' से अधिक सानुनासिक प्रतिक्रिया होती है। इस संस्करण में अनुनासिक-ध्वनियों के बाद में आनेवाले 'हि' तथा 'हु' में अनुनासिकता रखी गई है, अन्य रूपों में नहीं (जैसे 'ताकौ प्रभु तुम ही आधार', 'तिन हूँ

सबै बिधि लोपी' इत्यादि; तथा 'जितहि धर्‌यौ हौं तितही पायौ, ताहू तैं सतगुनी, सहस किधौं कोटि गुनी है') ।

भाषा के अन्य प्रयोगों के रूप भी इसी प्रकार निश्चित किए गए हैं । बहुत से ऐसे प्रयोग भी हैं जिनके सम्बन्ध में प्रस्तुत अध्ययन से किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सका है—जैसे, सप्तमी के परसर्ग 'परि', 'पर', 'पै' में कवि द्वारा व्यवहृत रूप बताना कठिन है । इसी प्रकार हौहि-हौई, मानहुँ-मानौं, कान्ह-कान आदि दोनों प्रकार के रूप इस संस्करण में मिलेंगे । यह सच है कि 'परि' और 'हौहि' आदि प्रयोग ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन हैं, किन्तु कवि के समय की वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान तो तभी हो सकता है जब उसके ग्रन्थों की तथा अन्य समसामयिक लेखकों की प्राचीन पोथियों को बड़ी संख्या में एकत्रित करके समस्त रूपों की गणना की जाय । तभी ठीक स्थिति का पता चल सकेगा । इस संस्करण में प्राप्त पोथियों के भी विभिन्न प्रयोगों के समस्त रूपों की गणना नहीं की जा सकी है । प्रतियों की परीक्षा करते समय जो प्रवृत्तियाँ लक्षित हुई हैं उन्हीं के आधार पर विचार किया गया है ।

कुछ असाधारण प्रयोग भी हस्तलिखित प्रतियों में अधिक मिले जैसे 'हौंइ' ('बैठे हौंइ साँवरे जहाँ', 'कर्म बुरे जौ हौंहि') । इसके साधारण रूप 'हौंइ' अथवा 'हौंहि' के साथ ही इसे भी मूल पाठ में रख लिया गया है ।

प्रस्तुत संस्करण में भाषा की एकरूपता उसी सीमा तक रखी गई है जहाँ तक वह पोथियों से पुष्ट हो सकी है । किन्हीं सिद्धान्तों का आरोप करके शब्दों में परिवर्तन नहीं किया गया ।

नन्ददास के किसी भी ग्रन्थ की रचना-तिथि ज्ञात नहीं है । खोज-रिपोर्ट सन् 1920-22, संख्या 113(ए) पर 'नाममाला' की एक प्रति के विवरण में उसका रचना-काल सं० 1624 दी गई है जो स्पष्ट ही भूल है, क्योंकि उक्त ग्रन्थ के पाठ में कहीं पर भी यह काल नहीं है । सम्भवत: कवि के सम्भावित कविता-काल के भ्रम से ही इस काल को रचना-काल के रूप में लिखा गया है । अतएव रचना-काल के आधार पर कवि के ग्रन्थों का कोई क्रम निर्धारित नहीं हो सकता । शैली की प्रौढ़ता के विचार से भी ग्रन्थों का क्रम निर्धारित नहीं हो सकता । शैली का प्रौढ़-क्रम निश्चित करना सम्भव है परन्तु इस आधार में कोई निश्चयात्मकता नहीं हो सकती । इन कठिनाइयों के कारण इस संस्करण के ग्रन्थों का क्रम छन्दों के आधार पर रखा गया है । इसके प्रथम

1. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : 'ब्रजभाषा व्याकरण', पृ० 123, 125
2. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : 'ला लाग ब्रज', पृ० 98
3. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : 'ला लाग ब्रज', पृ० 69

पाँच ग्रन्थ दोहा-चौपाई में हैं, उसके बाद दो ग्रन्थ दोहा में, तत्पश्चात् दो दोहा रोला-टेक के मिश्रित रूप में, पुनः दो ग्रन्थ रोला छन्द में हैं । 'दशम स्कंध' को अपने सिद्धान्त के अनुसार पंचमंजरियों के बाद रखना चाहिए था, किन्तु उसके विस्तृत रूप के कारण ऐसा नहीं किया गया । अन्त में कवि-कृत कुछ फुटकर पद संकलित हैं ।

परिशिष्ट 1 में 'संदिग्ध तथा असम्पादित सामग्री', 2 में 'प्रक्षिप्त सामग्री', 3 में 'पाठान्तर', 4 में 'पदों' की प्रथम पंक्ति की 'अकारादि क्रम-सूची' तथा 5 में 'शब्दार्थ-कोष' है ।

मूल पाठ में प्रत्येक पाँचवीं पंक्ति के सामने उसकी क्रम-संख्या के अंक दिए हुए हैं । पाठान्तरों के देखने में इससे विशेष सुभीता होगा । पोथियों से प्राप्त समस्त पाठान्तरों को देने से ग्रन्थ-विस्तार बहुत बढ़ जाता, अतएव ऐसा करना सम्भव न था । मूल पाठ के स्थिर करने में जिन स्थलों पर केवल व्यक्तिगत निश्चय से काम लिया गया है उनके पाठान्तर प्रायः दिए गए हैं, क्योंकि इनके विषय में मतभेद हो सकता है । इसी प्रकार अर्थान्तर वाले पाठान्तर भी अनिवार्य रूप से संगृहीत हैं । प्रायः अशुद्ध पाठ पाठान्तरों में नहीं हैं किन्तु जहाँ मूल पाठ का अर्थ अनिश्चित अथवा अज्ञात है वहाँ शुद्ध-अशुद्ध का विचार न करके सभी प्राप्त पाठान्तर दे दिए गए हैं ।

जिस पाठ को किसी दूसरी प्रति ने बिलकुल छोड़ दिया है, उसकी सूचना '×' चिह्न द्वारा दी गई है। जिन पाठान्तरों के बाद प्रश्नसूचक चिह्न लगा हुआ है वे लिपि की गड़बड़ी के कारण निश्चित रूप से नहीं पढ़े जा सके हैं ।

नन्ददास की रचना में कुछ पंक्तियाँ समान रूप से दो ग्रन्थों में मिलती हैं जैसे 'रूपमंजरी' की पंक्ति 108, 109, 110 तथा 540, 541, 547 'रसमंजरी' में भी क्रमशः पंक्ति 58, 59, 60 तथा 42, 43, 44 पर उसी रूप में मिलती हैं । इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं । पोथियों के देखने से यही अनुमान होता है कि स्वयं कवि ने इन्हें इस रूप में रखा है । फलतः इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया ।

आधुनिक साहित्य का पाठालोचन

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने जीवन के अल्पकाल में प्रचुर साहित्य-रचना की है । पर सभी आज प्राप्य नहीं है । उन्होंने कुछ रचनाएँ अपने पत्रों में बिना नाम के भी प्रकाशित की हैं जो उनके सम्पादक होने के कारण उन्हीं की मान ली जाती हैं । कु० उषा माथुर ने उनके जीर्ण-शीर्ण पोथी-पत्रों को समेटकर उनके साहित्य का निम्नानुसार विभाजन कर उनकी प्रामाणिकता पाठानुसंधान

प्रविधि से सिद्ध करने का प्रयास किया है जो 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' (वर्ष 74, अंक 3 में प्रकाशित हुआ है।

हरिश्चन्द्र-साहित्य को उन्होंने निम्नलिखित रूपों में विभाजित किया है—

(1) हस्तलिखित रूप में,

(2) मुद्रित या प्रकाशित रूप में :

(क) पत्र-पत्रिकाओं के रूप में,

(ख) पुस्तकों के रूप में,

(ग) रचनाओं के संग्रह-ग्रन्थों के रूप में।

भारतेन्दु की हस्तलिखित सामग्री केवल 'काश्मीर-कुसुम' रचना का कुछ भाग तथा दो-एक व्यावहारिक पत्र हैं। ये पत्र खड़ीबोली तथा उर्दू में लिखे गये हैं जिनकी लिपि क्रमश: देवनागरी और फारसी है।

भारतेन्दु-कृत उक्त सभी रचनाएँ जो अनेक स्थानों से नाना रूपों में प्रकाशित हुई हैं, उनमें से कौन-सी सर्वाधिक प्रामाणिक एवं अधिकृत हैं, इस सम्बन्ध में यह ज्ञात किया जा चुका है कि भारतेन्दु को अपने जीवनकाल में ऐसा कोई विश्वासपात्र नहीं मिला जो उनकी समस्त कृतियों के प्रकाशन का भार लेता। अत: भारतेन्दु को स्वयं अपनी रचनाएँ निजी पत्रिकाओं में तथा कुछ पुस्तक रूप में प्रकाशित करनी पड़ीं। इस प्रकार अपनी रचनाओं के प्रकाशन में उनको अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। परन्तु सौभाग्य-वश जीवन के शेषांश में जब उनका स्वास्थ्य भंग हो चुका था उस समय 'क्षत्रिय पत्रिका' के सम्पादक रामदीनसिंह एक ऐसे पात्र मिले जिनको भारतेन्दु ने अपनी रचनाओं के प्रकाशन का स्वत्व दिया। रामदीनसिंह ने भारतेन्दु के जीवनकाल में उनकी अनेक कृतियाँ खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना से प्रकाशित कीं। भारतेन्दु की मृत्यु के पश्चात् भी वे इस कार्य को करते रहे। इस आधार पर खड्गविलास से प्रकाशित रचनाओं का पाठ सर्वाधिक प्रामाणिक होना चाहिए था। परन्तु खड़ी बोली के विकास-क्रम की स्वाभाविकता एवं एकरूपता की दृष्टि से तथा भारतेन्दुकालीन हस्तलेखों की भाषा के आधार पर पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाएँ सर्वाधिक प्रामाणिक कही जा सकती हैं। भारतेन्दु के जीवनकाल तक विभिन्न प्रेसों से प्रकाशित होने वाली रचनाएँ भी हस्तलेखों की भाषा से अनेक अंशों में साम्य रखती हैं। ऐसी अवस्था में 'खड्गविलास प्रेस' से प्रकाशित रचनाएँ तत्कालीन होते हुए भी भाषा की दृष्टि से काफी समय पश्चात् की हैं। यही स्थिति नवलकिशोर प्रेस तथा नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित संस्करणों के सम्बन्ध में भी है, जिनमें भाषागत पर्याप्त संशोधन किए जाने के कारण वर्तनी एवं व्याकरणगत भिन्नता पर्याप्त अनुपात में आ गई है। इस कारण ये संस्करण वर्तमान साहित्यिक खड़ीबोली

के अधिक निकट आ गए हैं। इस प्रकार का संशोधन सम्पादक की इच्छानुसार किया गया भी हो सकता है और प्रेस की असावधानी भी हो सकती है। इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। भाषा के स्वाभाविक स्वरूप की दृष्टि से संग्रह-ग्रन्थों में से 'भारतेन्दु के निबन्ध' नामक संग्रह एक सीमा तक मूल पाठ के अधिक निकट है। सभा से प्रकाशित 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' वर्तमान खड़ीबोली का प्रतिनिधित्व करती है।

भारतेन्दु तथा उनके समकालीन हस्तलेखों-पुस्तकों के प्राचीनतम संस्करणों तथा आधुनिक प्रतियों के मध्य प्राप्त होने वाला पाठान्तर तथा अन्य प्रकार का अन्तर निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है। यहाँ 'क' प्राचीनतम संस्करणों तथा पत्रिकाओं के लिए, 'ख' खड्गविलास प्रेस के संस्करण के लिए तथा 'ग' आधुनिक प्रतियों के लिए प्रयुक्त किया गया है।

1. 'क' में जहाँ विशुद्ध स्वर का प्रयोग किया गया है वहाँ 'ख' 'ग' प्रतियों में श्रुतियुक्त स्वर प्रयुक्त हैं। यथा—

'क'	'ख'	'ग'
ऋषिओं	ऋषियों	ऋषियों
(वै० मा०, पृष्ठ 8)	(वै० भा०, ख० वि०, पृ० 7)	(वै० भा०, भा० ग्रं० 3, पृ० 792)
लीजिए		लीजिये
(प्र० सवै०, मै०,खं० 1, नं० 2, पृ० 26)		(प्र० सवै० भा० ग्रं० 3, पृ० 832)

2. अर्ध अनुस्वार के द्योतक चिह्न का प्रयोग हस्तलेखों तथा 'क' प्रतियों में नहीं मिलता। यदि कहीं किया भी गया है तो वह अत्यन्त सीमित है। 'ग' प्रति में ऐसे सभी स्थानों पर इसका प्रयोग-बाहुल्य है। यथा—

'क'	'ग'
हंसी खेल	हँसी खेल
(जी०, नवो० ह० चं०, खं० 11, सं० 3, पृ० 21)	(वि० प्रे०, भा० ग्रं० 2, पृ० 551)
कहां	कहाँ
(उ० स्या०, ह० चं०, खं० 1, सं०, पृ० 3)	(उ० स्या०, भा० ग्रं० 2, पृ० 678)
नहीं	नहीँ
(वि० सु०, पृ० 8)	(वि० सु०, भा० ग्रं० 2, पृ० 5)

3. पंचम वर्णों का प्रयोग 'क' और 'ख' में अनुस्वार के स्थान पर किया गया है। कहीं-कहीं अनुस्वार का प्रयोग किया गया है। ऐसी स्थिति में वर्तनी-भेद भी आ गया है। 'ग' प्रति में अधिकांश स्थानों पर पंचम वर्ण का शतप्रति-

शत स्थान अनुस्वार ने ले लिया है। कहीं-कहीं अपवाद-रूप में अनुस्वार का प्रयोग भी किया गया है।

'क'	'ख'	'ग'
		अंगीकार
(श्री व० स० ह० मो० चं० वि० खं० 7, सं० 12)	(श्री व० स०, ख० वि०, पृ० 11)	(श्री व० स०, भा० ग्रं० 3, पृ० 578)

4. हस्तलेख एवं 'क' प्रतियों में स्थान-स्थान पर अकारण अनुनासिकता आ गई है जो निम्नलिखित कारणों से आयी हुई प्रतीत होती है—

(1) 'न' और 'म' के संयोग या संपर्क से अकारण अनुनासिकता का आगम।

(2) 'न्ह' और 'म्ह' में से 'न' ओर 'म' के लोप से अनुस्वार का बच रहना। यह पाली, प्राकृत काल में भी मिलता है।

(3) कहीं-कहीं क्षेत्रीय प्रभाव से अनुनासिकता का आगम स्वीकार किया जा सकता है।

'क' प्रतियों में जहाँ अकारण अनुनासिकता की प्रवृत्ति मिलती है वहाँ 'ग' प्रति में निरनुनासिक रूप प्रयुक्त किए गए हैं। यथा—

'क'	'ग'
(उ०स्या०, ह० च०, खं० 1, सं० 9, पं 4)	(उ० स्या० भा० ग्रं० 2, पृ० 678)
बहंकाया	बहकाया
(कु०श०, ह०खं० 5, सं० 1, पृ० 8)	(कु०श०, भा०ग्रं० 2, पृ० 768)
मांलिक	मालिक
(भा०उ०, व०भा०, पृ० 9)	(भा०उ०, भा०ग्रं० 3, पृ० 897)
भींगते	भीगते
(वै०या०, ह०मो०चं०, खं० 7, सं० 4, पृ० 25)	(वैसा०, भा०ग्रं० 3, पृ० 959)
मेंवा	मेवा
(उ०, पृ० 4)	(उ०, भा०ग्रं० 3, पृ० 758)

5. 'क' प्रतियों में कुछ शब्दों की अन्तिम 'ह' ध्वनि के स्थान पर 'ए' प्रयुक्त किया गया है। यह प्रवृत्ति लल्लूलाल-कृत 'प्रेमसागर' में भी प्राप्त होती है। 'ग' प्रति में इसके स्थान पर सर्वत्र 'ह' का ही प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ—

'क'	'ख'	'ग'
(श्री व०स०, ह०मो० चं०वि०, खं० 7, सं० 12, पृ० 15)	(श्री व०स०, ख०वि०, पृ० 7)	(श्री व०स०, भा० ग्रं० 3, पृ० 580)

6. हस्तलेख तथा 'क', 'ख' प्रतियों में भविष्यत्काल के लिए 'ऐ' विभक्ति-प्रत्यय का प्रयोग-बाहुल्य है जो क्षेत्रीय प्रभाव से आया प्रतीत होता है। परन्तु 'ग' प्रति में सर्वत्र 'ए' विभक्ति-प्रत्यय प्रयुक्त किया गया है। यथा—

'क'	'ख'	'ग'
करै (कु०श०ह०चं०, खं० 5, सं० 1, पृ० 7)	करै (कु०श०, ख०वि० पृ०3)	करे (कु०श०भा०ग्रं० 3, पृ० 768)

7. 'क' प्रतियों में वर्तमानकालिक कृदंतीय प्रत्यय को शब्द के अन्तिम व्यंजन के साथ संयुक्त करके लिखने की प्रवृत्ति मिलती है (ऐसा संभवतः तत्कालीन उच्चारण-प्रवृत्ति को बनाये रखने के कारण किया गया हो)। 'ग' प्रति में यह प्रवृत्ति एक ही स्थान पर दृष्टिगत हुई। उदाहरण—

'क'	'ग'
सक्ता (ज०वल०, क०व०सु०, सं० 3 नं० 24, पृ० 186	(ज०वल०, क०व०हु०, पृ० 950)
जोत्ते (भा०उ०, ब०भा०, पृ० 9)	जोतते (भा०उ०, भा०ग्रं० 3, पृ० 897)

8. 'क' प्रतियों में यत्र-तत्र परसर्ग जहाँ व्यंजनान्त शब्दों के अन्त में प्रयुक्त हुए हैं वहाँ शब्द के साथ मिलकर आए हैं। यह प्रवृत्ति 'ग' प्रति में समाप्त कर दी गई है। यथा—

'क'	'ग'
इस्में (चंद्रा० ह०चं०, खं० 4, सं० 1-3, पृ० 22)	इसमें (चंद्रा०, भा०ग्रं० 1, पृ० 423)
जिस्पर (हरि०, क०व०सु०, खं० 3, नं० 4, पृ० 36)	जिसपर (हरि०, भा०ग्रं० 3, पृ० 944)

9. संयुक्त व्यंजनों की संयुक्तता को स्वरभक्ति के द्वारा समाप्त करने की प्रवृत्ति 'क' प्रतियों में यत्र-तत्र मिलती है। 'ग' प्रति में ऐसा नहीं मिलता।

'क'	'ग'
कुरसियाँ (दि०द०द०, ह०नै० जनवरी 1877, 3-15)	कुर्सियाँ (दि०द०द०, भा०ग्रं०, 3, पृ० 188)

10. शब्दों की उच्चारण-प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए 'क' प्रतियों में जो ध्वनि-परिवर्तन हो गया है वह 'ग' प्रति में नहीं मिलता। यथा—

'क'	'ग'
माड़वार (अ० उ०, पृ० 12)	मारवाड़ (अ० उ०, भा० ग्रं० 3, पृ० 9)
तुमारी (अ० उ०, पृ० 10)	तुम्हारी (अ० उ०, भा० ग्रं० 3, पृ० 9)

11. 'क' प्रतियों में कहीं-कहीं तालव्य 'श' के स्थान पर 'दन्त्य' 'स' का प्रयोग किया गया है जो कि प्राचीनता का अवशेष है, परन्तु 'ख' और 'ग' प्रतियों में इन स्थानों पर 'श' प्रयुक्त है। यथा—

'क'	'ख'	'ग'
अंस (इशु० ईश०, ह०च०, खं० 6, सं० 7)	अंश (इशु० ईश०, खं० वि०, पृ० 13)	अंश (इशु० ईश०, भा० ग्रं० 3, पृ० 785)

12. हस्तलेखों तथा 'क' प्रति में 'म', 'य' और 'व' के द्वित्व की प्रवृत्ति प्रधान है। 'ख' प्रतियों में यह कहीं-कहीं मिल जाती है परन्तु 'ग' में यह प्रवृत्ति कठिनता से शायद ही कहीं मिले। यथा—

'क'	'ख'	'ग'
आर्य्य (वै० भा०, पृ० 7)	आर्य्य (वै० भा०, खं० वि०, पृ० 6)	आर्य (वै० भा०, भा० ग्रं० 3, पृ० 792)

पर्व्वत (हरि०क०व०सु०खं० 3, नं० 4, पृ० 36)	पर्वत (हरि०भा०ग्रं० 3, पृ० 943)

13. हस्तलेखों तथा 'क' और 'ख' प्रतियों में ब्रजभाषा व खड़ीबोली के कुछ शब्दों में 'फ', 'य' और 'ब' बिन्दु-युक्त हैं। 'ग' प्रतियों में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती। हस्तलेखों में 'अ' भी बिन्दुयुक्त किया गया है। देवनागरी की यह विशेषता लल्लूलाल-कृत प्रेमसागर आदि ग्रन्थों में भी अवलोकनीय है। भारतेन्दु की रचनाओं के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

'क'	'ख'	'ग'
फ़िर (कु० श०, ह० चं० खं०, सं० 1, पृ० 8)	फ़िर (कु० श०, खं० वि०, पृ० 4)	फिर (कु० श०, भा० ग्रं० 3, पृ० 768)

वह	वह
(उ० स्या०, ह० चं०, खं० 1, सं० 9, पृ० 4)	(उ० स्या० भा० ग्रं० 2, पृ० 678)
सर्बस्व	सर्वस्व
(भारतेन्दु का हस्तलिखित पत्र)	(भारतेन्दु का पत्र, भा० ग्रं० 3, पृ० 969)

यं=हय् भया (भारतेन्दुकालीन हस्तलेख, ब्रजरत्नदासजी के संग्रह से प्राप्त)

14. 'क' प्रतियों में ' ' के लिए '-', चिह्न का प्रयोग बहुलता से मिलता है। 'ख' प्रतियों में यह कहीं-कहीं मिलता है परन्तु 'ग' प्रति में सर्वत्र 'ग्र' का प्रयोग किया गया है।

'क'	'ख'	'ग'
संग्रह	संग्रह	संग्रह
(दु० अ० ओ०, नवो० ह० च०, खं० 11 सं० 1, पृ० 1)	(पु० ख० वि० मुखपृष्ठ)	(पु०, अं० औ०, भा० ग्रं० 3, पृ० 117)

15. 'ग' प्रति में कहीं-कहीं दंद्वसमाहार शब्दों में एक का लोप कर दिया गया है। उराहरणार्थ—

'क'	'ग'
सजी सजीली पल्टनें	सजी पलटने
(दि० द० द०, ह० मै०, जनवरी 1877, पृ० 16)	(दि० द० द० भा० ग्रं० 3, पृ० 188)

16. 'क' प्रतियों में पुनरक्ति-प्रयोगों में संख्या '2' का प्रयोग सम्भवत: स्थान के बचाव की दृष्टि से किया गया है। यह तत्कालीन सभी रचनाओं में बहुलता से मिल रहा है। कहीं-कहीं शब्द की पुनरुक्ति भी की गई है। 'ग' प्रति में संख्या लिखने की प्रवृत्ति नहीं मिलती।

17. हस्तलेखों तथा 'क' प्रतियों में अँग्रेज़ी भाषा की ध्वनियों के लिए आधुनिक काल में विकसित 'आ' चिह्न का प्रयोग नहीं मिलता। इसका प्रयोग सन् 1890 ई० के पश्चात् की रचनाओं में किया गया मिलता है।

'क'	'ग'
गार्ड आव आनर	गार्ड आव आनर
(दि०द०, ह०मै०, जनवरी 1877, पृ० 16)	(दि०द०द०, भा०ग्रं० 3, पृ० 188)

18. हस्तलेखों के सामने 'क' प्रतियों में पूर्ण विराम के लिए बिन्दु के प्रयोग की प्रवृत्ति प्रधान है। यह प्रवृत्ति लल्लूलाल तथा सदल मिश्र के खड़ी-बोली के ग्रन्थों में भी मिलती है। 'ख' तथा 'ग' प्रति में इसके स्थान पर खड़ी पाई सर्वत्र युक्त है। 'क' प्रतियों में दो खड़ी पाइयों का प्रयोग अनुच्छेद के अन्त में कहीं-कहीं किया गया है।

19. हस्तलेखों तथा 'क' प्रतियों में पूर्ण पंक्ति के समाप्त होने पर यदि शब्द अपूर्ण रह गया है तो आधा अंश द्वितीय पंक्ति के आरम्भ में बिना किसी संकेत-चिह्न के लिखा गया है। यह प्रवृत्ति 'ग' प्रतियों में नहीं मिलती। उदाहरणार्थ—

······ ··जाए (प्रथम पंक्ति का अन्त)
गा··········।। (द्वितीय पंक्ति का आरम्भ)

भाषागत इस तुलना से स्पष्ट होता है कि खड़ीबोली के विकासक्रम की दृष्टि से तथा भारतेन्दुकालीन हस्तलेखों से साम्य रखने के कारण 'क' प्रतियाँ सर्वाधिक प्रामाणिक हैं।

22

कतिपय अन्य विषयों की शोध-प्रविधियाँ

प्रत्येक विषय की अपनी कुछ विशिष्ट शोध-प्रविधि होती है। जब किसी लेखक द्वारा स्वहस्तलिखित प्रति अप्राप्य हो जाती है और उससे नकल की गई प्रतियाँ ही मिलती हैं तब कौन-सी प्रति मूल प्रति की ठीक-ठीक प्रतिलिपि हो सकती है, इसे निर्धारित करने की प्रविधि किसी ग्रन्थ की शास्त्रीय विवेचना की प्रविधि से भिन्न होती है। किसी बोली या भाषा के अन्वेषण की अपनी स्वतन्त्र प्रविधि होती है। भाषा-कोश को तैयार करने का भिन्न शिल्प होता है। साहित्य, इतिहास, समाजशास्त्र, भूगोल, दर्शन आदि मानविकीय विषयों के शोध के तन्त्र एक नहीं होते, परन्तु विज्ञान के विषयों की शोध-प्रक्रिया में विशेष अन्तर नहीं होता, क्योंकि उसमें वस्तुनिष्ठता प्रधान होती है। मानविकी-विषय केवल वस्तुनिष्ठता से शोधित नहीं होते, उनमें आत्मपरकता का भी अंश सम्मिलित रह सकता है। शोधकर्ता अपनी पूर्वधारणा के अनुरूप सामग्री एकत्र कर अभीष्ट निष्कर्ष सिद्ध कर लेता है। परिणामत: एक ही विषय के विभिन्न निष्कर्ष प्रतिपादित हो सकते हैं। तुलसी को एक शोधार्थी अद्वैतवादी और

दूसरा विशिष्टाद्वैतवादी अपने-अपने तर्कों से सिद्ध कर सकता है। परन्तु विज्ञान के विषय समान परिस्थितियों में एक ही परिणाम प्रस्तुत करते हैं क्योंकि वे अनिवार्यतः भौतिक प्रयोगशाला में परीक्षित किए जाते हैं। मानविकी के जो विषय 'विज्ञान' बन गए हैं उनके निष्कर्ष भी प्रयोगशाला में परीक्षित होते हैं। यहाँ हम कुछ विशिष्ट विषयों की शोध-प्रविधि का संकेत दे रहे हैं।

लोक-साहित्य के अध्ययन की प्रविधि

लोक-साहित्य पर अध्ययन घर या पुस्तकालय में बैठकर नहीं किया जा सकता। इसके लिए ग्राम, खेत, खलिहान, नदी, बावड़ी, कुआँ आदि स्थानों पर जाना पड़ता है। यह क्षेत्रीय कार्य (फ़ील्ड-वर्क) कहलाता है। अनुसंधाता को अपनी भाषा के लोक-साहित्य पर शोध अधिक सुकर होता है क्योंकि उसके लिए वह स्वयं भी 'सूचक' होता है। उसका पारिवारिक वातावरण उसके अनुकूल होता है। इससे उसे सामग्री जुटाने में सहायता मिल जाती है। मान लीजिए, आप बुन्देली लोकगीतों पर शोध-कार्य करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम आप विषय की रूप-रेखा तैयार करेंगे। फिर आपको बुन्देली भाषा-क्षेत्र को निर्धारित करने के लिए भाषा-विज्ञान की पुस्तकों, भाषा-सर्वे-रिपोर्टों, जनगणना-रिपोर्टों आदि के आधार पर एक नक्शा तैयार करना होगा और कार्य को प्रारंभ करने के लिए ऐसे स्थान को चुनना पड़ेगा जो बुन्देली का केन्द्र समझा जाता है। वहाँ जाकर आपको वृद्ध स्त्री-पुरुषों के सम्पर्क में आना होगा। यदि वहाँ आपके कोई परिचित या सम्बन्धी हों तो उनकी सहायता लेनी चाहिए। ग्राम में अपरिचित व्यक्ति को खेत-खलिहान में आते-जाते देखकर लोग सन्देह की दृष्टि से देख सकते हैं और कभी आक्रमण भी कर सकते हैं। ग्रामवासियों में विश्वास उत्पन्न किए बिना उनसे आवश्यक समग्री प्राप्त नहीं की जा सकती। जब आप उनके गीत टेप में भरने लगें तो उन्हें समझा दीजिए कि इससे उन्हें कोई खतरा नहीं होगा। प्रत्युत इससे तो उनकी 'वाणी' अमर हो जायगी। उन्हें टेप बजाकर सुना भी दीजिए।

कार्य के लिए तो आप एक केन्द्रीय ग्राम अवश्य चुनें, पर गीतों की प्रामाणिकता या विभेदों को जानने के लिए, बीच-बीच में बुन्देली भाषा-क्षेत्र के अन्य ग्रामों में भी जाकर उन्हीं गीतों को सुनिए और उसी प्रसंग पर यदि अन्य गीत भी प्रचलित हों तो उन्हें भी 'टेप' कर लीजिए। हिन्दी में पं० रामनरेश त्रिपाठी ने उत्तरप्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर ग्राम-गीतों के संग्रह करने में बड़ा श्रम उठाया था। वे अनजाने ही खेतों की मेड़ों पर उन्हें सुनते और लिखते जाते थे क्योंकि उस समय 'टेप' का चलन सामान्य नहीं हो पाया था। उन्हें अपनी स्मरण-शक्ति का भी सहारा लेना पड़ता था। अब 'टेप' के द्वारा

सामग्री-चयन का कार्य सुलभ हो गया है। दो भाषाओं के सन्धि-क्षेत्रों में भी जाने की आवश्यकता होती है क्योंकि वहाँ गीतों की भाषा-भाव में अन्तर आने की सम्भावना रहती है। गीतों का संग्रह हो जाने पर उन्हें विषय या प्रसंग के क्रम से वर्गीकृत कर लेना चाहिए और उनका साहित्यिक मूल्यांकन करना चाहिए। यदि सह-बोलियों; जैसे कन्नौजी, ब्रज आदि से तुलना अभीष्ट हो तो वह भी की जा सकती है। परन्तु यह आपकी रूप-रेखा में निर्दिष्ट विषय-सीमा पर अवलम्बित होगा।

भाषा का अध्ययन

किसी भाषा या बोली का अध्ययन या तो ऐतिहासिक रीति से किया जाता है या वर्णनात्मक रीति से। ऐतिहासिक रीति से अध्ययन करने के लिए आपको प्राचीन साहित्य का अध्ययन अपेक्षित है। यदि आप खड़ीबोली पर ऐतिहासिक पद्धति से शोध करना चाहते हैं तो आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि यह बोली किस प्रकार की है। आप जानते हैं इसका आर्य-परिवार है। अतः आपको यह खोजना होगा कि यह किस अपभ्रंश से विकसित हुई है। आपको अप-भ्रंश-साहित्य जहाँ भी उपलब्ध हो उसे खोजकर पढ़ना होगा और देखना होगा कि खड़ीबोली की प्रवृत्ति उसमें किस अंश में विद्यमान है। क्योंकि किसी भाषा के परिवार को जानने के लिए शाब्दिक ऐक्य ही पर्याप्त नहीं होता, उनके व्याकरणिक ढाँचे में भी एकता देखनी पड़ती है, (विभक्ति, क्रिया-रूपों आदि की परीक्षा आवश्यक होती है) कोई हिन्दी शब्द-रूप विकास-क्रम से संस्कृत-पालि-प्राकृत-अपभ्रंश से होते हुए वर्तमान भाषा-रूप को कैसे प्राप्त हो गया, इसका निर्धारण करना होगा। एक ही भाषा के क्षेत्र की भिन्नता से ध्वनि और अर्थ-तत्त्व भी परिवर्तित हो जाते हैं। लिंग-भेद भी हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, मराठी के सम्बन्ध में पहले यह धारणा थी कि इसका प्राकृत से सीधा सम्बन्ध है, बाद में शोध से ज्ञात हुआ कि यह महाराष्ट्री अपभ्रंश से विकसित हुई है। हिन्दी शौरसेनी का विकसित रूप है और महाराष्ट्री शौरसेनी का ही पश्च रूप है। प्राचीन साहित्य के अध्ययन से ये तथ्य प्रकाश में आए हैं।

भाषा या बोली का **वर्णनात्मक अध्ययन** क्षेत्रीय कार्य-पद्धति से सम्पन्न होता है। जिस भाषा का शोध करना हो उसके केन्द्र में जाकर रहना आवश्यक होगा। बोलियाँ संस्कारी भाषाओं के सम्पर्क में आ जाने के कारण अपना मूल रूप खोती जा रही हैं। अतः किसी बोली के अध्ययन के लिए शहर से दूर का क्षेत्र चुनना चाहिए, साथ में ऐसे सूचक को लेना चाहिए जो आपकी तथा अनुसंधेय बोली दोनों का ज्ञाता हो। सूचक दुभाषिये के रूप में कार्य करेगा। आपको नागर-वातावरण से दूर के ग्राम में जाकर पहले तो वहाँ व्यक्तियों में मैत्री-

भाव उत्पन्न करना होगा जिससे वे आपको संदेहास्पद व्यक्ति न समझें। व्यक्तियों के बीच बैठकर उनसे कोई कहानी सुनिए जो 'टेप' में रिकार्ड होती जाय। आप अपनी भी कोई ऐसी कहानी साथ में रखें जिसमें पारिवारिक जीवन-सम्बन्धी शब्द तथा व्याकरण के रूप समाविष्ट हों। जब आप सूचक के द्वारा 'बोली'-भाषी की कहानी रिकार्ड कर चुकें तब उससे अपनी कहानी का बोली-रूपान्तर कराइए और उसे भी टेप कर लीजिए। टेप को बार-बार बजाकर आप बोली की ध्वनियों को पहचानकर उसकी वर्णमाला (फोनीम) तैयार कर व्याकरण का ढाँचा भी तैयार कर लेंगे।

ग्रियर्सन ने भाषा-सर्वे का जो परिणाम अपनी कई जिल्दों में प्रकाशित किया है, वह प्रत्यक्ष सर्वे-पद्धति पर आश्रित नहीं है। उन्होंने बाइबिल की एक कहानी चुनकर जिले के कर्मचारियों को भेजकर उसका बोली में रूपान्तर करवाकर उस पर उसका पारिवारिक तथा व्याकरणिक रूप प्रस्तुत किया है। इस कार्य में शिक्षित ही नहीं, अर्धशिक्षित, गाँव के पटवारी, मुकदमों आदि से भी सहायता ली गई। उन्होंने सामग्री-संग्रह में पूरी सावधानी बरती हो, यह नहीं कहा जा सकता। इसी से उनके पारिवारिक वर्गीकरण तथा अन्य कई निष्कर्षों पर विद्वानों ने तीव्र मतभेद भी प्रकट किया है। ग्रियर्सन के काल में भाषा के अध्ययन के वैज्ञानिक उपकरण भी उपलब्ध नहीं थे। अतः उसमें यत्र-तत्र दोषों का आ जाना स्वाभाविक था। अब भारतीय भाषा-विज्ञानी यह अनुभव करने लगे हैं कि देश की समस्त भाषाओं का वैज्ञानिक रीति से पुनः सर्वेक्षण करना आवश्यक है। शिक्षा के प्रसार से बोलियाँ या तो परिनिष्ठित भाषा में समाहित होती जा रही हैं या इतनी अधिक प्रभावित हो रही हैं कि उनका शुद्ध रूप खोजना कठिन हो रहा है। स्वर्गीय डॉ० विश्वनाथप्रसाद ने बिहार के मानभूमि-भाग में प्रचलित बोलियों का 'सर्वे' कराया था, जिससे बहुत-सी गलत धारणाओं का निराकरण हुआ। हिन्दी में डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने आगरे जिले की 'बोली' पर 'सर्वे-पद्धति' से कार्य किया है। यदि प्रत्येक क्षेत्र की भाषा-बोली का इसी प्रकार सर्वे किया जाय तो समस्त हिन्दी-प्रदेशों की भाषाओं का 'सर्वे' हो सकता है। अहिन्दी-क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में भी यही पद्धति अपनायी जा सकती है पर 'सर्वे' शुद्ध ज्ञान की दृष्टि से किया जाना चाहिए, उसमें स्वभाषा-प्रीति या प्रादेशिक राजनीति का समावेश नहीं होना चाहिए।

वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान की अध्ययन-प्रविधि का पाणिनि और पंतजलि ने आदर्श उपस्थित किया है। स्विट्जरलैंड के भाषाविज्ञानी फर्डिनांद द सोसुर ने भाषा के सम्बन्ध में मौलिक विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि भाषा के दो रूप होते हैं। एक तो वह जिसको वस्तुतः भाषा नहीं, वाक या भाषण-

मात्र कहना चाहिए। उसके लिए फ्रेंच भाषा में 'ल पेरोल' कहा जाता है। वह व्यक्तिपरक तथा प्रसंगपरक है। प्रत्येक व्यक्ति के भाषागत व्यवहार में बहुत भेद हैं। एक ही व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रसंगों में, भिन्न-भिन्न क्षणों में, भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्वनियों, शब्दों और अर्थों का प्रयोग करता है। प्रत्येक बार जब कोई व्यक्ति बोलता है तब वह नई भाषाई घटनाओं का सृजन करता है। किसी व्यक्ति ने आज जिस ध्वनि का उच्चारण किया, आज जिस शब्द के द्वारा जिस अर्थ का बोध किया, वही कल ठीक-ठीक वैसा नहीं कर सकता। उसकी कल की भाषा-शैली आज की भाषा-शैली से भिन्न होगी। एक ही व्यक्ति की भाषा में जहाँ इतने विभेद संभव हैं वहाँ जब अनेक व्यक्तियों की भाषा के सम्बन्ध की ओर ध्यान दिया जाता है तब सहज ही हम उसके गतिशील रूप का अनुमान लगा सकते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण होने वाले भेद तत्काल भले ही न प्रकट हों, परन्तु दो-तीन पीढ़ियों में अथवा कुछ कोसों की दूरी में उनके अन्तर स्पष्ट हो जाते हैं। डॉ० विश्वनाथप्रसाद ने इसी भाषा-विज्ञानी के शब्दों में भाषा के दूसरे रूप का नाम 'एतात द लाग' दिया है जिसका अर्थ है किसी भाषा की निश्चित संख्या। यह वह भाषा है जो व्यक्ति या समाज-निरपेक्ष होती है। जिसे हम परिनिष्ठित भाषा कह सकते हैं। यह जल्दी परिवर्तित नहीं होती, पर बहुत वर्ष या सदियों के व्यतीत हो जाने पर उसके रूप भी परिवर्तित हो जाते हैं। अतः भाषा-विज्ञान के अध्येता को समय-समय पर भाषा की प्रवृत्तियों के विकास का पर्यालोचन करते रहना चाहिए। उसके लिए आवश्यक अभिलेख-प्रेषण, क्षेत्र-सर्वे आदि प्रविधियों को प्रयोग में लाना चाहिए। विज्ञान शोध के नये-नये आयाम खोलता जा रहा है और उसकी प्रविधियों में भी नये-नये प्रयोग सामने आ रहे हैं। इसलिए जिस प्रविधि से अनुसन्धेय विषय प्रतिपादित किया जाय, उसी का अवलम्बन लेना चाहिए।

लोकभाषा कोश-निर्माण की प्रविधि

कोश-निर्माण का कार्य भाषा-विज्ञान का अंग है। लोक-साहित्य का अध्ययन 'लोकभाषा' के परिचय के अभाव में सम्भव नहीं है। भाषा के अंगों में 'शब्द' की प्रधानता है। एक ही शब्द के दो-तीन या अधिक पर्याय भी हो सकते हैं। कोशकार को शब्द-संग्रह का कार्य ग्राम के प्रत्येक जीवन से सम्बद्ध व्यक्तियों के सहयोग से करना चाहिए। सूचक असावधानी से शब्द के गलत अर्थ भी बतला सकता है। अतः जब तक दस-बारह व्यक्तियों से उसका समर्थन प्राप्त न हो जाय तब तक उसे संग्रह में नहीं रखना चाहिए। एक शब्द के एकाधिक पर्याय हो सकते हैं और प्रत्येक का किंचित् अर्थ-वैविध्य भी हो सकता है। उदाहरण के लिए 'पानी' जल का पर्याय है; परन्तु 'जल' में जहाँ पावित्र्य का

भाव है वहाँ पानी में ऐसा कुछ नहीं है। हम 'गंगा-जल' कहते हैं, गंगा-पानी नहीं। पानी नल का होता है, कुएँ का, तालाब आदि का। कोशकार को शब्द-संग्रह में सतर्कता बरतनी चाहिए और अपनी स्मरणशक्ति का भलीभाँति उपयोग करना चाहिए। सूचक किस प्रसंग में शब्द का प्रयोग कर रहा है, इसे स्मरण रखकर उसके पर्यायों में अर्थ-भेद पर ध्यान देना चाहिए।

पर्याय का अर्थ समानार्थी होता है जिसे अंग्रेजी में क्रमश: 'सेनोनीम' (Synonym) और 'इक्वीवेलंट' (Equivalent) कहते हैं। परन्तु रामचन्द्र वर्मा का कहना है कि कोई शब्द किसी दूसरे शब्द का पर्याय या समानार्थी नहीं होता। प्रत्येक शब्द का एक स्वतन्त्र अर्थ होता है जैसा कि हमने ऊपर पानी और जल का उदाहरण देकर सिद्ध किया है।

"एक-दूसरे की जगह प्रयुक्त हो सकने के विचार से ही यह भी कहा जा सकता है कि एक भाषा के शब्द आपस में ही एक-दूसरे के पर्याय होते हैं, किसी दूसरी भाषा के शब्द के पर्याय नहीं हो सकते। वारिधि, समुद्र और सागर एक-दूसरे के पर्याय तो माने जा सकते हैं, पर अरबी बहर या अंग्रेजी ओशन के पर्याय नहीं, बल्कि समानार्थी होंगे। प्राय: एक भाषा के वाचक शब्द दूसरी भाषा में होते ही हैं।"[1] कोश-निर्माण में शब्द-रूप, उच्चारण, व्याकरणिक रूप (संज्ञा, विशेषण, क्रिया आदि), व्युत्पत्ति (हिन्दी, अंग्रेजी, अरबी, फारसी आदि का) निर्देशक अर्थ के (एक से अधिक) उदाहरण (किसी प्रसिद्ध ग्रन्थ से) दिये जाते हैं। यदि शब्द ठेठ बोली का है और साहित्य में प्रयुक्त नहीं हुआ है तो उदाहरण नहीं दिया जा सकता। यदि शब्द किसी मुहावरे में प्रयुक्त हुआ है तो उसे दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए, सुहागा शब्द का विवरण हम डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन' की 'ब्रजभाषा-शब्दावली' से लेते हैं—सुहागा रस सौभाग्यक—सोहयाज—सोहागा—जोत की भूमि को सौभाग्य या सौन्दर्य देने वाला। जुते हुए खेत को चौरस करने के लिए उसमें लकड़ी का जो एक चौड़ा और भारी तख्ता-सा फेरा जाता है उसे सुहागा कहते हैं।—छोटा सुहागा सुहगिया या पटेलिया कहलाता है। सुहागा में प्राय: चार बैल और सुहगिया में दो बैल जोते जाते हैं। सुहागे के सम्बन्ध में पहेलियाँ प्रचलित हैं—

"धस पायँ धस पायँ।
तीन मूँड़ दस पायँ।
बारह नैना बीस पग, और छयानवै दन्त।
हयाँ है मै इतने गए, खोजु न पायौ कन्त।।"

शब्द के साथ चित्र भी दिया गया है, कई शब्दों के साथ सम्बद्ध लोकोक्तियाँ

---

1. हिन्दी-कोश, रचना, प्रकार और रूप, पृष्ठ 52

भी दी गई हैं, क्षेत्रीय बोली-कोश में यह भी निर्दिष्ट कर देना होता है कि इसी अर्थ में अमुक स्थानपर अमुक शब्द बोला जाता है। हिन्दी में जनपदीय बोलियों के एकाधिक भेद हैं, कई बोलियों में समानार्थी शब्द प्रचलित हैं। प्रमुख बोली की उपबोलियाँ भी होती हैं। यदि शोधार्थी इन बोलियों-उपबोलियों का सर्वेक्षण कर उनके कोश तैयार कर सकें तो जनपदीय संस्कृति की रक्षा हो सकेगी।

हिन्दी बोली-कोश का मुख्य आधार-कोश तो ग्रियर्सन का 'पीजेण्ट लाइफ ऑव बिहार' है। इसमें भोजपुरी, मगही तथा मैथिली बोलियों के ग्राम-जीवन-सम्बन्धी शब्दों का सग्रह है। यह तीनों बोलियों के शब्दों के तुलनात्मक अर्थों को प्रस्तुत करता है। ग्रियर्सन के पूर्व भी लोकभाषा-कोश तैयार किए जा चुके थे। कार्नेगी, डंकन फर्ब्स, गिलक्राइस्ट, विलियम क्रुक आदि पाश्चात्यों के बोली-कोश अकारादि अथवा विषयक्रम से, व्यवसायक्रम से नागरी अथवा फ़ारसी लिपि में प्रकाशित हो चुके थे।

अँग्रेजों द्वारा कई कोश उनके प्रशासनिक कार्यों में सुविधा जुटाने के निमित्त निर्मित किए गए थे। फैलन का 'ए न्यू हिन्दुस्तानी इंग्लिश-डिक्शनरी विद इलस्ट्रेशन फ्राम हिन्दुस्तानी लिटरेचर एण्ड फोक लोर' का लोकभाषा-कोशों में विशेष स्थान है। यह सन् 1879 में प्रकाशित हुआ था। यद्यपि यह किसी एक विशिष्ट बोली का शब्द-कोश नहीं है फिर भी इसमें उत्तर भारत की बोलियों के लोक-जीवन सम्बन्धी शब्दों का वर्णमाला-क्रम से चयन लोकवार्ता-सहित किया गया है। प्यारेलाल गर्ग की कृषि-शब्दावली सन् 1943 में प्रकाशित हुई थी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डॉ० हरिहरप्रसाद गुप्त का आजमगढ़ जिले के फूलपुर तहसील के अहिरौला परगना के जन-जीवन से सम्बद्ध कोष भी 'पी-एच० डी०' उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया था। डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन' का ब्रजभाषा की 'कृषक जीवन-सम्बन्धी शब्दावली' (अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के आधार पर) दो खण्डों में शोध-उपाधि के लिए तैयार की गयी थी। यह कोश वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक पद्धति पर तैयार किया गया है। शब्दों की व्युत्पत्ति भी दी गई है। चित्र देकर कोश को अधिक ग्राह्य बनाया गया है। कई शब्दों की व्युत्पत्ति देने से हमें भाषिक विकास की परम्परा से भी परिचय हो जाता है। बोली-कोश में शब्दों के दो रूप मिलते हैं: एक तो वे जो सर्वदेशीय होते हैं; दूसरे वे जो स्थानीय होते हैं। अत: कोशों में शब्दों के विवरण में यदि इस दिशा का भी संकेत कर दिया जाय तो वह और अधिक उपयोगी बन सकता है। छत्तीसगढ़ अंचल का बोली-कोश डॉ० कान्तिकुमार ने 'पी-एच० डी०' उपाधि के लिए सश्रम प्रस्तुत किया है। उसमें छत्तीसगढ़ी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत कर दिया गया है।

बोली शब्द-कोश के निर्माताओं को अपने पूर्ववर्ती विभिन्न भाषा-बोली-कोशों का भी अध्ययन कर लेना चाहिए। रामचन्द्र वर्मा की कोश-कला से भी लाभ उठाया जा सकता है। वर्माजी ने शब्द-विवेचन की जो पद्धति अपनायी है वह निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी—

उलटबांसी—स्त्री० (हि० उलटा+सं० बांची ?)

साहित्य में ऐसी उक्ति या पद्य जिसमें असंगति, विरोध, विचित्र विषय, विभावना, विशेषोक्ति आदि अलंकारों से युक्त कोई ऐसी विलक्षण बात कही जाती है जो प्रकृति-नियम या लोक-व्यवहार के विपरीत हो, पर जिसमें कोई गूढ़ आशय या तत्त्व छिपा हुआ हो, जैसे—

(क) पहिले पूत, पाछे भई माई। चेला के गुरु लागै पाई।—कबीर

(ख) समन्दर लागी आगि, नंदिया जरि कोइला भई।—कबीर

शब्दों के अर्थ को निश्चित करने में कभी-कभी कठिनाई होती है। बोलियों के शब्दों के अर्थ ग्राम के बूढ़े ग्रामवासी (पुरुष-स्त्री) पहले तो बतलाने में संकोच करते हैं और बतलाते भी हैं तो कभी उनका सन्दर्भ-अर्थ गलत होता है। वर्माजी ने 'कोश-कला' में अपनी इस दुविधा का एक उदाहरण दिया है। वे लिखते हैं—"मीराँ के पदों में से शब्द-संग्रह करते समय मुझे एक पद में ये दो चरण मिले—

मोती मानिक परतन पहिरै, मैं कब की नटकी।
गैयौ तो म्हारा माला, दोबड़ी और चंदन की कुटकी।

एक सुयोग्य विद्वान् ने—इनमें से पहले चरण के 'नटकी' शब्द का अर्थ किया है—अस्वीकार कर दिया है और दो बड़ी का अर्थ लिखा है—एक प्रकार का गहना। पर मुझे ये दोनों अर्थ ठीक नहीं जँचे। 'नटना' क्रिया तो ठीक है पर नटकना का प्रयोग नटना के अर्थ में नहीं होता। राजपूताने में नट जाति के लोगों, विशेषत: बालकों और युवकों को 'नटका' भी कहते हैं, जिसका अर्थ होता है—नट जाति का या नट की सन्तान। 'नटकी' इसी का स्त्री-रूप है। मीराँ कहती हैं—मैं कोई नट जाति की स्त्री नहीं हूँ जो रत्नों से अपने को सजाऊँ। दो बड़ी के सम्बन्ध में मैंने सोचा कि जिस मीराँ ने राजसुख को लात मारी थी, वह भला कोई गहना क्यों पहनेगी ? तिस पर वह स्वयं कह रही है कि माला, दोबड़ी और चन्दन की कुटकी ही मेरे गहने हैं। अत: दोबड़ी और कोई चीज होनी चाहिए। मैंने अपने विचारणीय शब्दों की सूची में'दो बड़ी' शब्द के साथ उक्त चरण लिख लिया। कोई छह महीने बाद 'कबीर-साहित्य का अध्ययन' प्रकाशित हुआ। और मैं उससे शब्द संग्रह करने लगा। तब उसमें एक जगह मिला—'पाँच गज दोबटी माँगीं, चून लियो सानि।' तब तुरन्त मेरा ध्यान मीराँ की दोबड़ी की ओर गया और दोनों पदों को मिलाकर देखने पर मालूम

हुआ कि दोबटी और दोबड़ी एक ही हैं। ये शब्द संस्कृत 'द्विपट्ट' से निकले हैं, जिसका अर्थ है—साधारण मोटा कपड़ा।"[1]

शब्द का अर्थ निश्चित करने के लिए कभी लिखित साहित्य, और कभी अलिखित जन-साहित्य का आश्रय लेना पड़ता है। अतः कोशकार को, चाहे वह साहित्यिक कोश को तैयार कर रहा हो, चाहे जन-भाषा या बोली-कोश तैयार कर रहा हो, लिखित और अलिखित दोनों स्रोतों का सहारा लेना चाहिए। साहित्य भी लोक-जीवन से शब्द लेता रहता है, वह तत्समता पर ही आश्रित नहीं रहता। कई भावों के सूक्ष्म रूप हमें लोक-भाषा में मिलते हैं। इसीलिए लोकभाषा या बोली-कोश साहित्य की अभिव्यंजना-शक्ति बढ़ाने के लिए आवश्यक साधन सिद्ध होते हैं।

शब्दों की निरुक्ति स्थिर करना कठिन-साध्य कर्म है। एक ही शब्द चलते-चलते इतना घिस जाता है कि उसकी उत्पत्ति-विकास स्थिर करना कठिन होता है। वर्ण के आगम, लोप, विपर्यय आदि के कारण शब्द का रूप कभी-कभी बहुत परिवर्तित हो जाता है।

वर्माजी ने एक लोक-प्रचलित शब्द 'लिबड़ी-बरताना' की व्युत्पत्ति की खोज की। खोज करते-करते उन्हें ज्ञात हुआ कि यूरोपियन यहाँ आकर अधिकारी बने। तब वे अपनी रक्षा के लिए सिपाही रखते थे और उन्हें पहनने के लिए वर्दी और हाथ में डंडा देते थे। वह वर्दी अँग्रेजी में 'लिबरी' कहलाती है और डंडा बैटन कहलाता है। कभी-कभी सिपाही अपनी 'वर्दी' और डंडा लेकर भाग जाते थे। दूसरे सिपाही अपने 'साहब' को सूचना देते हुए कहते थे—'साहब, वह सिपाही, लिबरी-बटाना लेकर भाग गया।' 'लिबरी-बटाना' से ही लिबड़ी-बरताना' बन गया।

जब बोली-कोश का अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से किया जाता है तब शब्द के मूलरूप की खोज करनी पड़ती है। वर्णनात्मक अध्ययन में उसके वर्तमान रूप और अर्थ से ही सन्तुष्ट होना पड़ता है। डॉ० देवीशंकर द्विवेदी का शोध-प्रबन्ध बैसवाड़ी बोली-कोश से सम्बन्ध रखता है जिसमें उन्होंने बोली-शब्दों का वर्णनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। अतः शब्द की व्युत्पत्ति की खोज उनकी विषय-सीमा के अन्तर्गत नहीं आती थी।

शोध की दृष्टि से कार्य करने में विषय और क्षेत्र की सीमा बाँधनी पड़ती है पर विदेशों में बड़े परिश्रम से लोग कोश-निर्माण का कार्य करते हैं। उन्हें अपने कार्य को व्यवस्थित रूप से सम्पन्न करने की धुन रहती है। उसमें वे वर्षों खपते रहते हैं। 'वेब्सटर न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी' को प्रकाशित होने

---

1. पृष्ठ 118

में 102 वर्षों का समय लगा। 1807 ई० में बैब्स्टर ने कार्य प्रारम्भ किया, जिसे उनके अन्य सहायक पीढ़ी-दर-पीढ़ी पूरा करने में जुटे रहे। फिर 'स्काटिश नेशनल डिक्शनरी' को दस भागों में प्रकाशित करने की योजना बनी थी। वह लोक-भाषा कोश है। लगभग 29 वर्ष तक कार्य करने के उपरान्त डिक्शनरी के सन् 1958 तक केवल तीन खंड प्रकाशित हो सके। स्व० डाक्टर विश्वनाथप्रसाद ने उक्त 'कोश' के सम्पादक से प्रत्यक्ष भेंट कर उनकी कार्य-विधि से प्रभावित हो बिहार-प्रदेश के ग्राम-अंचल में प्रचलित कृषि-सम्बन्धी शब्दों का प्रामाणिक कोश तैयार कर बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् से प्रकाशित कराया है। इस कोश में स्काटिश नेशनल डिक्शनरी के समान ही शब्दों के विभिन्न अर्थ, पर्याय और क्षेत्र आदि का निर्देश किया गया है। इनके अतिरिक्त भाषा-विज्ञान की वर्णनात्मक और ऐतिहासिक पद्धति के अनुसार लोक-भाषा के शब्दों के वैयुत्पत्तिक और पुनर्निर्मित शब्द भी यथासम्भव दे दिये गये हैं। तुलना के लिए बिहार के बाहर की अन्य बोलियों के पर्याय भी, जो प्राप्त हो सके हैं, दे दिए गए हैं। उन्होंने अपने 'कोश'-निर्माण के लिए जो कार्य-प्रणाली अपनायी थी, उसे यहाँ लोकभाषा-कोश के अनुसंधाताओं के लाभार्थ दिया जाता है। उन्होंने संग्रह-कर्ताओं को निम्न निर्देश दिए थे—

संग्रह-कर्ताओं के लिए आवश्यक निर्देश

1. जनसाधारण या समाज के किसी वर्ग-विशेष में प्रचलित शब्दों का ही संग्रह करना होगा।

2. जिस विषय या समाज के जिस वर्ग को लें, उससे सभी भेदों, व्यापारों, गुणों, लक्षणों, रीति-रिवाजों, खान-पान, रहन-सहन-सम्बन्धी शब्दों का संग्रह करना होगा।

3. जो शब्द जिस रूप में व्यवहृत हो, उसे ठीक उसी रूप में लिखना होगा। उसे साहित्य का रूप देने के लिए उसमें फेर-बदल या संशोधन नहीं करना होगा।

4. जिस शब्द को लें, उसको लेकर जो मुहावरे या कहावतें व्यवहृत हों, उन्हें भी वहीं सम्मिलित कर लेना होगा। पर कहावतों और फुटकर मुहावरों को एक पृथक् और स्वतन्त्र विषय समझा जायगा।

5. कार्यकर्ताओं को जिन व्यक्तियों या वर्गों के बीच जाकर काम करना होगा, उनके प्रति अपनी सेवा, सहानुभूति और सद्भाव के द्वारा उनमें बिलकुल घुलमिल जाने की चेष्टा करनी होगी, जिससे उनकी पूरी सहानुभूति और सहयोग प्राप्त हो सके और उनको स्वयं संग्रह-कार्य के महत्त्व में विश्वास और दिलचस्पी पैदा हो सके।

6. शब्दों के स्थानीय उच्चारण पर विशेष ध्यान रहना चाहिए और उनको ठीक उसी रूप में लिखा जाना चाहिए।

7. एक शब्द का एक ही अर्थ में अनेक बार उल्लेख नहीं करना चाहिए।

8. अर्थ एवं विवरण पर विशेष ध्यान रहना चाहिए। उन्हें स्पष्ट रूप से लिखना आवश्यक है।

9. प्रत्येक विषय का पारिभाषिक शब्द यथासम्भव एक साथ और पूर्ण रूप से लिखना चाहिए। निर्दिष्ट वर्गों में विषयों का विभाग और उप-विभाग भी कर लेना उचित है।

10. जो पारिवारिक शब्द न हों, उन्हें अलग ही लिखना चाहिए।

11. निर्देश-पत्र में दिए हुए प्रत्येक नियम को ध्यानपूर्वक समझ या देखकर उपयोग में लाना आवश्यक है।

12. शब्दों, कहावतों, मुहावरों और पहेलियों को पृथक्-पृथक् पत्रों पर लिखना चाहिए। जहाँ शब्द लिखे जायँ, वहाँ दूसरे विषय न लिखे जायँ।

इन निर्देशों के अनुसार शब्द-संग्रह करने के लिए कार्यकर्ताओं को एक मुद्रित तालिका दी गई थी, जो इस प्रकार थी—

संग्रह की इस तालिका का निम्नलिखित विवरण भी निर्देश-पत्र के साथ संलग्न था

संग्रह की तालिका का विवरण

1. (क) साथ में दी हुई सूची के अनुसार जिस विषय के शब्दों का संग्रह किया जाय, उसका यहाँ उल्लेख करना होगा।

(ख) सूची के अनुसार समाज के जिस वर्ग में काम किया जाय, उसका यहाँ उल्लेख करना होगा।

2. जिस स्थान में काम किया जाय, उसका उसके सब-डिवीजन, जिला आदि का नाम देना होगा।

3. भोजपुरी, मगही, मैथिली, नागपुरिया आदि जिस भाषा के क्षेत्र में काम किया जाय, उसका उल्लेख करना होगा।

4. आबादी की संख्या ठीक-ठीक न मालूम हो सके, तो पूछताछ से पता लगाकर अन्दाज से देना होगा।

5. जहाँ जिस स्थान (गाँव आदि) में काम किया जा रहा है, वहाँ की जनता में हिन्दू, मुसलमान, हरिजन, क्रिस्तान, जैन, आदिवासी, चेरो, खरवारो, संताली, उराँव, किसान, जमींदार, बढ़ई, लुहार आदि पेशेवालों में कौन अधिक हैं, कौन कम हैं, आदि बातों का उल्लेख करना होगा।

6. सिलसिलेवार संख्या ।

7. शब्दों के साथ उनसे सम्बन्ध रखनेवाले मुहावरों को दर्ज करना होगा। कहावतों को स्वतन्त्र विषय समझा जायगा। शब्दों के लिंग का भी (स्त्रीलिंग, पुलिंग, नपुंसकलिंग, उभयलिंग या अलिंग) इस प्रकार उल्लेख करना होगा। ये शब्द वहाँ जनसमाज में वस्तुतः जिस लिंग में व्यवहृत होते हों, उसी का उल्लेख करना होगा, साहित्यिक व्याकरण के अनुसार नहीं।

8. (क) यहाँ इसका उल्लेख करना होगा कि वह शब्द केवल उसी वर्ग-विशेष में प्रचलित है या उसके सामान्य जनसमूह में भी। जैसे, खटिया आदि शब्द जो सामान्यतः प्रचलित हैं, इन्हें सामान्य (सामा०) कहना होगा और 'पोर' 'परआ', 'परई' आदि जो केवल 'कानू' जातियों में प्रचलित हैं, विशेष (विशे०) कहे जायँगे।

संग्रह-कार्य निम्नलिखित विषय-सूची के अनुसार होता रहा है—

वृत्तियों की विषय-सूची

1. पेशे के औजार और सामग्रियाँ, उनके भेद और हिस्से। उदा०—हल, बैल, खेत बीज आदि।

2. पेशे के ढंग और उनके काम आनेवाले जानवर।

3. पेशे की सवारियाँ, उनके भेद, हिस्से।

4. पेशे के ढंग तथा उसकी विविध क्रियाओं और अवस्थाओं से सम्बन्ध रखनेवाले शब्द (जैसे—जुताई, बुआई, खुदाई, सिंचाई, खाद देना, सोहनी, रखवाली करना)

5. पेशे की पैदावार के भेद।

6. पेशे या पेशे की सामग्रियों की बाधाएँ और ऐब।

7. पेशे या पेशे की सामग्रियों को बढ़ाने या मदद पहुँचाने वाली चीजें।

8. खाने-पीने की सामग्रियाँ, उनके हिस्से, भेद और उनसे बनने वाली चीजें।

9. मसाले।

10. खाना बनाने की सामग्रियाँ।

11. घर के सामान, आसन, शय्या आदि।

12. कपड़े-लत्ते, और कपड़ों के नाम (छींट आदि)।

13. गहने और श्रृंगार के सामान।

14. पूजा-पाठ, इबादत की सामग्रियाँ और स्थान।

15. जमीन और मिट्टी के भेद।

16. मौसम, हवा, पानी, बादलों के भेद ।

17. तौल और माप ।

18. दूरी, दिशा और समयसूचक शब्द (घड़ी, मौसम आदि) ।

19. घरेलू और पालतू जानवरों, उनके रंग-ढंग, रहन-सहन के भेद, रहने के स्थान, बीमारी, चारागाह, भोजनादि की सामग्री ।

20. पशु-पक्षी तथा अन्य जीव (मछली आदि)

21. घर-बाहर तथा जल-थल के कीड़े-मकोड़े (चूँटे-चींटी, हड्डे, साँप, गौजर आदि)

22. लेनदेन, माहवारी हिसाब ।

23. जमीन के लगान और उसके भेद ।

24. घर, झोंपड़े और मन्दिर-मसजिद आदि के प्रकार, उनके हिस्से और बनाने की सामग्रियाँ, (जैसे—छत, छप्पर-छवाई आदि) ।

25. शादी-ब्याह के शब्द ।

26. शादी-विवाह के रस्म-रिवाज—(क) हिन्दुओं के, (ख) मुसलमानों के, (ग) क्रिस्तानों के ।

27. (क) जात-कर्म—(1) हिन्दुओं के, (2) मुसलमानों के, (3) क्रिस्तानों के, (4) आदिवासियों के ।

(ख) जनेऊ ।

28. मृत्यु-संस्कार—(क) हिन्दुओं के, (ख) मुसलमानों के, (ग) क्रिस्तानों के, (घ) आदिवासियों के ।

29. सोहनी-रोपनी की संस्कार-विधियाँ ।

30. पंचायत, समझौता, शपथ आदि तथा मामले-मुकदमे सम्बन्धी कचहरी के शब्द ।

31. अन्धविश्वास ।

32. तिजारत और बाज़ार ।

33. महाजन और कर्जदार के हिसाब-किताब ।

34. जमींदार और किसान के हिसाब-किताब ।

35. कर्ज, सूद, रेहन आदि ।

36. व्रत, त्यौहार (तीज, छठ, होली, बकरीद, क्रिसमस आदि) और उनकी सामग्रियाँ ।

37. रिक्शा, टमटम, फिटिन, मोटर और हवाई जहाज के हिस्से ।

38. मारपीट और युद्ध के हथियार ।

39. खेलकूद, आख़ेट, मनोविनोद, उनके भेद तथा तत्सम्बन्धी सामग्रियाँ ।

(आँखमुँदौवल, कबड्डी, गोटी-चौपड़, शतरंज, कुश्ती, कसरत, अखाड़े, मनोविनोद, गुल्लीडंडा, पतंग, कबूतरबाजी आदि)।

40. गाली-गलौज।

41. आशीर्वाद, सद्भावना तथा शिष्टाचार।

42. नाच-गान, रासलीला के शब्द और गीत।

43. मजहब, जातपाँत के भेद।

44. फूल, फल, पेड़ पौधे, घासफूस और उनके भेद।

45. बीमारियों के भेद।

46. घरेलू, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक, सम्बन्धसूचक (माँ, बाप, भाई, बहन, चाची, पड़ोसी)।

47. गुण, भाव, सुखदुःख, रागद्वेष आदि मन के विकारों तथा अवस्थाओं के भेद और अन्य सांस्कृतिक और भावात्मक शब्द।

48. उत्पादक (क) प्राकृतिक—भूचाल, आँधी।

(ख) मानवीय चोरी, डकैती, उसके भेद, व्यापार (सेंध आदि)।

साहित्य-इतिहास की प्रविधि

साहित्य के इतिहास की कालक्रमानुसार विधि से रचना नहीं हो सकती, क्योंकि साहित्य सार्वकालिक होता है। किसी काल की सीमा से उसे आबद्ध नहीं किया जा सकता। जो साहित्य काल की सीमा में आबद्ध है, वह साहित्य के इतिहास में स्थान पाने का अधिकारी नहीं है। हिन्दी में स्वाधीनता-आन्दोलन-काल में रचा गया साहित्य काल-कवलित हो गया। जो रचनाएँ साहित्यिक तत्त्व मानवीय अनुभूतियों—सुख और दुःख—पर आधारित रही हैं, वे जीवित रही हैं। पर प्रश्न यह है कि उन्हें वर्ष-तिथि-सम्मत किस 'काल' के अन्तर्गत रखा जा सकता है? उनका रचनाकाल ही आप जान सकते हैं, जीवन-काल नहीं। इसी तर्क को पुरस्सर करते हुए डब्ल्यू० पी० केर ने कहा है कि "हमें साहित्य के इतिहास की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि उसकी रचनाएँ शाश्वत होती हैं—सदा विद्यमान रहती हैं। और इस तरह उनका कोई इतिहास ही नहीं होता।" टी० एस० इलियट भी लगभग इसी मत के पोषक हैं। वे किसी कृति का 'अतीत' मानते ही नहीं हैं। शापन आवर के शब्दों में, "कला सदा ही अपना लक्ष्य प्राप्त करती रही है, इसमें विकास नहीं होता और न ही इसे अतिक्रान्त (सुपरसीड) किया जा सकता है और न दुहराया ही जा सकता है।" इस पर टिप्पणी करते हुए आस्टिन वारेन कहता है, "इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि राजनीतिक इतिहास में और कला के इतिहास में अन्तर है। जो ऐतिहासिक और विगत है उसमें तथा प्राचीन में जो ऐतिहासिक

होने के साथ ही साथ किसी-न-किसी क़दर इस समय भी वर्तमान है, फर्क तो है ही।" इतिहास उन घटनाओं का वर्णन या पर्यालोचन है, जो घट चुकी हैं। उनकी वैसी ही पुनरावृत्ति नहीं होती। साहित्य उन कृतियों का रूप है जो किसी काल में उत्पन्न भले ही हो गया हो, पर उसका न तो विकास होता है और न अन्त। यहाँ हम शुद्ध साहित्य (उत्कृष्ट साहित्य) की चर्चा कर रहे हैं। दुर्भाग्य यह है कि साहित्य के इतिहासों में प्रचार या दलगतता के कारण घटिया साहित्य भी स्थान पा जाता है और शुद्ध साहित्य उपेक्षित कर दिया जाता है। एक लेखक ने ठीक ही कहा है कि साहित्य के नहीं, साहित्यकार के इतिहास लिखे जा रहे हैं। जो इतिहास लिखे गये हैं, वे या तो साहित्यकार के जीवन-काल-क्रमानुसार हैं जिनमें उनकी रचनाओं की या तो तालिका है या तालिकाएँ और आलोचनाएँ हैं। वे काल-विशेष की प्रवृत्ति-विशेष को लक्ष्य कर भी लिखे गए हैं और उन्हें आदि, मध्य और वर्तमान काल नाम दे दिया गया है। साहित्य पर समय का प्रभाव पड़े, यह आवश्यक नहीं है और इसलिए उसकी पृष्ठभूमि में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन देना बहुत जरूरी नहीं है। छायावाद युग का हम उदारहण ले सकते हैं। यह देश में राजनीतिक-सामाजिक संघर्ष का काल था। छायावादी रचनाओं को पढ़कर हमें काल की बाह्य उथल-पुथल का पता नहीं चलता। प्रत्युत उससे विपरीत स्थिति की कल्पना होती है। जान पड़ता है, देश की जनता शान्त वातावरण का सुख भोग रही है—इसीसे कवि गगनविहारी हो रहा है, प्रेम के मधुर गीत गा रहा है; अन्तर्मुख हो रहस्य की भूमिका में प्रविष्ट हो रहा है। ऐसी स्थिति में इस युग के साहित्य के इतिहास की पृष्ठभूमि में सामाजिक राजनीतिक उथल-पुथल की चर्चा का कोई अर्थ ही नहीं है। तो फिर क्या साहित्य का इतिहास लिखा ही न जाय? क्या वर्तमान साहित्य पर अतीत में रचे गए साहित्य का कोई प्रभाव नहीं खोजा जा सकता? यदि किसी भाषा के साहित्य का इतिहास लिखा जाय तो ऐसे व्यक्ति के द्वारा लिखा जाय जो साहित्य की परम्परा से खूब परिचित हो, अन्यथा वह आलोच्य साहित्य के स्रोत-सूत्र को पकड़ नहीं पायेगा। प्रभाव खोजते समय केवल किसी कवि या लेखक पर कुछ शब्द या भाव की छाया का दिग्दर्शन पर्याप्त नहीं होगा। क्योंकि प्रतीक और बिम्ब किसी काल में प्रचलित होकर सर्वग्राह्य हो जाते हैं।

"खिचे हैं हृदय बीन के तार" पंक्ति यदि किसी काव्य में है तो उसे 'पन्त' का प्रभाव नहीं समझ लेना चाहिए, यह तो तत्कालीन कविता की सामान्य भाव-सम्पत्ति है। हाँ, काव्य का अधिकांश अंश उसी सन्दर्भ में ग्रहण किया जाय तो आप उसे प्रभाव या चौर्य-कर्म की संज्ञा दे सकते हैं। साहित्य-इतिहासकार को अपनी साहित्य-परम्परा के अतिरिक्त अन्य साहित्यों की गतिविधि का भी

ज्ञान होना चाहिए। यदि अंग्रेजी-साहित्य का अध्येता केवल अंग्रेजी-साहित्य का ज्ञाता होगा तो वह उसके साहित्य में फ्रांस, जर्मनी, नार्वे से आयातित साहित्य-प्रवाहों के स्रोतों को कैसे पहचान सकेगा ? हमें यह मानना होगा कि "साहित्यिक कृतियों की पूरी प्रणाली है, जिसके आन्तरिक सम्बन्ध नयी कृतियों की रचना के साथ निरन्तर परिवर्तित होते जा रहे हैं, जो पूरी-की-पूरी एक चिर परिवर्तन-शील जीवधारी की तरह बढ़ रही है ?"[1] साहित्य-विकास के साथ जैविक या विकासवादी सिद्धान्त लागू नहीं होगा। जैविक विकास में तो जीव का आदि और अन्त है; पर साहित्य का आदि है, अन्त नहीं है। हिन्दी में यद्यपि गद्य-काव्य की विधा 'नयी कविता' के गद्यमय हो जाने से रुक-सी गयी है या उसका ह्रास हो गया है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि भविष्य में गद्य-काव्य लिखा ही नहीं जायेगा।

"साहित्य-कृतियों के बीच स्पष्ट सम्बन्धों, स्रोतों और प्रभावों का विवेचन प्रायः किया जाता रहा है और यह परम्परागत पाण्डित्य की एक शाखा रहा है। यद्यपि इसे संकीर्ण अर्थ में साहित्य का इतिहास नहीं कहा जा सकता परन्तु लेखकों के बीच साहित्यिक सम्बन्ध स्थापित करना इस तरह का इतिहास लिखने के लिए एक नितान्त महत्त्वपूर्ण तैयारी रहा है।—रेमण्ड हेवेन्स की 'मिल्टन्स इन्फ्लुएन्स ऑन इंग्लिश पोयट्री' जैसी पुस्तक में, जो मुख्य रूप से एक साहित्यिक अध्ययन है, न केवल अठारहवीं शताब्दी के कवियों द्वारा मिल्टन के विचारों की स्वीकृतियों को एकत्र करके, अपितु पुस्तकों का अध्ययन करके और साम्यों तथा समान्तर उक्तियों का विश्लेषण करके मिल्टन के प्रभाव के बहुत प्रभावोत्पादक साम्य जुटाये गये हैं।"[2] हिन्दी में स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी के दोहों के भाष्य में इसी प्रकार का अध्ययन प्रस्तुत किया है। पूर्ववर्ती कवियों से बिहारी ने कितने अंश में क्या ग्रहण किया है, इसे साहित्यिक और तुलनात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। इतिहास-लेखन की इस तुलनात्मक पद्धति में चाहे कुछ दोष भले ही हों, पर यह भी एक पद्धति है और जीवन्त पद्धति है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

"किसी परम्परा में प्रत्येक कृति की सही स्थिति निश्चित करना साहित्यिक इतिहास का पहला काम है।—कलात्मक कृतियों में सबसे पहली और सबसे प्रकट शृंखला एक लेखक द्वारा लिखी गयी कृतियों की है।—हम किसी एक कृति या कृतियों के समूह को उसकी परिपक्व रचना मान सकते हैं और शेष कृतियों से इस दृष्टि से विचार कर सकते हैं कि वे इस टाइप की कृति या

1. रेनेवेलक और आस्टेन वारेन, साहित्य-सिद्धान्त, पृष्ठ 338
2. वही, पृष्ठ 342

कृतियों से कितना निकट पड़ती हैं।"[1] व्यक्ति की कृतियों का समग्र अध्ययन न करके साहित्य के किसी एक तत्त्व को लेकर भी अध्ययन किया जा सकता है और उसके विकास की दिशा खोजी जा सकती है। जैसे हिन्दी-कविता में छन्दों का विकास या आधुनिक कविता में प्रतीक या बिम्बयोजना की साहित्यिक विधाओं का विकास प्रस्तुत किया गया है और उनका स्रोत तथा विकास भी खोजा गया है, पर ऐसा कार्य पर्याप्त अध्ययन की माँग करता है क्योंकि 'विधाओं' के इतिहास की समस्या समूचे इतिहास की समस्या है। अर्थात् सन्दर्भ की किसी क्रम-बद्ध योजना को ध्यान में रखे बिना हम इतिहास का अध्ययन नहीं कर सकते। हिन्दी में पवनदूत-काव्य के अध्ययन के लिए हमें कालिदास के 'मेघदूत' तक पीछे जाना होगा। इसी तरह कृष्ण-कवियों में 'राधा-माधव-विलास का इतिहास' तब तक अधूरा रहेगा जब तक हम सिद्धों की सहज साधना से परिचित नहीं होंगे। हमारा विश्वास है कि यदि जयदेव और विद्यापति को समझना है तो हमें सिद्ध-साहित्य और दर्शन से अवगत होना होगा। किसी साहित्य-विधा का इतिहास लिखने के पूर्व इतिहासकार को उसके सभी अनिवार्य तत्त्वों को हृदयंगम कर लेना चाहिए। उसके पश्चात् ही वह निश्चित कालबद्धता के दायरे में लिखित साहित्य से उन तत्त्वों की खोज कर सकेगा। इतिहास-लेखक को आलोच्य साहित्य की भूमिकाओं से लेखक या कवि के विचारों, उसके अपने साहित्य के वर्गीकरण, आदि पर भी ध्यान देना चाहिए और उसके काव्य से सम्बद्ध उसी के वर्गीकरण को स्वीकार कर लेना चाहिए। इससे उसके दृष्टिकोण को समझने और उस पर अपना मत व्यक्त करने में सहायता हो जायगी।

साहित्यिक इतिहास का काल-विभाजन एक ऐसी समस्या है जो कभी हल नहीं हो पायेगी। इंग्लैण्ड में भी रोमेण्टिसिज्म, सिम्बेलिज्म, रिनेसाँ आदि शब्दों की व्याख्या ही विवाद का विषय बनी हुई है। इन शब्दों का अर्थ-विकास होता रहा है। अतः आरम्भ में ये जिन अर्थों में प्रयोग में आए उन्हीं अर्थों को लेकर आज के साहित्य को परखना, भूल होगा। कहा जाता है, किसी भाषा के साहित्य का इतिहास राष्ट्र के समस्त साहित्य से संयुक्त किया जाना चाहिए जिससे राष्ट्र की चित्तवृत्ति का अध्ययन किया जा सके, पर यह कार्य आसान नहीं है। हिन्दी में हिन्दीतर भाषा-साहित्यों की विधाओं के अध्ययन का श्रीगणेश हो गया है। इन अध्ययनों का, व्यवस्थित रूप-रेखा बनाकर, यदि पुनः अध्ययन और विश्लेषण किया जाय तो भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक इतिहास लिखा जा सकता है, पर इसके लिए समय, धैर्य और अध्यवसाय की आवश्यकता है।

---

1. रेनेवेलक और आस्टेन वारेन, साहित्य-सिद्धान्त, पृष्ठ 342

इतिहास-लेखन और उसकी शोध-प्रविधि

लेखन—'इतिहास' शब्द द्वि-अर्थी है—एक अर्थ में वह अतीत की घटनाओं के वर्णन का द्योतक है, दूसरे अर्थ में स्वयं घटनाओं का। इतिहास में ये दोनों बातें रहती हैं। इतिहास राजाओं के जन्म-मरण और उनके कार्यों का काल-क्रमानुसार वर्णन नहीं है, न कोरी काल-घटित घटनाओं का संग्रह-मात्र। इतिहास तो जाति (नेशन) के उदय, उत्थान तथा अवसान की, विश्व की बहुमुखी प्रगति के परिप्रेक्ष्य, में आलोचना है; उसमें मानव-सभ्यता के विकास का लेखा-जोखा होता है। जो इतिहास को केवल घटनाओं का कालक्रम-बद्ध संचयन समझते हैं, वे मानव-मन के विकास की उपेक्षा करते हैं। संसार में घटनाएँ घटती हैं, पर वे अनायास नहीं घटतीं, उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध होता है।

प्रसिद्ध इतिहासकार टॉयनबी का मत है कि घटनाएँ किसी विशिष्ट पेटर्न से घटती हैं और उनमें एक लयात्मकता भी खोजी जा सकती है। अतीत में होनेवाली मार-काट की घटनाओं से हमें उस युग के प्रति वितृष्णा का भाव नहीं धारण कर लेना चाहिए। ऐतिहासिक क्रम में सब मिलाकर प्राकृतिकता (Naturalness) और नैतिक वैचार्य भी निहित रहता है। यूरोप में और भारत में भी मानव-इतिहास पर धार्मिकता का रंग चढ़ा रहता था। लोगों का विश्वास था कि किसी राष्ट्र या जाति का उत्थान-पतन परमात्मा की इच्छा पर निर्भर रहता है। इस दार्शनिक पृष्ठभूमि पर लिखे इतिहासों में घटनाओं का कार्य-कारण भौतिक सम्बन्ध से नहीं देखा जाता था, पर वैज्ञानिक युग में इतिहास धार्मिक मान्यताओं को ग्रहण कर नहीं लिखे जाते। अब तो घटनाओं का निरीक्षण-परीक्षण तर्कबुद्धि से किया जाता है नौर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। सामाजिक विचार-धारा के उदय के साथ यह सोचा जाने लगा कि इतिहास को किसी राष्ट्र तक सीमित न रहकर उसे विश्वव्यापी दृष्टि से देखा जाय, उसे दर्पण बनाया जाय। घटनाएँ परमात्मा द्वारा थोपी नहीं जातीं, वरन् मनुष्य के कर्मों का परिणाम होती हैं। मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता होता है। इस विचार को लेकर घटनाओं का कार्य-कारण सम्बन्ध खोजा जाना चाहिए। मिल, मार्क्स, एंजिल इतिहास-लेखन की वैज्ञानिक पद्धति के प्रस्तुतकर्ता माने जाते हैं। अठारहवीं शताब्दी के इतिहासकार विको और हर्डर का मत है कि प्राकृतिक जगत् के निरीक्षण-परीक्षण से जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है वह मानव-कृत्यों, सर्जनों तथा संस्थानों से अर्जित ज्ञान से भिन्न प्रकार का है। अतः यह ज्ञान मनुष्येतर माध्यम से प्राप्त ज्ञान की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ, अधिक विश्वसनीय है। राष्ट्रों का संसार मनुष्य की सृष्टि है। अतः वही इतिहास का विषय हो सकता है और मनुष्य उसी के प्रति जिज्ञासु हो सकता है; प्राकृतिक

जगत् परमात्मा की सृष्टि है। उसका इतिहास जनसामान्य के लिए अधिक रुचिकर नहीं हो सकता। विको इसी से अतीत की मानव-आत्मा को कल्पित करने पर बल देता है। उस युग में मानव-मन की क्या प्रवृत्ति थी, उसे उद्-घोषित करने की इतिहासकार को आवश्यकता है। विको मानव-इतिहास के चक्राकार-सिद्धान्त (Cycle Theory) का पक्षपाती है। उसके मत से 'स्टेज' मानव-मन का एक ऐतिहासिक उपकरण है जो बँधी लीक पर न चलकर समय-समय पर परिवर्तित दिशा ग्रहण करता रहता है। हम ऐतिहासिक शोध-प्रक्रिया से उसका मूल्यांकन करने में समर्थ होते हैं।

जर्मन लेखक हर्ड का मत है कि मनुष्य के कृत्यों को देश-काल तथा राष्ट्रीय चरित्र की दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। भूतकालीन मानव-कृत घटनाओं को विश्वव्यापी निरपेक्ष सार्वभौम सार्वकालिक नियम का निदर्शन नहीं मानना चाहिए। मानव-मन गत्यात्मक होता है, इसे विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए। प्राकृतिक नियम सार्वकालिक, सर्वदेशीय होते हैं; उन्हें ऐतिहासिक घटनाओं पर लागू करना अनुचित होगा। समाज-विशेष से सम्बद्ध मनुष्य पर जटिल और व्यापक प्रभाव पड़ते रहते हैं। वे ही ऐतिहासिक कालों में मनुष्य के विचार तथा आचरणों के ढंग की अभिव्यक्ति का निर्धारण करते हैं। जर्मन दार्शनिक हेगेल ने भी लगभग ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं। इतिहास को क्या होना चाहिए, इस सम्बन्ध में चिन्तकों का मतभेद समाप्त नहीं हुआ है और न होगा। संक्षेप में, हम यही कह सकते हैं कि इतिहास को देश-काल की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि प्रवृत्तियों का दर्पण होना चाहिए।

प्रविधि—इतिहास की शोध-प्रविधि अन्य विषयों की शोध-प्रविधि से विशेष भिन्न नहीं है। शोधार्थी को कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व शोध की वैज्ञानिक प्रविधि से अवगत हो जाना चाहिए। उसके पश्चात् उसे उसके विषय पर किए गए शोध-कार्य का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। उसे पाण्डुलिपियों को एकत्र कर उसे पढ़ने की कला से परिचित होना चाहिए, शोधपत्रियों (cards) को सूचीबद्ध करने, सामग्री का वर्गीकरण करने और सन्दर्भ-ग्रन्थों आदि से अवगत हो जाना चाहिए। ज्ञात तथ्यों से अज्ञात तथ्यों तक पहुँचा जा सकता है। जो इतिहासकार शोध के विषय पर कार्य कर चुके हैं उनसे सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता होती है। शोधार्थी में प्रलेखों की सामग्री से काम की बात तुरन्त छाँट लेने की क्षमता होनी चाहिए। प्राप्त तथ्यों की व्याख्या भी आवश्यक होती है। जिस काल का शोध करना हो, उस काल का यदि कोई व्यक्ति जीवित हो तो उससे सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक होगा। इतिहास के शोधार्थी को अपने विषय के ज्ञान के अतिरिक्त नृतत्त्व-विज्ञान, अर्थशास्त्र, भूगोल, दर्शन, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, विविध भाषाओं के साहित्य का

इतिहास आदि का भी ज्ञान सम्पादित करना होगा क्योंकि इतिहास राजाओं के कार्यकलाप का वर्णन न होकर राष्ट्र और जाति का सम्पूर्ण चित्र होता है।

इतिहास की सामग्री के मुख्य स्रोत दो हैं—1. लिखित, और 2. परम्परा। लिखित स्रोत भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—साहित्य (आन्तरिक), शासकीय (बाह्य)

साहित्यिक स्रोत से हम उन घटनाओं का चयन कर सकते हैं जो साहित्यकार द्वारा देखी-सुनी गई हैं और जिसे उसने अपनी कृतियों में अंकित किया है। दूसरे विभाग में वे शासकीय प्रपत्र आते हैं जिनमें व्यक्ति, समाज और राष्ट्र से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का वर्णन रहता है। भारत का शासन अँग्रेजों ने किस प्रकार भारतीयों को सौंपा, इसका वर्णन 'इण्डिया हाउस, लन्दन' के रिकार्ड से ज्ञात होता है। पालियामेंट की कार्रवाई से समय-समय पर पारित विधि-नियम आदि का ज्ञान होता है। परम्परा-स्रोत से प्राप्त सामग्री तो पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुनी-सुनाई बातें (घटनाएँ) होती हैं। लोक-साहित्य (गीत, कथा आदि) में अतीत की घटनाएँ बहुत-कुछ अंश में संचित रहती हैं। राजस्थान का अधिकांश इतिहास कर्नल टाड ने परम्परा से प्राप्त लोक-साहित्य के आधार पर लिखा था।

परम्परा या अन्य स्रोतों से प्राप्त तथ्यों की अन्य स्रोतों से प्राप्य तथ्यों से तुलना करने पर ही उनकी प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता जानी जा सकती है। कई तथ्य प्रस्तर-लेखों से भी ज्ञात होते हैं। अतः शोधकर्ता को उनका भी उपयोग करना होता है। कभी-कभी पत्थर का काल जानना भी आवश्यक होता है। ऐसी दशा में उसे किसी भूगर्भ-विशेषज्ञ तथा पुरातत्त्व-विशेषज्ञ से, जो लिपि-ज्ञाता भी हो, सहायता लेनी होती है। इतिहासकार का कार्य तथ्यों का संकलन या सम्पादन मात्र नहीं है, उसे उनका उपयोग अपने इतिहास-लेखन में करना चाहिए। स्रोत-सामग्री का उपयोग कैसे किया जाय, यह शोधार्थी के चातुर्य पर निर्भर है। उसे जाति या राष्ट्रप्रेम के कारण राष्ट्रीय तथ्यों की तोड़-मरोड़ नहीं करनी चाहिए।

इतिहास के शोधकर्ता के सामने एक कठिनाई आती है। विद्वानों ने इतिहास क्या है—और क्या होना चाहिए ? इस प्रश्न पर विविध मत व्यक्त किए हैं। अतः वह यह नहीं निर्णय कर पाता कि इतिहास की किस धारणा को अंगीकार कर अपनी प्रविधि निर्धारित करे।

इतिहास को साहित्य माननेवाले उसमें आत्मपरकता (सब्जेक्टिविटी) को प्रविष्ट कर देते हैं। इस प्रकार के इतिहास में भाषा और कल्पना-सौन्दर्य की प्रधानता हो जाती है। तथ्य गौण हो जाते हैं। इतिहास के साथ नैतिकता को जोड़ देने से निष्कर्षों के जीवन-मूल्य आधार बनने लगे।

इसके विपरीत वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण के साथ वैज्ञानिक प्रविधि से इतिहास लिखे जाने लगे थे। पर यह प्रणाली अधिक प्रचलित नहीं हो पाई। इतिहास को प्रचार बनाने की दिशा को भी सत्य का हनन समझा जाना चाहिए। कुछ देशों में इतिहास प्रायः इसी दृष्टिकोण से लिखे जाते रहे हैं। ऐसे वर्णन 'इतिहास' के अन्तर्गत नहीं आने चाहिए। क्योंकि इसमें बौद्धिक भ्रष्टाचार दिखाई देता है। इतिहास में सत्यान्वेषण होना चाहिए, सत्य-विकृति नहीं। प्राचीन इतिहासकारों ने ऐसे अटल सिद्धान्त बना रखे थे कि जिनके अनुसार लिखे गए वर्णन ही 'इतिहास' कहे जाते थे, पर दुर्भाग्य से उन सिद्धान्तों की आज मान्यता समाप्त हो गयी है।

ऐतिहासिक अनुसंधान अवैज्ञानिक

इतिहास के शोध को वैज्ञानिक विधि-सम्मत माना जाय या नहीं, इस सम्बन्ध में मतभेद है। ऐतिहासिक शोध को वैज्ञानिक प्रयास तो माना जा सकता है, परन्तु यदि शोध की विवेचनात्मक प्रणाली की कसौटी पर उसे कसा जाय तो वह वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। वैज्ञानिक शोध के तीन मुख्य अंग हैं: (1) तथ्यों का संग्रह, (2) तथ्यों की व्याख्या, और (3) निष्कर्ष तथा उनका सामान्यीकरण। मोले का मत है कि ऐतिहासिक शोध उपर्युक्त तीन कसौटियों पर खरा नहीं उतरता और इसके लिए उसने निम्नलिखित कारण दिये हैं—

(1) तथ्यों के संग्रह के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं; परन्तु जो तथ्य एकत्रित किए जाते हैं उनके स्रोतों की प्रामाणिकता प्रायः संदिग्ध रहती है। भौतिक विज्ञान के तथ्यों के समान ऐतिहासिक तथ्य प्रत्यक्ष ज्ञातव्य या प्रयोग-साध्य नहीं होते। उनकी सत्यता अनुमान-आधारित होती है। जो घटना एक बार घट गई वह उसी रूप में दुबारा नहीं घटती। अतः इतिहासकार आलोच्य काल की प्रमुख घटनाओं के आधार पर ही अपना निष्कर्ष निकाल सकता है, जो अनुमानित ही हो सकता है। हम मोले की आपत्ति के तर्क को असंगत नहीं कह सकते। प्रागैतिहासिक काल की घटनाओं को जिन्हें इतिहासकारों ने तथाकथित शोध के बल पर 'तथ्य' मान लिया है, क्या वे निर्विवाद सिद्ध हो पाती हैं? उदाहरणार्थ, आर्यों का आदिदेश भारत था या वे बाहर से आकर बसे थे, यह प्रश्न इतिहास के अनुसंधान से अभी तक हल नहीं हो पाया। कुछ विद्वानों का मत है कि आर्य न तो मध्य एशिया से आये, न उत्तरी ध्रुव या यूरोप के किसी अन्य स्थान से, वे तो भारत के ही मूल निवासी हैं। अपने इस निष्कर्ष के लिए अन्य प्रमाणों के साथ विदेशी यात्रियों—विशेषकर अलबरूनी और मेगास्थनीज—के मतों का भी सहारा लेते हैं। अलबरूनी आर्यों का आदि-

निवास—हिमालय मानता है और मेगास्थनीज भारतवर्ष । मेगास्थनीज लिखता है, "कहा जाता है कि भारत में विभिन्न जातियों के लोग बसते हैं । उनमें से एक भी विदेशी वंशज नहीं है । न तो भारत ने कहीं उपनिवेश बनाये और न बाहर की जातियों ने भारत को अपना उपनिवेश बनाया ।" अलबरूनी ने सुनी-सुनाई बातें लिखी हैं : "ऐसे प्रमाण मिले हैं, जिनसे ज्ञात हुआ है कि भारतीय बाहर जाते थे, दक्षिण-पूर्वीय देशों में उनका विशेष रूप से संचार होता था ।" पुराणों में ययाति के पुत्र के वंशज पश्चिम में गए और म्लेच्छ हो गए । भविष्यपुराण में शाकद्वीप से मगों के आने का उल्लेख है । बौद्ध-साहित्य के पालिग्रन्थों के अनुसार चक्रवर्ती राजा चारों महाद्वीपों पर राज्य करता है । वह क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में जाकर पूर्व विदेह, जम्बूद्वीप, अपर-गोपाल और उत्तरकुरु को जीतता है (यहाँ बोधिवृक्ष और बुद्धवंस अट्ठकथा द्रष्टव्य है)। प्रथम कल्प में मान्धाता ने इसी प्रकार दिग्विजय की थी । उस समय अन्य तीन महाद्वीपों के लोग भी जम्बूद्वीप में आ बसे थे और उन्हीं के नाम पर विदेह राष्ट्र, कुरु राष्ट्र और अपरान्त राष्ट्र नाम के प्रदेश हो गये थे । पूर्व विदेह डॉ० हेमचन्द्र रायचौधरी के अनुसार पूर्वी तुर्किस्तान या उत्तरी चीन है ।

डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल और डॉ० हेमचन्द्र रायचौधरी ने उत्तर कुरु को साइबेरिया से मिलाया है ।

अपरगोपाल को पश्चिमी तुर्किस्तान से मिलाया गया है । अतः प्रागैतिहासिक काल में इन देशों से भारत में विदेशी जातियों का आना सिद्ध होता है ।"[1] जिन घटनाओं को ऐतिहासिक युग की कहा जाता है उनकी सत्यता भी कहाँ निर्विवाद सिद्ध हो पाती है ? उदाहरण के लिए, सन् 1857 के अंग्रेजों के प्रति हुए देश-व्यापी विद्रोह को स्वाधीनता-आन्दोलन कहा जाय या सिपाही-विद्रोह ? झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने देशभक्ति से प्रेरित हो शस्त्र ग्रहण किए थे या अपने राज्य की रक्षा के प्रतिशोध में विद्रोह किया था ? ऐसे कई तथ्यों के आगे प्रश्नवाचक चिह्न लगाए जा सकते हैं ।

(2) ऐतिहासिक शोध को अवैज्ञानिक कहने का दूसरा कारण यह है कि भौतिक विज्ञान के शोध प्रयोगात्मक होने से विश्वसनीय होते हैं । ऐतिहासिक तथ्यों की परीक्षा तर्क के आधार पर ही हो सकती है । वे किंवदन्तियों, पत्रों, डायरियों, यात्रा-वर्णन-ग्रन्थों आदि से एकत्र किए जाते हैं, जिनका विश्लेषण कठिन होता है । इतिहासकार को उक्त स्रोतों में वर्णित अधिकांश तथ्यों को सत्य मानकर ही तर्क करना पड़ता है । पर लिखित घटनाएँ कभी-कभी आलंकारिक, प्रतीकात्मक या व्यंग्यात्मक शैली में भी प्रस्तुत की जाती हैं जिनका

---

1. धर्मदूत, वर्ष 35, अंक 9, पृष्ठ 226-227

वास्तविक अर्थ तत्कालीन युग की जनता के लिए सहज ग्राह्य होता है, वर्तमान युग का विश्लेषक तो अपनी ही बुद्धि से उनका अनुमान लगा सकता है।

पुराणों की ऐतिहासिक घटनाएँ प्रतीक और आलंकारिक भाषा के कारण ही रहस्यमय हो गई हैं। अन्ततोगत्वा इतिहासकार को अपने तर्कों के परिणाम को अनिश्चित शब्द 'सम्भावना' के साथ ही प्रस्तुत करना पड़ता है। बहुत प्राचीन काल की बात छोड़ भी दें तो वर्तमान काल के प्रथम यूरोपीय महायुद्ध का कारण इतिहासकार ठीक-ठीक नहीं बता पाये। कुछ इतिहासकार आर्क ड्यूक फर्निनंड की हत्या मानते हैं, पर युद्ध इसी एक कारण से नहीं हो सकता। अन्य कारण भी उससे सम्बद्ध हो सकते हैं। कई बार तो ऐतिहासिक निष्कर्ष ऐसे होते हैं जैसे किसी दम्पती के सम्बन्ध-विच्छेद (तलाक) का कारण विवाह को माना जाय। यह तो वही तर्क हुआ कि "न होता बाँस, न बजती बाँसुरी।" सम्बन्ध-विच्छेद के कारण गम्भीर सैद्धान्तिक मतभेद, क्रूरता, चरित्रहीनता आदि भी हो सकते हैं। तात्पर्य यह कि ऐतिहासिक शोध में निष्कर्ष अनुमानित होने के कारण शुद्ध वैज्ञानिक नहीं कहे जा सकते। भौतिक विज्ञान के शोध के निष्कर्ष परिस्थिति-विशेष के लिए 'नियम' का रूप धारण कर लेते हैं। पर इतिहास-सम्बन्धी शोध के निष्कर्ष अनिर्णीत तथ्य मात्र रह जाते हैं। इसलिए इतिहास के शोध वैज्ञानिक प्रविधि का अनुसरण नहीं करते।

जो शोध केवल प्रलेखों (डाक्यूमेंट्स) पर आधारित होते हैं, उन्हें बहुत विश्वसनीय नहीं माना जाना चाहिए। एक शोध-प्रबन्ध में प्रलेखों के आधार पर यह प्रतिपादित किया गया कि एशियाई देशों में बच्चों की मृत्यु-संख्या पाश्चात्य देशों की अपेक्षा अधिक है; पर शोधकर्ता का, यदि व्यक्तिगत अनुभव होता तो बहुत से एशियाई देशों में बहुत बार बच्चों के जन्म-मृत्यु को दर्ज नहीं कराया जाता। भारत के आदिवासी क्षेत्रों में तो यह बात सामान्य है।

इतिहास के क्षेत्र में अनुसंधानकर्ता को अपने विषय के चुनाव में बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए। उसे ऐसा विषय नहीं लेना चाहिए जिस पर पर्याप्त विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध न हो सके। इतिहास के शोधकर्ता को भी एकाधिक भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है। मध्यकालीन समस्या को समझने के लिए फारसी का ज्ञान अपेक्षित है क्योंकि मुगलकालीन दस्तावेज इसी भाषा में मिलते हैं। प्राचीनकालीन समस्या बिना संस्कृत, पालि आदि भाषाओं के ज्ञान के समझ में ही नहीं आ पाती। अनूदित ग्रन्थों पर अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि वे मूल स्रोत न होकर गौण स्रोत होते हैं।

ग्रियर्सन की भाषा-सर्वेक्षण-प्रणाली

ग्रियर्सन ने सरकारी कर्मचारियों की सहायता से भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण की जो प्रणाली अपनाई उसे सर्वे के प्रथम भाग के हिन्दी-रूपान्तर से संक्षेप में यहाँ दिया जाता है। सन् 1921 की जनगणना के अनुसार भारतीय साम्राज्य में 188 भाषाएँ थी, बोलियों की संख्या इससे पृथक् थी।

ग्रियर्सन ने सर्वप्रथम देश में प्रचलित भाषा-सम्बन्धी सूची तैयार की। स्थानीय सूचियों के आधार पर प्रान्तीय सूचियाँ तैयार की गयीं और उन्हें दो वर्गों में बाँटा गया। पहले वर्ग में उन बोलियों को रखा गया जो किसी विशेष भाग में बोली जाती थीं; दूसरे वर्ग में उन्हें रखा गया जिन्हें विदेशी लोग बोलते थे। सर्वेक्षण में प्रथम वर्ग की भाषा या बोलियों पर ही ध्यान दिया गया। विदेशियों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं को छोड़ दिया गया। इसके बाद प्रत्येक जिले के अधिकारी को उसके जिले में बोली जाने वाली भाषा या बोली के तीन-तीन नमूने भेजने को कहा गया और यह निर्देश दिया गया कि नमूने एकत्र करने में पर्याप्त सावधानी बरती जाय। प्रथम नमूना बाइबिल के अपव्ययी पुत्र की कथा का अनुवाद था। इसके 65 पाठान्तर किये गए। ऐसा अनुमान किया गया कि जिन्हें अँग्रेज़ी का ज्ञान नहीं है उन्हें भी सर्वेक्षण के लिए नमूना तैयार करते समय, इस संग्रह के किसी-न-किसी पाठ से अपनी भाषा अथवा बोली में अनुवाद करने में सहायता मिल जायगी। द्वितीय नमूने के सम्बन्ध में इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं हुई क्योंकि इसके चुनाव का भार स्थानीय लोगों पर था लेकिन इसके सम्बन्ध में आदेश थे कि नमूना प्रचलित लिपि में दिया जाय, और साथ ही उसे रोमन लिपि में भी दिया जाय तथा प्रत्येक पंक्ति का अनुवाद अच्छी अँग्रेज़ी में दिया जाय। अधिकारियों को यह भी आदेश दिया गया था कि अनुवाद साहित्यिक भाषा में न हो। इन नमूनों का लक्ष्य यह था कि प्रत्येक अनुवादक अपनी परिभाषा में, चाहे वह असंस्कारी भाषा ही क्यों न हो, अनुवाद करे। तीसरे नमूने में आदर्श शब्द तथा वाक्य थे, जिन्हें छपे हुए फार्म के रूप में पुस्तकाकार तैयार किया गया था।

नमूने का सम्पादन

जब प्रत्येक अञ्चल से भाषा और बोलियों के नमूने प्राप्त हो गए तब उनके सम्पादन की समस्या आयी। वर्गीकरण की सामान्य पद्धति निश्चित करना आवश्यक हो गया। प्राप्त नमूनों की गणना उन्होंने नहीं की, क्योंकि उन्होंने जान-बूझकर अधिक नमूने मँगाये थे। अतः महत्त्वपूर्ण नमूनों को चुना

गया। हिमालय तथा असम प्रदेश की सीमा की कतिपय अलिखित बोलियों के एक-एक नमूने ही प्राप्त हुए थे। इन बोलियों को लिखने में असावधानी की भी कल्पना थी। पर सीमान्त के अधिकारियों से पत्राचार करके उन्होंने शंकाओं का निवारण किया। नमूनों को शुद्ध रूप देने में ग्रियर्सन को बड़ी कठिनाई हुई। हिन्दूकुश पर्वत में हिमपात होने से एक नमूने के संशोधन में छह मास से अधिक समय लग गया। इसका कारण यह था कि पामीर की एक बोली के लिए कोई दुभाषिया नहीं मिल सका था। हिन्दूकुश की काफिर बोलियों के बोलने वालों में से एक बोली के किसी प्रतिनिधि से सम्पर्क स्थापित नहीं हो सका। अन्त में बड़ी खोज के बाद एक गड़रिये के लड़के को काफी प्रलोभन देकर चित्राल लाया गया, पर वह वज्रमूर्ख और भयभीत भी था। वह अपनी मातृभाषा ही जानता था। संयोग से एक शेख मिल गए जो गडरिये की और चित्राल की भाषा जानते थे, उनके सहयोग से 'कथा' का अनुवाद हो सका। पर अनुवाद की भाषा शुद्ध है, यह निश्चय नहीं हो पाया। प्रत्येक बोली की परीक्षा करने के बाद ही उसके एक अथवा अनेक उदाहरण प्रकाशन के लिए चुने जाते थे। इन नमूनों से ही व्याकरण तथा अन्य विशेषताओं की संक्षिप्त रूप-रेखा तैयार की जाती थी। इसके बाद बोलियों का भाषाओं के अन्तर्गत वर्गीकरण किया जाता था और प्रत्येक भाषा के सम्बन्ध में एक विस्तृत भूमिका दी जाती थी, जिसमें उसके बोलनेवालों की संख्या तथा स्वभाव आदि, प्रत्येक बोली की विशेषताएँ तथा अन्य बोलियों से उसका सम्बन्ध, भाषा का प्राचीन इतिहास और अन्य भाषाओं के साथ उसके सम्बन्ध का भी उल्लेख किया जाता था। इसके साथ ही यदि उस बोली में साहित्य हो तो उसका विवरण तथा उसमें उपलब्ध ग्रन्थों की पूर्व सूची एवं उसके व्याकरण की संक्षिप्त रूपरेखा भी दी जाती थी।

तथ्यों का संग्रह

सर्वेक्षण के कार्यों को सम्पन्न करते समय इस बात पर सदैव विशेष ध्यान दिया गया कि जो भी परिणाम निकलें वे सिद्धान्त-रूप में न हों, अपितु वे तथ्यों का संग्रह हों। इसके लिए भाषा को किसी-न-किसी क्रम में रखना पड़ा और तब उनके वर्गीकरण की आवश्यकता हुई।

इसके बाद सिद्धान्तों का सहारा लेकर उनका पारस्परिक सम्बन्ध निर्धारित करना पड़ा, पर सर्वेक्षण को भाषाशास्त्र का विश्वकोष बनाने का उद्देश्य नहीं था। (यद्यपि भाषा-विज्ञानियों ने ग्रियर्सन के सर्वेक्षण का भरपूर उपयोग किया है—लेखक)।

सर्वेक्षण का कार्य करते समय यह कठिनाई हुई कि वास्तव में एक कथित

भाषा स्वतन्त्र भाषा है अथवा अन्य भाषा की बोली है—इसका निर्णय करना कठिन है। भाषा और बोली में इतना ही सम्बन्ध है जो पहाड़ और पहाड़ी में है। किन्तु इन दोनों की विभाजक रेखा खींचना कठिन है। कई बोलियाँ अँग्रेजी की भाँति विश्लेषणात्मक हैं किन्तु अन्य जर्मन की भाँति संश्लेषणात्मक हैं। इनमें से कुछ का व्याकरण अत्यन्त सरल है किन्तु कुछ ऐसी हैं जिनका व्याकरण जटिल है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इन सभी बोलियों को एक भाषा-विशेष की बोली मानना वैसा ही असंगत है जैसा जर्मन भाषा को अँग्रेज़ी की बोली मानना। सर्वेक्षण में प्रत्येक बोली को जिनका व्याकरण एक-दूसरे से भिन्न है, स्वतन्त्र भाषा के रूप में स्वीकार किया गया। बोलियों अथवा भाषाओं में भेद केवल पारस्परिक वार्ता-सम्बन्ध पर ही निर्भर नहीं करता। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्यों को भी दृष्टि में रखना आवश्यक है। सर्वप्रथम उनके व्याकरणिक गठन को दृष्टि में रखना होगा। भेदकरण को प्रभावित करनेवाला एक तथ्य और है और वह है जातीयता। असमिया भाषा को लोग स्वतन्त्र भाषा मानते हैं पर यदि इसके व्याकरणिक रूपों एवं शब्द-समूह पर विचार किया जाय तो इसे बंगला की एक बोली मानना होगा। फिर भी इस बात से कोई इन्कार नहीं करता कि असमिया एक स्वतन्त्र भाषा है। बोधगम्यता से भाषा-परिवार स्थिर नहीं होता। व्याकरण-रूप, जातीयता और साहित्य की दृष्टि से भी अन्तर देखा जाना चाहिए।

परिशिष्ट
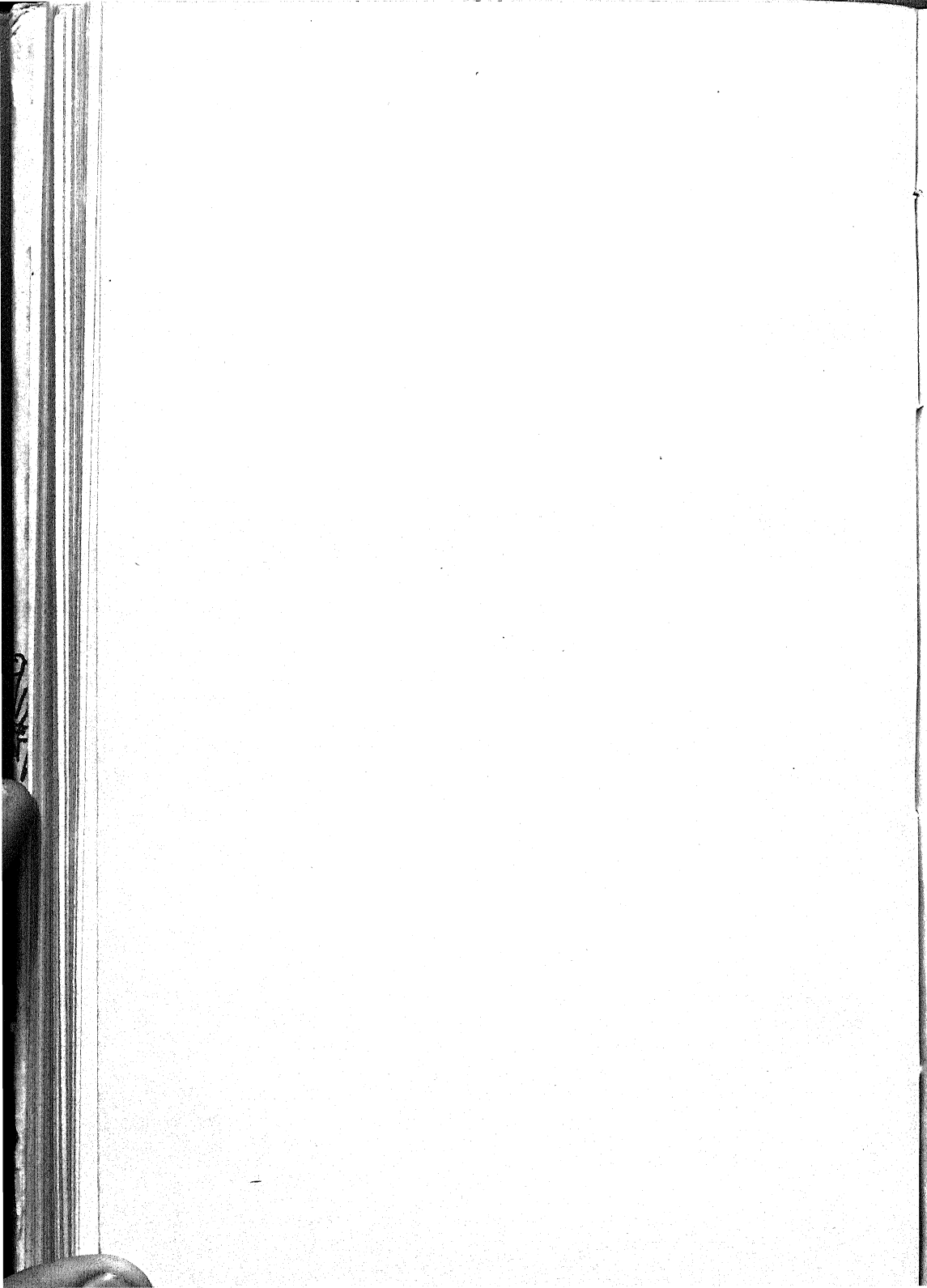
परिशिष्ट 'क'

कोश

हिन्दी-पद्य रूपी कोश

हिन्दी में संस्कृत कोशों के अनुकरण पर कोशों का निर्माण मध्यकाल में पद्य रूप में हुआ। उन ज्ञात कोशों के नाम नीचे दिए जाते हैं—

(1) अनेकार्थमंजरी : नन्ददास
(2) अनभै प्रबोध : गरीबदास (1616 ई०)
कर्णाभरण : (1781 ई०) हरचरणदास
(3) अल्लाखुदाई : (1688 ई०)
(4) खालिक बारी : (1) अमीर खुसरो
(5) तुहफ्तुल हिन्द : मिर्जा खाँ
(6) भाषा-चातुमाला : (1) लजित्
(7) भाषा शब्द-सिन्धु : (1713 ई०)
(8) डिंगलकोश।

ब्रिटिश कम्पनी-काल में प्रकाशित कोश

(1) हाब्सन-जाब्सन—कर्नल हेनरी मूले और ए० सी० बर्नेल
(2) डिक्शनरी ऑव मुहम्मडन ला—एस० रूसो
(3) ग्लासरी ऑव इंडियन टर्म्स—(1842) प्रो० विलसन
(4) सप्लीमेंट टू दी ग्लासरी ऑफ इंडियन टर्म्स—(1869) इलियट
(5) मोर्लेज एलालिटल डायजेस्ट—ग्लासरी ऑव नेटिव टर्म्स (1850)
(6) जिला डिक्शनरी—(1852) (चार्ल्स ब्राउन)
(7) ग्लासरी ऑव जूडीशियल एण्ड रेवेन्यू टर्म्स—(1855)
(8) कचहरी टेकनिकल्टीज़—(1877, पोर्डक कानगी)
(9) ग्लासरी ऑव इंडियन टर्म्स—1877
(10) ग्लासरी ऑव रिफ़रेंस—(1878 एच० ए० गाईल्स)
(11) ग्लासरी ऑव वर्नाक्यूलर टर्म्स—1879
(12) एंग्लो-इण्डियन डिक्शनरी—1885 जार्ज क्लिफर्ड

आधुनिक काल के कतिपय हिन्दीकोश

अँग्रेजों में अकारादि-क्रम से हिन्दी-कोश निर्माण किए जिनका अनुकरण हिन्दी-कोशकारों ने किया—

(1) मुंशी राधेलाल का कोश (1873 में प्रकाशित)
(2) विवेक कोश (बाबा बैजूदास-कृत, 1892 ई०)
(3) गौरीनागरी
(4) मंगल कोश (मुंशी मंगलीप्रसाद, सन् 1896 ई०, तृतीय संस्करण)
(5) श्रीधर भाषा कोश (1)
(6) भगवान शब्द-सागर : सन् 1891 ई०
(7) हिन्दी शब्द-सागर (नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित)
(8) प्रामाणिक हिन्दी शब्द-सागर
(9) नालन्दा विशाल शब्द-सागर
(10) बृहत् हिन्दी दर्शन-कोश
(11) मानक हिन्दी-कोश
(12) हिन्दी शब्द-संग्रह
(13) हिन्दुस्तानी-कोश (पं० हरिशंकर शर्मा)
(14) हिन्दुस्तानी-कोश (रामनरेश त्रिपाठी)।

कतिपय अँग्रेजी-हिन्दी कोश

इधर अँग्रेजी-हिन्दी कोशों का प्रकाशन अधिक संख्या में हुआ है—हो रहा है, उनमें से कुछ सामान्य हैं और कुछ पारिभाषिक हैं—

(1) भार्गव अँग्रेजी-हिन्दी कोश
(2) दी ट्वेंटिएथ सेंचुरी इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी[1]
(सुखसम्पत्ति राय भण्डारी)
(3) डॉ० रघुवीर का अंग्रेजी-हिन्दी कोश—इन्हीं के डिक्शनरी ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव टर्म्स, कंसोलीडेटेड ग्रेट इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी
(4) डॉ० हरदेव बाहरी का अँग्रेजी-हिन्दी कोश
(5) केन्द्रीय हिन्दी-निर्देशालय तथा तकनीकी-आयोग द्वारा प्रकाशित पारिभाषिक शब्दकोश
(6) मानक अँग्रेजी-हिन्दी कोश—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग
(7) अँग्रेजी-हिन्दी कोश—डॉ० कामिल बुल्के
(8) Dictionary English-Hindustani—जॉन वीर्चविक (लंदन)
(9) Dictionary English-Hindustani—रोवक

(10) Vocabulary English-Hindustani Dictionary—हैज़ेल ग्रीव
(11) The New English-Hindi Dictionary—डॉ॰ सूर्यकान्त
(12) Twentieth Century English-Hindi Dictionary—सुखसम्पत्तिराय भण्डारी
(13) English-Hindi Vocabulary of General Psychology—पी॰ विद्यार्थी
(14) English-Arabic, Persian, Sanskrit Vocabulary—पीटर ब्रीटन

साहित्य तथा विविध विषय-सम्बन्धी कोश

(1) साहित्य कोश (भाग 1) }
(2) साहित्य कोश (भाग 2) } सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा
(3) साहित्यिक शब्दावली—डॉ॰ प्रेमनारायण टंडन
(4) साहित्यशास्त्र-पारिभाषिक शब्द-कोश—राजेन्द्र द्विवेदी
(5) हिन्दी उपन्यास-कोश—गोपाल राय
(6) पुराण सन्दर्भ कोश—मेनन
(7) हिन्दी-विश्वकोश (बारह भाग)—काशी नागरी-प्रचारिणी सभा
(8) साहित्य समीक्षा-कोष—केन्द्रीय हिन्दी तकनीकी आयोग प्रकाशन
(9) मानविकी पारिभाषिक कोश—डॉ॰ नगेन्द्र द्वारा सम्पादित
(10) मानविकी पारिभाषिक कोश (दर्शन)—नरवणे

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित कोश

(1) मानविकी शब्दावली (i)—इतिहास, पुरातत्व और राजनीतिशास्त्र
(2) मानविकी शब्दावली (ii)—दर्शन, मनोविज्ञान, शिक्षा
(3) मानविकी शब्दावली (iii)—समाज-विज्ञान, समाज-मनोविज्ञान और समाज-कार्य
(4) मानविकी शब्दावली (i)—दर्शन, मनोविज्ञान, शिक्षा
(5) मानविकी शब्दावली—भाषा-विज्ञान
(6) आयुर्विज्ञान शब्दावली (i, ii)
(7) इंजीनियरिंग शब्दावली—भाग 1, 2, 3, मुद्रा-यान्त्रिकी, द्रव-यान्त्रिकी, रेल-इंजीनियरिंग, सिंचाई-इंजीनियरी

(8) विज्ञान-शब्दावली—अँग्रेजी-हिन्दी
(9) विज्ञान-शब्दावली—हिन्दी-अँग्रेजी
(10) कृषि-शब्दावली—भाग 1
(11) वाणिज्य शब्दावली—भाग 1 (अंग्रेजी-हिन्दी)

इंग्लिश-हिन्दी कोश के अतिरिक्त अन्य भाषा-कोश

(1) मलयालम-हिन्दी व्यावहारिक कोश—न० ई० विश्वनाथ अय्यर
(2) रूसी-हिन्दी-कोश—ब्रेस्कोव्नी (मास्को)
(3) उर्दू-हिन्दी-शब्दकोश—रामचन्द्र वर्मा
(4) उर्दू-हिन्दी-शब्दकोश—मुहम्मद मुस्तफा खाँ मदार, 'अहमक'
(5) बंगला-हिन्दी-शब्दकोश—गोपालचन्द्र चक्रवर्ती
(6) हिन्दी-तेलुगु-कोश—दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा
(7) हिन्दी-मलयालम-कोश
(8) हिन्दी-कन्नड़-कोश
(9) हिन्दी-तमिल-कोश—नेनो तथा जोशी
(10) हिन्दी-मराठी-कोश—श्री कृष्णलाल वर्मा
(11) हिन्दी-तेलुगु-कोश (शब्द-सिन्धु)—सं० सा गि सत्यनारायण
(12) अल्फ़ाज-ए-फारसी-औ-हिन्दी—हिन्दुस्तानी प्रेस, कलकत्ता
(13) रूसी-हिन्दी-कोश—वीर राजेन्द्र ऋषि

विविध कोश

(1) ए संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी—मोनियर विलियम्स
(2) इंग्लिश-संस्कृत-डिक्शनरी—मोनियर विलियम्स
(3) संस्कृत-इंग्लिश-डिक्शनरी (भाग 1, 2, 3)—प्रिंसिपल वी० एस० आप्टे
(4) वाङ्मयार्णव—पं० रामावतार शर्मा
(5) हलायुध कोश (अभिधान रत्नमाला)—संपा० जयशंकर जोशी
(6) प्रेक्टिकल हिन्दी-इंग्लिश डिक्शनरी—महेन्द्र चतुर्वेदी
(7) भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोश—सिद्धेश्वरी शास्त्री चित्राव
(8) विधि-शब्दावली—राजभाषा आयोग, भारत-सरकार, नई दिल्ली
(9) मीमांसा-कोश (भाग 1-6)—केवलानन्द सरस्वती
(10) राजस्थानी-शब्दकोश (खण्ड 1-5)—सीताराम लालस
(11) वाचस्पत्यम् (भाग 1-6)—तारानाथ तर्कवाचस्पति
(12) भारतीय व्यवहार-कोश—विश्वनाथ दिनकर नरवणे

(13) नेपाली डिक्शनरी : कम्पेरेटिव एण्ड एटिमालॉजिकल डिक्शनरी ऑव द नेपाली लेंग्वेज—संपा० डोरोथी, आर० टर्नर
(14) शिक्षा-विज्ञान-कोश—सीताराम जायसवाल
(15) शब्दार्थक ज्ञान कोश—रामचन्द्र वर्मा
(16) कहावत-कल्पद्रुम—दर्यावसिंह (1897 में प्रकाशित)
(17) हिन्दी मुहावरा कोश—डॉ० भोलानाथ तिवारी
(18) क्लासिकल डिक्शनरी ऑफ हिन्दू माइथालोजी एण्ड रिलीजन, जॉग्रफी, हिस्ट्री एण्ड लिट्रेचर—जॉन डॉसन
(19) नीति-सूक्ति-कोश—डॉ० रामसहाय
(20) राजनीतिकोश—सुभाष काश्यप एवं विष्णुप्रसाद गुप्त
(21) शब्दार्थ-दर्शन—रामचन्द्र वर्मा
(22) भाषाशास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश—राजेन्द्र द्विवेदी
(23) भाषाविज्ञान-कोश— डॉ० भोलानाथ तिवारी
(24) कहावत-कोश—डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र
(25) भारतीय चरिताम्बुधि कोश—चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

कवि-कोश

हिन्दी के कवियों ने अपनी रचनाओं में जिन शब्दों का प्रयोग किया है, उनके भी कोश प्रकाशित हो रहे हैं। नीचे कुछ कोशों के नाम दिये जाते हैं—

(1) तुलसी-शब्द-सागर
(2) ब्रजभाषा सूर-कोश—प्रेमनारायण टंडन
(3) प्रसाद-साहित्य-कोश (बाहरी)
(4) प्रसाद-काव्य-कोश—सुधाकर पाण्डे
(5) निराला-शब्दकोश—नलिन
(6) कामायनी की पारिभाषिक शब्दावली—वेदज्ञ आर्य
(7) वाल्मीकि-रामायण-कोश—रामकुमार राय
(8) महाभारत-कोश—रामकुमार राय

परिशिष्ट 'ख'

लोक-साहित्य सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

आर्थर डब्ल्यू० जे० तथा संकटाप्रसाद : भोजपुरी ग्राम्यगीत
आनन्द प्रकाश जैन : तेलंगाना की लोक-कथा
ईश्वर बराल : नेपाली और उसका साहित्य
उदयनारायण तिवारी : भोजपुरी भाषा और उसका साहित्य
उमाशंकर शुक्ल : बुन्देलखण्ड के लोक-गीत
उमेश मिश्र : मैथिली और उसका साहित्य
कन्हैयालाल सहल : राजस्थानी कहावतें
कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोकगीत
कृष्णदेव उपाध्याय : लोक-साहित्य की भूमिका
कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी और साहित्य
कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन
कृष्णलाल 'हंस' : निमाड़ी लोक-कथा, भाग 1, 2
कृष्णानन्द गुप्त : ईसुरी की फागें
गोपालकृष्ण कौल : अवध की लोक-कथाएँ
गोविन्द चातक : नेपाल की लोक-कथाएँ
गिरधारीलाल शर्मा : राजस्थानी प्राचीन गीत
चन्द्रकुमार अग्रवाल : छत्तीसगढ़ की लोक-कथाएँ
चिन्तामणि उपाध्याय : मालवी लोक-गीत
चिन्तामणि उपाध्याय : मालवी भाषा, एक शास्त्रीय अध्ययन
जगदीश चतुर्वेदी : बघेली लोक-साहित्य
जगन्नाथ शर्मा : आबू की लोक-कथाएँ
जगन्नाथ शर्मा : जर्मनी की लोक-कथाएँ
जगन्नाथ शर्मा : काजल-रेखा
जगदीश त्रिगुणायत : बाँसुरी बज रही और उसका साहित्य
जनक अरविन्द : भारत के आदिवासी
तेजकुमार : कालिदास की लोक-कथाएँ
तेजकुमार : विक्रम की लोक-कथाएँ

तेजकुमार : ग्रामीण कहावतें
तेजकुमार : मध्यप्रदेश की लोक-कथाएँ
तेजकुमार : मालवी लोक-कथाएँ
दुर्गाप्रसादसिंह : भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस
देवीलाल परमार : राजस्थानी लोक-कला, 1-3 भाग
देवीलाल परमार : राजस्थानी लोक-संगीत
देवीलाल परमार : राजस्थानी लोकानुरंजन
देवीलाल परमार : राजस्थान के लोक-नृत्य
देवेन्द्र सत्यार्थी : बाजत आवे ढोल
देवेन्द्र सत्यार्थी : चट्टान से पूछ लो
देवेन्द्र सत्यार्थी : क्या गोरी, क्या साँवरी
देवेन्द्र सत्यार्थी : धीरे बहो गंगा
देवेन्द्र सत्यार्थी : धरती गाती है
देवेन्द्र सत्यार्थी : बेला फूले आधी रात
देवेन्द्र सत्यार्थी : 'आजकल' का 'आदिवासी अंक'
देवेन्द्र सत्यार्थी : 'आजकल' का 'लोक-कथा अंक'
द्रोणवीर कोहली : लोककथाएँ
नरेन्द्र धीर : मैं धरती पंजाब की
नरेन्द्र धीर : धरती मेरी बोलती
नरेन्द्र धीर : लोक-साहित्य-पर्यवेक्षण
नरोत्तमदास स्वामी : राजस्थान
नन्दलाल चत्ता : कश्मीर की लोक-कथाएँ
नन्दलाल चत्ता : मनोरंजक लोक-कथाएँ
नन्दलाल चत्ता : केसर-क्यारी
प्यारेलाल : उज्जैन की लोक-कथाएँ
प्यारेलाल : सिंध की लोक-कथाएँ
प्यारेलाल : विदर्भ की लोक-कथाएँ
पुरुषोत्तम मेनारिया : राजस्थान की लोक-कथाएँ
प्रवासीलाल वर्मा : सौराष्ट्र की लोक-कथाएँ
प्रीतमसिंह पंछी : पंजाब की लोक-कथाएँ
बंशीलाल : डोगरी लोक-कथा
बसन्तलाल : मालवी की लोक-कथाएँ
भगवतीप्रसाद शुक्ल : बघेलखण्डी लोक-साहित्य
मन्मथनाथ गुप्त : बंगाल की लोक-कथाएँ

माधव : स्वर्ग पर चढ़ाई
महेन्द्र मित्तल : ग्राम लोक-कथाएँ
महेन्द्र मित्तल : पूर्वी भारत की लोक-कथाएँ
माताप्रसाद गुप्त : मुल्ला दाऊद की लोक-कथा
रमेश मटियानी : कुमाऊँ की लोक-कथाएँ
रतनलाल मेहता : मालवी कहावतें
रमेशचन्द्र प्रेम : बर्मा की लोक-कथाएँ
रहबर : जापान की लोक-कथाएँ
रहबर : चीन की लोक-कथाएँ
रहबर : रूस की लोक-कथाएँ
राधावल्लभ शर्मा : मगही संस्कार-गीत
रामइकबाल सिंह : मैथिली लोक-गीत
रामकिशोरी श्रीवास्तव : हिन्दी लोक-गीत
रामनरेश त्रिपाठी : मारवाड़ के मनोहर गीत
रामनरेश त्रिपाठी : कविता-कौमुदी, भाग 5
रामनरेश त्रिपाठी : कविता-कौमुदी ग्रामगीत
रामनरेश त्रिपाठी : हमारा ग्राम-साहित्य
रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम-साहित्य, भाग 1, 2, 3
रामनरेश त्रिपाठी : मोरी धरती मैया
रामनरेश त्रिपाठी : बघेलखण्डी और बुन्देलखण्डी कहावतें
श्रीकान्त व्यास : महाराष्ट्र की लोक-कथाएँ
श्रीकान्त व्यास : गुजरात की लोक-कथाएँ
श्रीकान्त व्यास : आसाम की लोक-कथाएँ
श्रीकृष्ण और रमेशकुमार : तिब्बत की लोक-कथाएँ
श्रीकृष्णदास : हमारी नाट्य-परम्परा
सन्तराम : पंजाबी गीत
सन्तराम वत्स्य : हिमाचल की लोक-कथाएँ
सन्तराम वत्स्य : बाहर कहाँ खोजे बन्दे
सावित्रीदेवी वर्मा : उत्तर भारत की लोक-कथाएँ
सत्यप्रिय शान्त : मुलतानी लोक-कथाएँ
सत्यव्रत सिन्हा : भोजपुरी लोक-गाथा
डॉ० सत्येन्द्र : ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन
डॉ० सत्येन्द्र : ब्रज की लोक-कहानियाँ
कन्हैयालाल मुंशी : जाहर पीर गुग्गा

कन्हैयालाल मुन्शी : ब्रज लोक-संस्कृति
सूर्यकरण पारिख : राजस्थानी लोक-गीत

अंग्रेजी में लोक-साहित्य

अबाट जे० : दी कीज ऑव पावर
विनयकुमार सरकार : फोक एलीमेंट्स इन हिन्दू कल्चर
क्रिश्चियन जे० : बिहार प्रावर्स ऐन इंट्रोडक्शन टू फोकलोर
डे० एल० बी : बंगाल पीजेण्ट लाइफ
डेसल्ड ए० पेकमझी : इण्डिया मीथ एण्ड लीजेण्ट
एलविन : सांग्ज ऑव फारेस्ट
एलविन : फोक सांग्ज ऑव माइकल हिल्स
एलविन : फोक टेल्स ऑव महाकोशल
एलविन : फोक टेल्स ऑव छत्तीसगढ़
एलविन : लीव्ज फ्रॉम दी जंगल
गाँगुली : फोक टेल्स ऑव इण्डिया
ग्रियर्सन : बिहार पीजेण्ट लाइफ
ग्रियर्सन : मरिया गौंड ऑव बस्तर
हिस्लाप एस० : पेपर्स रिलेटिंग टू दि एबोरिजिनल ट्राइब्ज ऑव सेंट्रल प्राविन्सेज़
मिनाइव जे० पी० : कण्टेंपोरेरी इण्डियन फोकलोर
नरेन्द्र धीर : क्लासिफिकेशन ऑव पंजाबी फोकलोर
पटेल एम० बी० : सम एस्पोट्स ऑव गुजराती फोक साँग
दुनीचन्द शर्मा : देवर-भाभी इन कांगड़ा फोक साँग
थर्सटन : ओमेन्स एंड सुपर्सटिशन्स ऑव सदर्न इण्डिया

परिशिष्ट 'ग'

पाठालोचित प्रमुख ग्रन्थ-सूची

अपभ्रंश-ग्रन्थ (जिनमें हिन्दी के विकास का आभास मिलता है।)

1. कीर्तिलता (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी) : डॉ० बाबूराम सक्सेना
2. पाहुड़ दोहा (जैन ग्रन्थमाला करंजा) : डॉ० हीरालाल जैन
3. प्राकृत पैंगलम :
4. दोहा-कोश : बागची
5. सन्देश-रासक : श्री मुनि जिनविजय
6. सन्देश-रासक : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
7. हिन्दी काव्यधारा : राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी-ग्रन्थ

1. अर्धकथा : डॉ० माताप्रसाद गुप्त
2. अर्धकथानक : श्री नाथूराम प्रेमी
3. अक्षर अनन्य की प्रेमदीपिका : लाला सीताराम
4. अक्षर अनन्य : अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव
5. आलम केलि : लाला भगवानदीन
6. अनुराग-बाँसुरी : चन्द्रबली पाण्डेय
7. इन्द्रावती : डॉ० श्यामसुन्दर दास
8. कबीर-सागर : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
9. कबीर-वचनावली : हरिऔध
10. कबीर-वचनावली : डॉ० श्यामसुन्दर दास
11. कबीर-ग्रन्थावली : पारसनाथ तिवारी
12. कबीर तथा कबीर-पदावली : डॉ० रामकुमार वर्मा
13. केशव-ग्रन्थावली : पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
14. घनानन्द : विश्वनाथप्रसाद मिश्र
15. घनानन्द का सुजान-शतक : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
16. (रसखान और) घनानन्द : नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी
17. चन्द्रसखी-पदावली : श्रीमहावीरसिंह गहलौत

18. चन्द्रसखी और उनका काव्य : श्रीमती शबनम
19. चन्द्रसखी की जीवनी और भजन : प्रभुदयाल मीतल
20. चन्द्रसखी के भजन और लोक-गीत : प्रभुदयाल मीतल
21. चतुर्भुजदास : विद्या विभाग, काँकरौली-प्रकाशन
22. छीत स्वामी : विद्या विभाग, काँकरौली-प्रकाशन
23. ठाकुर ठसक : लाला भगवानदीन
24. तानसेन और उनका काव्य : नर्मदेश्वर चतुर्वेदी
25. दीनदयाल गिरि-ग्रन्थावली : नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी
26. दूलह-कविकुल-कण्ठाभरण : मिश्रबन्धु
27. देवसुधा : मिश्रबन्धु
28. देव-ग्रन्थावली : मिश्रबन्धु
29. देवकृत भावविलास : भारतजीवन प्रेस, काशी
30. देवकृत अष्टयाम : भारतजीवन प्रेस, काशी
31. देवदर्शन : इण्डियन प्रेस, प्रयाग
32. नन्ददास (भाग 1, 2) : पं० उमाशंकर शुक्ल
33. नन्ददास-ग्रन्थावली : श्री ब्रजरत्नदास
34. नागरीदास नागर समुच्चय : ज्ञानसागर छापाखाना, बम्बई
35. नरोत्तमदास-कृत सुदामाचरित : पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
36. पद्मावत-संजीवन-भाष्य : वासुदेवशरण अग्रवाल
37. पद्मावत : नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
38. पद्मावत : चन्द्रप्रभा प्रेस, वाराणसी
39. पद्मावत : मौलवी अली हसन
40. पद्मावत : शेख अहमद अली
41. पलटूदास-ग्रन्थावली : हरिमोहन मालवीय
42. पदावली (विद्यापति) : सं० रामवृक्ष बेनीपुरी
43. पदावली (विद्यापति) : 'मित्र' और मजूमदार
44. पदावली (मीराँ) : विष्णुकुमार 'मंजु'
45. पदावली (मीराँ) : पं० परशुराम चतुर्वेदी
46. पजनेश-प्रकाश : नकछेदी तिवारी
47. पद्माकर-पंचामृत : पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
48. पद्माकर : पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
49. परमानन्द-सागर : विद्या-विभाग, काँकरौली (राजस्थान)
50. परमानन्द-सागर : गोवर्धनदास शुक्ल
51. पृथ्वीराज रासो : रॉयल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता

52. पृथ्वीराज रासो : ई० जे० लाजरस एण्ड कम्पनी, वाराणसी
53. पृथ्वीराज रासो : नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी
54. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा नामवरसिंह
55. पृथ्वीराज रासो (लघु संस्करण) : डॉ० वी० पी० शर्मा
56. पृथ्वीराज रासो : साहित्य-सदन, चिरगाँव
57. पृथ्वीराज रासो के दो समय : डॉ० भगीरथ मिश्र
58. भक्त कवि व्यासजी : श्री वासुदेव गोस्वामी
59. भाषा-भूषण : जसवन्तसिंह (वाणी-वितान, काशी)
60. भिखारीदास-ग्रन्थावली : मिश्रबन्धु
61. भक्तमाल : पं० रघुवंश शर्मा
62. भक्तमाल : श्री सीताराम शर्मा
63. भक्तमाल : नवलकिशोर प्रेस
64. मलूकदास ग्रन्थावली : हरिमोहन मालवीय
65. मधुमालती : डॉ० जयगोपाल मिश्र
66. मधुमालती : डॉ० माताप्रसाद गुप्त
67. माधवानल काम-कन्दला : हिन्दुस्तानी एकाडमी, प्रयाग
68. रामचरितमानस : इण्डियन प्रेस, प्रयाग
69. रामचरितमानस : बंगवासी फर्म, कलकत्ता
70. रामचरितमानस : भारती भण्डार, प्रयाग
71. रामचरितमानस : गीता प्रेस, गोरखपुर
72. रामचरितमानस : बलवेडियर प्रेस, प्रयाग
73. रामचरितमानस : खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर (डॉ० ग्रियर्सन)
74. रामचरितमानस : भागवतप्रसाद खत्री
75. रामचरितमानस : डॉ० माताप्रसाद गुप्त
76. रामचरितमानस : काशिराज-संस्करण (पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र)
77. तुलसी-ग्रन्थावली : हिन्दुस्तानी एकाडमी, प्रयाग
78. तुलसी-ग्रन्थावली : नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी (पं० रामचन्द्र शुक्ल)
79. रसलीन का रस-प्रबोध : नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
80. रसलीन का अंग-दर्पण : नकछेदी तिवारी
81. रसखान और उनका काव्य : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
82. रसखानि : पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
83. रामचन्द्रिका : नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
84. लखनसेन-पद्मावती कथा : नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

85. बीसलदेव रासो : नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी
86. बीसलदेव रासो : हिन्दी परिषद्, प्रयाग
87. सेनापति का कवित्त-रत्नाकर : पं० उमाशंकर शुक्ल
88. सतसई (बिहारी) : डॉ० ग्रियर्सन
89. सतसई (बिहारी) : भारतजीवन प्रेस, काशी
90. सतसई (बिहारी) : स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा
91. बिहारी-बोधनी : लाला भगवानदीन
92. बिहारी-रत्नाकर : जगन्नाथप्रसाद रत्नाकर
93. सूरसागर : नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी
94. सूरसागर : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
95. सूरसागर : नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
96. (क) सूरसागर : गो० ब्रजभूषण शर्मा
(ख) सूरसागर : के० एम० हिन्दी-संस्थान, आगरा-विश्वविद्यालय
97. सूरसारावली : कृष्णानन्द व्यासदेव
98. सूर-सारावली : प्रभुदयाल मीतल
99. सूर-सारावली : डॉ० प्रेमनारायण टण्डन
100. साहित्य-लहरी : नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
101. सुन्दर-सार : नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
102. सुन्दर-सार : पं० हरिनारायण शर्मा
103. सुन्दर-ग्रन्थावली : नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी
104. सुन्दर-ग्रन्थावली : हरिनारायण शर्मा
105. हित हरिवंश का हित-सुधासागर : श्री नारायणदास
106. हरिराम व्यास की व्यासवाणी : राधाकिशोर गोस्वामी
107. कृपाराम की हिततरंगिणी : जगन्नाथदास रत्नाकर
108. कवित्तरत्नाकर (सेनापति) : पं० उमाशंकर शुक्ल
109. गोरखवाणी : डॉ० बड़थ्वाल
110. जायसी-ग्रन्थावली : नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी
111. जायसी-ग्रन्थावली : हिन्दुस्तानी एकाडमी, प्रयाग
112. चित्ररेखा : हिन्दी-प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी
113. चित्ररेखा : श्री शिवसहाय पाठक
114. जायसी-ग्रन्थावली : लूजक एण्ड कम्पनी, लन्दन—(डॉ० लक्ष्मीधर)
115. बृजनिधि-ग्रन्थावली : नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी
116. बेलिकिशन रुक्मिणी री : रामसिंह तथा पारिख

117. बेलिकिशन रुक्मिणी री : विश्वविद्यालय-प्रकाशन, वाराणसी—
(आनन्दप्रकाश दीक्षित)
118. ढोला मारू रा दोहा : नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी
119. दादू-ग्रन्थावली : नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी
120. दादूदयाल : पं० परशुराम चतुर्वेदी
121. दादू ज्ञान प्रबोधिनी : स्वामी जीवानन्द
122. टीका सहित अनभेवाणी : आनन्द भिक्षु
123. दादूदयाल की वाणी : चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी
124. दयाराम-सतसई : श्री अम्बाशंकर नागर
125. नानक : डॉ० जयराम मिश्र
126. रहिमन-शतक : लाला भगवानदीन
127. रहीम-रत्नावली : मायाशंकर याज्ञिक
128. मीरा-माधवी : ब्रजरत्नदास
129. मीरा बृहत् पद-संग्रह : सुश्री पद्मावती शबनम
130. कुम्भनदास : विद्या विभाग, काँकरौली

परिशिष्ट 'घ'

स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

1. लक्ष्मीधर	मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' का सटिप्पण सम्पादन और अनुवाद—16 वीं शताब्दी की हिन्दी भाषा (अवधी) का अध्ययन
2. लक्ष्मीधर शास्त्री	ऋषि बरकत उल्लाह प्रेमी के 'प्रेम प्रकाश' का अनुसंधान, सम्पादन और अध्ययन
3. पारसनाथ तिवारी	कबीर की कृतियों के पाठ और समस्याओं का आलोचनात्मक अध्ययन
4. वेणीप्रसाद शर्मा	'पृथ्वीराज रासो' के लघुतम संस्करण का अध्ययन और उसके पाठ का आलोचनात्मक सम्पादन
5. तारकनाथ अग्रवाल	बीसलदेव रास-पाठ, अध्ययन एवं विवेचन,
6. लक्ष्मीधर मालवीय	देव के लक्षण-ग्रन्थों का पाठ तथा तत्सम्बन्धी पाठालोचन की समस्याएँ
7. मोहिउद्दीन कादरी	हिन्दुस्तानी ध्वनियों का अनुसंधान
8. नानकशरण निगम	हिन्दी भाषा का ध्वनिमूलक अनुसंधान
9. उमा माडवेल	हिन्दी में शब्द और अर्थ का मनोवैज्ञानिक अध्ययन
10. हरदेव बाहरी	हिन्दी-अर्थ-विज्ञान
11. शिवनाथ	हिन्दी-अर्थ-विचार
12. ओमप्रकाश गुप्त	हिन्दी-मुहावरे
13. रामचन्द्र राय	राजस्थान के हिन्दी-अभिलेखों (सन् 1150-1750) का पुरालिपि-सम्बन्धी (पैलियोग्राफिकल) और भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
14. डी० एन० श्रीवास्तव	आरम्भिक हिन्दी-गद्य का ऐतिहासिक वाक्य-विचार

15.	रघुवीरशरण	हिन्दी भाषा का रूप-वैज्ञानिक तथा वाक्य-वैज्ञानिक अध्ययन
16.	एम० एल० उप्रेति	हिन्दी में प्रत्यय-विचार
17.	केशवराम पाल	हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत-शब्दों का अर्थ-वैज्ञानिक अध्ययन (संस्कृत-विभाग)
18.	बाँकेलाल उपाध्याय	संस्कृतमूलक हिन्दी-गणितीय शब्दावली का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा भाषाशास्त्रीय अध्ययन
19.	रामसिंह	कृषि तथा ग्रामोद्योग की शब्दावली—एक अध्ययन
20.	शिवनन्दन	परिनिष्ठित हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत-शब्दों का अर्थ-परिवर्तन
21.	कैलाशचन्द्र भाटिया	हिन्दी में अँग्रेजी के आगत शब्दों का भाषा-तात्त्विक अध्ययन
22.	बाबूराम सक्सेना	अवधी का विकास
23.	देवीशंकर द्विवेदी	बैसवाड़ी का शब्द-सामर्थ्य
24.	अमरबहादुरसिंह	अवधी और भोजपुरी के सीमा-प्रदेश की बोली का अध्ययन
25.	धीरेन्द्र वर्मा	ब्रजभाषा
26.	शिवप्रसादसिंह	सूरपूर्व ब्रजभाषा (और उसका साहित्य)
27.	कनिका विश्वास	ब्रजबुली (ब्रजभाषा और ब्रजबुली का तुल-नात्मक अध्ययन)
28.	कपिलदेव सिंह	गत सौ वर्षों में कविता के माध्यम के लिए ब्रजभाषा-खड़ीबोली-सम्बन्धी विवाद की रूपरेखा
29.	गेंदालाल शर्मा	ब्रजभाषा और खड़ीबोली के व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन
30.	सितकंठ मिश्र	खड़ीबोली का आन्दोलन
31.	हरिश्चन्द्र शर्मा	खड़ीबोली (बोली-रूप) के विकास का अध्ययन
32.	श्रीराम शर्मा	दक्खिनी का रूप-विन्यास
33.	उदयनारायण तिवारी	भोजपुरी भाषा की उत्पत्ति और विकास
34.	विश्वनाथप्रसाद	भोजपुरी-ध्वनियों और ध्वनि-प्रक्रिया का अध्ययन

35.	नलिनीमोहन सान्याल	बिहारी भाषाओं की उत्पत्ति और विकास
36.	सुभद्र झा	मैथिली भाषा का विकास
37.	हीरालाल माहेश्वरी	राजस्थानी भाषा और साहित्य (11वीं से 16वीं शती)
38.	कन्हैयालाल सहल	राजस्थानी कहावतों की गवेषणा और वैज्ञानिक अध्ययन
39.	शंकरलाल शर्मा	कन्नौजी बोली का अनुशीलन तथा ठेठ ब्रज से तुलना
40.	सी० वी० रावत	मथुरा जिले की बोलियाँ
41.	गुणानन्द जुयाल	मध्य पहाड़ी भाषा (गढ़वाली-कुमाऊँनी) का अनुशीलन और उसका हिन्दी से सम्बन्ध
42.	जनार्दनप्रसाद काला	गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य
43.	हरिदत्त भट्ट	गढ़वाली का शब्द-सामर्थ्य
44.	गोविन्द सिंह कन्दारी	गढ़वाली बोली की रावल्टी उपबोली, उसके लोकगीत और उसमें अभिव्यक्त लोकसंस्कृति
45.	मोहनलाल शर्मा	खुरपल्टी : पदरूपांश तथा वाक्य
46.	जगदेवसिंह	बाँगरू भाषा का वर्णनात्मक व्याकरण
47.	रामस्वरूप चतुर्वेदी	आगरा जिले की बोली का अध्ययन
48.	शालिग्राम शर्मा	इलाहाबाद जिले की कृषि-सम्बन्धी शब्दावली का अध्ययन
49.	कृष्णलाल हंस	निमाड़ी और उसका लोक-साहित्य
50.	रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल	बुन्देली भाषा का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
51.	भालचन्द्र राव तेलंग	भारतीय आर्यभाषा-परिवार की मध्यवर्तिनी बोलियाँ (छत्तीसगढ़ी, हलवी, भतरी)
52.	हरिहरप्रसाद गुप्त	आजमगढ़ जिले की फूलपुर तहसील के आधार पर भारतीय ग्रामोद्योग-सम्बन्धी शब्दावली का अध्ययन
53.	अम्बाप्रसाद 'सुमन'	कृषकजीवन-सम्बन्धी शब्दावली (अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के आधार पर)
54.	विद्याभूषण विभु	हिन्दी-प्रदेश के हिन्दू पुरुषों के नामों का अध्ययन
55.	नामवरसिंह	रासो की भाषा

56.	मंगलबिहारी शरण	सिद्धों की सन्धा भाषा
57.	प्रेमनारायण शुक्ल	भक्तिकालीन हिन्दी-सन्त-साहित्य की भाषा (सं० 1375-1700)
58.	प्रेमनारायण टण्डन	सूरदास की भाषा
59.	निर्मला सक्सेना	सूरसागर की शब्दावली का अध्ययन
60.	देवकीनन्दन श्रीवास्तव	तुलसीदास की भाषा
61.	शिवशंकरप्रसाद	देवनागरी लिपि—ऐतिहासिक तथा भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
62.	समरबहादुरसिंह	अब्दुर्रहीम खानखाना—भारतीय इतिहास के स्रोतरूप में (इतिहास-विभाग)
63.	मुकुन्ददेव शर्मा	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—जीवनी और साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन
64.	सरनदास भनोत	आलम का 'स्याम सनेही'
65.	उषा इथापे	दक्खिनी हिन्दी की रचनाओं (इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय के शासनकाल में रचित 'इब्राहीमनामा' और 'किताब-ए-नवरस) का आलोचनात्मक अध्ययन
66.	एफ० ई० के०	कबीर तथा उनके अनुयायी
67.	गोविन्द त्रिगुणायत	कबीर की विचारधारा
68.	रामजीलाल सहायक	कबीरदास की दार्शनिक विचारधारा का आलोचनात्मक अध्ययन
69.	गिरीशचन्द्र तिवारी	कबीर के बीजक की टीकाओं की दार्शनिक व्याख्या
70.	कोल्लि वेंकटेश्वर रेड्डी	कबीर और वेमन का तुलनात्मक अध्ययन
71.	महेन्द्रनाथ मिश्र	किशोरीलाल गोस्वामी : जीवनी और साहित्य—एक अध्ययन
72.	कृष्णा नाग	किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों का वस्तुगत और रूपगत विवेचन
73.	हीरालाल दीक्षित	आचार्य केशवदास—एक अध्ययन
74.	विजयपालसिंह	केशव और उनका साहित्य
75.	किरणचन्द्र शर्मा	केशवदास—उनके रीति-काव्य का विशेष अध्ययन
76.	गार्गी गुप्त	रामकाव्य की परम्परा में 'रामचन्द्रिका' का अध्ययन

77.	जयराम मिश्र	आदिगुरु ग्रन्थसाहबजी के धार्मिक और दार्शनिक सिद्धान्त
78.	धर्मपाल मेनी	श्री गुरु ग्रन्थसाहब में उल्लिखित कवियों के धार्मिक विश्वासों का अध्ययन
79.	रामकुमार शुक्ल	गुरुग्रन्थ-साहित्य
80.	टी० एन० वी० आचार्य (रांगेय राघव)	श्री गुरु गोरखनाथ और उनका युग
81.	प्रसन्नी सहगल	गुरु गोन्दिसिंह—जीवनी और साहित्य
82.	मनोहरलाल गौड़	घनानन्द और मध्यकाल की स्वच्छन्द काव्य-धारा
83.	विपिन विहारी त्रिवेदी	चन्दवरदायी और उनका काव्य
84.	कृष्णचन्द्र अग्रवाल	पृथ्वीराज रासो के पात्रों का ऐतिहासिक अध्ययन
85.	विश्वम्भरनाथ भट्ट	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—उनकी प्रतिभा और कला
86.	ज्ञानवती अग्रवाल	जयशंकर 'प्रसाद' का काव्य और दर्शन
87.	दुर्गादत्त मेनन	प्रसाद : चिन्तन और कला
88.	प्रेमशंकर	जयशंकर प्रसाद के काव्य का विकास
89.	कामेश्वरप्रसाद सिंह	प्रसादजी की काव्य-प्रवृत्ति
90.	जगन्नाथप्रसाद शर्मा	प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन
91.	जगदीशचन्द्र जोशी	जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक
92.	द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन
93.	माताप्रसाद गुप्त	तुलसीदास — जीवनी और कृतियों का समालोचनात्मक अध्ययन
94.	रामदत्त भारद्वाज	गोस्वामी तुलसीदास—रत्नावली की जीवनी और रचना एवं सूकरखेत के तादात्म्य तथा इतिवृत्त के विशिष्ट परिचय से समन्वित गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-स्थान, आविर्भाव-काल, परिवार, व्यक्तित्व आदि का आलोचनात्मक अध्ययन
95.	राजपति दीक्षित	तुलसीदास और उनका युग
96.	श्रीधरसिंह	तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा
97.	हरिहरनाथ हुक्कू	रामचरितमानस के विशिष्ट सन्दर्भ में तुलसीदास की शिल्पकला का अध्ययन

98.	भाग्यवती सिंह	तुलसी की काव्यकला
99.	वचनदेव कुमार	तुलसी के भक्त्यात्मक गीत
100.	नरेन्द्रकुमार	तुलसीदास के काव्य में अलंकार-योजना
101.	रघुराजशरण शर्मा	तुलसीदास और भारतीय संस्कृति
102.	राजाराम रस्तोगी	तुलसीदास—जीवनी और विचारधारा
103.	जे० एन० कार्पेण्टर	तुलसीदास का धर्मदर्शन
104.	बलदेवप्रसाद मिश्र	तुलसी-दर्शन
105.	रामदत्त भारद्वाज	तुलसी-दर्शन (दर्शन-विभाग)
106.	उदयभानुसिंह	तुलसी-दर्शन-मीमांसा
107.	विष्णुशर्मा मिश्र	तुलसी का सामाजिक दर्शन
108.	महेशप्रसाद चतुर्वेदी	तुलसी का समाज-दर्शन
109.	वी० डी० पाण्डेय	रामचरितमानस की अन्तःकथाओं का आलोचनात्मक अध्ययन
110	राजकुमार पाण्डेय	रामचरितमानस का शास्त्रीय अध्ययन
111.	सी० वोदवील	रामचरितमानस के स्रोत और रचनाक्रम
112.	सीताराम कपूर	रामचरितमानस के साहित्यिक स्रोत
113.	विजयबहादुर अवस्थी	रामचरितमानस पर पौराणिक प्रभाव
114.	शम्भूलाल शर्मा	रामचरितमानस के विशिष्ट सन्दर्भ में तुलसीदास का शिक्षा-दर्शन
115.	लुइजि पिओ तेस्सितोरी	रामचरितमानस और रामायण का तुलनात्मक अध्ययन
116.	विद्या मिश्र	वाल्मीकि-रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन
117.	रामप्रकाश अग्रवाल	वाल्मीकि-रामायण और रामचरितमानस का साहित्यिक दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन
118.	शिवकुमार शुक्ल	रामायणेतर संस्कृत-काव्य और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन
119.	रामनाथ त्रिपाठी	कृत्तिवासी बंगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन
120.	कमलमाया सांकृत्यायन	महाकवि भानुभक्त की नेपाली रामायण और गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन

121.	सु० शंकर राजू नायडू	कम्ब-रामायणम् और तुलसी-रामायण का तुलनात्मक अध्ययन
122.	ओमप्रकाश दीक्षित	जैनकवि स्वयंभू के 'पउमचरिउ' (अपभ्रंश) तथा तुलसीकृत रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन
123.	अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी	तुलसी के काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण
124.	जगदीशनारायण	रामचरितमानस और रामचन्द्रिका का तुलनात्मक अध्ययन
125.	एम० जार्ज	तुलसीदास और रामभक्ति सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मलयालम कवि एडुतच्छन का तुलनात्मक अध्ययन
126.	मोहनराम यादव	रामलीला की उत्पत्ति तथा विकास (विशेषत: मानस की रामलीला)
127.	धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी	बिहार के सन्तकवि दरिया साहब
128.	धर्मपाल अष्टा	दशम ग्रन्थ का कवित्व
129.	रतनसिंह	दशम ग्रन्थ में पौराणिक रचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन
130.	नगेन्द्र नगाइच	रीतिकाल की भूमिका में देव का अध्ययन
131.	अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी	द्विजदेव और उनका काव्य
132.	केदारनाथ दुबे	हित ध्रुवदास और उनका साहित्य
133.	फैयाज अली खाँ	नागरीदास की कविता से सम्बन्धित प्रभावों एवं प्रतिक्रियाओं का अध्ययन
134.	ब्रजनारायण सिंह	पद्माकर और उनके समसामयिक
135.	रेवती सिंह	पद्माकर तथा उनके रचित ग्रन्थों का आलोचनात्मक अध्ययन
136.	गोवर्धनलाल शुक्ल	कविवर परमानन्द और उनका साहित्य
137.	श्यामशंकर दीक्षित	परमानन्ददास —जीवनी और कृतियाँ
138.	राजेश्वरप्रसाद गुरु	प्रेमचन्द—एक अध्ययन (जीवन, चिन्तन और कला)
139.	शंकरनाथ शुक्ल	उपन्यासकार प्रेमचन्द—उनकी कला, सामाजिक विचार और जीवन-दर्शन
140.	गीता लाल	प्रेमचन्द का नारी-चित्रण तथा उसको प्रभावित करनेवाले स्रोत

141.	महेन्द्र भटनागर	समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द (प्रेमचन्द के समस्यामूलक उपन्यास)
142.	गंगा पाठक	प्रेमचन्द और रमणलाल वसन्तलाल देसाई के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन
143.	भगवतीप्रसाद सिंह	उन्नीसवीं शती का रामभक्ति-साहित्य—विशेषत: महात्मा बनादास का अध्ययन
144.	रवीन्द्रकुमार जैन	कविवर बनारसीदास—जीवनी और कृतित्व
145.	राजेन्द्रप्रसाद शर्मा	पं० बालकृष्ण भट्ट—उनका जीवन और साहित्य
146.	नत्थनसिंह	बालमुकुन्द गुप्त—उनके जीवन और साहित्य का अध्ययन
147.	रामसागर त्रिपाठी	मुक्तक काव्य-परम्परा के अन्तर्गत बिहारी का विशेष अध्ययन
148.	गणपतिचन्द्र गुप्त	हिन्दी-काव्य में श्रृंगार-परम्परा और बिहारी
149.	नारायणदास खन्ना	आचार्य भिखारीदास
150.	रामप्रतिपाल मिश्र	सूफी कवि मंझन और उनका काव्य
151.	महेन्द्रकुमार	मतिराम—कवि और आचार्य
152.	त्रिभुवनसिंह	मध्यकालीन अलंकृत कविता और मतिराम
153.	पृथ्वीनाथ कमल कुलश्रेष्ठ	हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य—जायसी का विशेष अध्ययन
154.	शिवसहाय पाठक	(मलिक मुहम्मद) जायसी और उनका काव्य
155.	जयदेव कुलश्रेष्ठ	जायसी—उनकी कला और दर्शन
156.	गायत्री सिन्हा	पद्मावत में समाज-चित्रण
157.	त्रिलोकीनारायण दीक्षित	सन्त कवि मलूकदास
158.	उदयभानुसिंह	महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग
159.	छोटेलाल	मीराँबाई
160.	विमला गौड़	मीराँ के साहित्य के मूल स्रोतों का अनुसंधान
161.	उमाकान्त गोयल	मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता
162.	कमलाकान्त पाठक	गुप्तजी का काव्य-विकास
163.	ब्रजलाल वर्मा	सन्त-साहित्य के सन्दर्भ में सन्तकवि रज्जब का परिशीलन
164.	जयचन्द राय	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—एक अध्ययन

165. रामलाल सिंह — आचार्य शुक्ल के समीक्षा-सिद्धान्त
166. अम्बादत्त पन्त — अपभ्रंश काव्य-परम्परा और विद्यापति
167. मुरारीलाल शर्मा — अवधी-कृष्णकाव्य की परम्परा में भक्त-कवि लक्षदास और उनका काव्य
168. गोपाल व्यास — चाचा हितवृन्दावनदास और उनका साहित्य
169. शशिभूषण सिंहल — वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन
170. रामचन्द्र मिश्र — हिन्दी के आरम्भिक स्वच्छन्दतावादी काव्य और विशेषत: पं० श्रीधर पाठक की कृतियों का अनुशीलन
171. रामचन्द्र गंगराडे — सन्तकवि सिंगाजी—जीवन और कृतियाँ
172. त्रिलोकीनाथ सिंह — सूदन का सुजानचरित और उनकी भाषा
173. महेशचन्द्र सिंघल — सन्त सुन्दरदास
174. ब्रजेश्वर वर्मा — सूरदास—जीवनी और कृतियों का अध्ययन
175. हरवंशलाल शर्मा — सूर और उनका साहित्य
176. मुंशीराम शर्मा — भारतीय साधना और सूर-साहित्य
177. मनमोहन गौतम — सूर की काव्य-कला
178. जनार्दन मिश्र — सूरदास का धार्मिक काव्य
179. हरवंशलाल शर्मा — श्रीमद्भागवत और सूरदास
180. रामधन शर्मा — सूरदास के (कूट-पदों के विशिष्ट सन्दर्भ में) कूट-काव्य का अध्ययन
181. शिवनारायण बोहरा — भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
182. वीरेन्द्रकुमार शुक्ल — भारतेन्दु का नाट्य-साहित्य
183. अरविन्दकुमार देसाई — भारतेन्दु और नर्मद—एक तुलनात्मक अध्ययन
184. रामशंकर शुक्ल 'रसाल' — हिन्दी-काव्यशास्त्र का विकास
185. भगीरथ मिश्र — हिन्दी-काव्यशास्त्र का इतिहास
186. रामाधार शर्मा — हिन्दी में सैद्धान्तिक समीक्षा का विकास
187. सावित्री सिन्हा — ब्रजभाषा के कृष्णभक्तिकाव्य में अभिव्यंजना-शिल्प
188. सत्यदेव चौधरी — रीतिकाल के प्रमुख आचार्य
189. सुरेशचन्द्र गुप्त — आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त
190. आनन्दप्रकाश दीक्षित — काव्य में रस
191. तारकनाथ बाली — रस की दार्शनिक और नैतिक व्याख्या

192.	छैलबिहारी गुप्त 'राकेश'	मनोविज्ञान के प्रकाश में रस-सिद्धान्त का समालोचनात्मक अध्ययन
193.	राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	हिन्दी-कविता (1600-1850 ई०) में शृंगार रस का अध्ययन
194.	पूर्णमासी राय	कृष्ण-भक्ति में मधुर रस
195.	मिथिलेश कान्ति	हिन्दी-भक्तिकाव्य (सं० 1300-1700) में शृंगार रस
196.	ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव	हिन्दी-काव्य में करुण रस (1400-1700 ई०)
197.	तारा कपूर	हिन्दी-काव्य में करुण रस
198.	बरसानेलाल चतुर्वेदी	हिन्दी-साहित्य में हास्य रस
199.	आशा शिरोमणि	हिन्दी-काव्य में वात्सल्य रस
200.	करुणा वर्मा	हिन्दी के मध्यकालीन भक्ति-साहित्य (सं० 1500-1700) में वात्सल्य रस और सख्य का निरूपण
201.	श्रीनिवास शर्मा	आधुनिक हिन्दी-काव्य में वात्सल्य रस
202.	भोलाशंकर व्यास	ध्वनि-सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त
203.	राममूर्ति त्रिपाठी	लक्षणा और उसका प्रसार
204.	रणवीरसिंह	हिन्दी-काव्यशास्त्र के दोष-विवेचन
205.	कुन्दनलाल जैन	हिन्दी रीतिकालीन अलंकार-ग्रन्थों पर संस्कृत का प्रभाव (सं० 1700-1900)
206.	ओमप्रकाश कुलश्रेष्ठ	हिन्दी-साहित्य में अलंकार
207.	जगदीशनारायण त्रिपाठी	आधुनिक हिन्दी-काव्य में अलंकार-विधान
208.	देवेशचन्द्र	आधुनिक-काल की हिन्दी-कविता (1850-1950 ई०) में अलंकार-योजना
209.	छैलबिहारी गुप्त 'राकेश'	नायक-नायिका भेद
210.	पुष्पलता निगम	हिन्दी-महाकाव्यों में नायक
211.	जानकीनाथ सिंह 'मनोज'	हिन्दी छन्दःशास्त्र
212.	माहेश्वरीसिंह	मध्यकालीन हिन्दी-छन्द का ऐतिहासिक विकास
213.	शिवनन्दनप्रसाद	मध्यकालीन हिन्दी-काव्य में प्रयुक्त मात्रिक छन्दों का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन
214.	पुत्तूलाल शुक्ल	आधुनिक हिन्दी-कविता में छन्द
215.	रामयतनसिंह	हिन्दी-काव्य में कल्पना-विधान

216.	शैल श्रीवास्तव	आधुनिक हिन्दी-काव्य में कवि-कल्पना का स्वरूप और उसकी विवेचना
217.	मधुरमालती सिंह	आधुनिक हिन्दी-काव्य में विरह
218.	रमेशप्रसाद मिश्र	आधुनिक हिन्दी-काव्य-साहित्य के बदलते हुए मानों का अध्ययन
219.	शंकरदेव शर्मा	आधुनिक हिन्दी-साहित्य में काव्य-रूपों के प्रयोग—एक अध्ययन
220.	कैलाशचन्द्र वाजपेयी	आधुनिक हिन्दी-कविता का शिल्प-विधान
221.	मोहनलाल अवस्थी	आधुनिक हिन्दी-कविता का काव्य-शिल्प
222.	निर्मला जैन	आधुनिक हिन्दी-काव्य में रूप-विधाएँ
223.	वीरेन्द्रसिंह	हिन्दी-कविता में प्रतीकवाद का विकास
224.	चन्द्रकला	आधुनिक हिन्दी में प्रतीकवाद के प्रकार
225.	नित्यानन्द शर्मा	आधुनिक हिन्दी-काव्य में प्रतीक-विधान (1875-1935 ई०)
226.	रामप्रसाद मिश्र	खड़ीबोली-कविता में विरह-वर्णन
227.	आशा गुप्त	खड़ीबोली हिन्दी-काव्य में अभिव्यक्ति-कला (1920 तक)
228.	श्यामनन्दनप्रसाद किशोर	आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यों का शिल्प-विधान
229.	बीरबल सिंह 'रत्न'	हिन्दी की छायावादी कविता के कला-विधान का विवेचन
230.	विष्णुस्वरूप	कवि-समय-मीमांसा
231.	रामानन्द तिवारी	सत्यं शिवं सुन्दरम्
232.	लालताप्रसाद सक्सेना	हिन्दी-काव्य में मानव और प्रकृति
233.	रामगोपाल शर्मा	हिन्दी-काव्य में नियतिवाद
234.	शम्भूनाथ सिंह	हिन्दी में महाकाव्य का स्वरूप-विकास
235.	हरिश्चन्द्र राय	हिन्दी-साहित्य में महाकाव्य
236.	शंकरलाल मेहरोत्रा	हिन्दी-महाकाव्यों में नाट्य-तत्त्व
237.	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	गीतिकाव्य का उद्गम, विकास और हिन्दी-साहित्य में उसकी परम्परा
238.	दयाशंकर शुक्ल	हिन्दी का समस्यापूर्ति-काव्य
239.	रामसिंह चौहान	हिन्दी-कविता में जनवादी प्रवृत्तियाँ
240.	टीकमसिंह तोमर	हिन्दी वीरकाव्य (1600-1800 ई०)

241.	क्रान्तिकुमार शर्मा	हिन्दी-साहित्य में राष्ट्रीय काव्यधारा का विकास
242.	किरणकुमार गुप्त	हिन्दी-कविता में प्रकृति-चित्रण
243.	रघुवंशसहाय वर्मा	हिन्दी-साहित्य के भक्ति और रीतिकालों में प्रकृति और काव्य
244.	एम० एस० प्रचंडिया	हिन्दी का बारहमासा-साहित्य—उसका इतिहास तथा अध्ययन
245.	दयाशंकर शर्मा	हिन्दी में पशुचारण-काव्य
246.	शकुन्तला दुबे	हिन्दी-काव्यरूपों का उद्भव और विकास
247.	ब्रजमोहन गुप्त	हिन्दी-काव्य में रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ
248.	विद्या सिंह	हिन्दी-काव्य में रहस्यवाद
249.	भोलानाथ तिवारी	हिन्दी-नीतिकाव्य
250.	रामस्वरूप	हिन्दी में नीतिकाव्य का विकास (सं० 1900 तक)
251.	देवीशरण रस्तोगी	हिन्दी-नीतिकाव्य (आदिकाल से भारतेन्दु-युग तक)
252.	संसारचन्द्र मेहरोत्रा	हिन्दी-काव्य में अन्योक्ति
253.	जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव	डिंगल पद्य-साहित्य का अध्ययन
254.	विद्याभूषण मंगल	मध्ययुगीन और आधुनिक हिन्दी-कविता में पेड़-पौधे और पशु-पक्षी
255.	जगमोहन राय	हिन्दी का पद-साहित्य
256.	मुंशीराम शर्मा	वैदिक भक्ति और हिन्दी के मध्यकालीन काव्य में उसकी अभिव्यक्ति
257.	सियाराम तिवारी	हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य
258.	कपिलदेव पाण्डेय	मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य में अवतारवाद
259.	सत्यवती गोयल	मध्यकालीन हिन्दी-कविता में दोहा
260.	ब्रजविलास श्रीवास्तव	मध्यकालीन हिन्दी-प्रबन्धकाव्यों में कथानक-रूढ़ियाँ
261.	इन्द्रपाल सिंह	आदिकालीन हिन्दी-साहित्य की प्रवृत्तियाँ
262.	शिवशंकर शर्मा	भक्तिकालीन हिन्दी-साहित्य में योग-भावना
263.	ब्रजलाल	निर्गुण और सगुण-काव्य में रहस्यात्मक अनुभूति का स्वरूप
264.	प्रेमसागर जैन	हिन्दी के भक्ति-काव्य में जैन-साहित्यकारों का योगदान (सं० 1400-1800)

265.	रामबाबू शर्मा	पन्द्रहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक हिन्दी के काव्यरूपों का अध्ययन
266.	गोविन्द त्रिगुणायत	हिन्दी की निर्गुण-काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि
267.	श्यामसुन्दर शुक्ल	हिन्दी-काव्य की निर्गुण-धारा में भक्ति का स्वरूप
268.	त्रिलोकीनारायण दीक्षित	चरनदास, सुन्दरदास और मलूकदास के दार्शनिक विचार
269.	ओमप्रकाश शर्मा	हिन्दी सन्त-साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि
270.	रामखेलावन पाण्डेय	मध्यकालीन सन्त-साहित्य
271.	केशनीप्रसाद चौरसिया	मध्यकालीन हिन्दी सन्त-साहित्य की साधना-पद्धति
272.	सरला शुक्ल	जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि
273.	रामपूजन तिवारी	हिन्दी-सूफीकाव्य की भूमिका—सूफीमत, साधना और साहित्य
274.	विमलकुमार जैन	सूफीमत और हिन्दी-साहित्य
275.	हरिकान्त श्रीवास्तव	हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यान
276.	गिरधारीलाल शास्त्री	हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य की पृष्ठभूमि
277.	बालमुकुन्द गुप्त	हिन्दी में कृष्णकाव्य का विकास
278.	डी० एस० मिश्र	हिन्दी-काव्य में कृष्ण का चारित्रिक विकास
279.	सरोजिनीदेवी कुलश्रेष्ठ	मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य में कृष्ण (विकासवार्ता)
280.	द्वारिकाप्रसाद मीतल	भक्तिकालीन कृष्ण-काव्य में राधा का स्वरूप
281.	रूपनारायण	ब्रजभाषा के कृष्ण-काव्य में माधुर्य भक्ति (1550-1650)
282.	एस० एन० पाण्डेय	हिन्दी कृष्णकाव्य में माधुर्योपासना
283.	शरणविहारी गोस्वामी	हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में सखीभाव
284.	श्यामसुन्दरलाल दीक्षित	कृष्णकाव्य में भ्रमरगीत
285.	स्नेहलता श्रीवास्तव	हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा
286.	हरीसिंह	कृष्ण-काव्यधारा में मुसलमान कवियों का योगदान (1600-1850)
287.	उषा गुप्त	हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्णकाव्य में संगीत

288.	राजकुमारी मित्तल	हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्णभक्ति-साहित्य में रीतिकाव्य-परम्परा
289.	कामिल बुल्के	रामकथा—उत्पत्ति और विकास
290.	राम औतार	रामभक्ति और हिन्दी-साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति
291.	भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना
292.	सुधा गुप्त	विभिन्न युगों में सीता का चरित्र-चित्रण तथा तुलसीदास में उसकी चरम परिणति
293.	रामनिरंजन पाण्डेय	भक्तिकालीन हिन्दी-कविता में दार्शनिक प्रवृत्तियाँ—रामभक्ति शाखा
294.	,,	रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि
295.	विष्णुशरण इन्दु	हिन्दी-साहित्य में भक्ति और रीति की सन्धिकालीन प्रवृत्तियों का विवेचनात्मक अनुशीलन
296.	बच्चनसिंह	रीतिकालीन कवियों की प्रेमा-व्यंजना
297.	आर० पी० मित्तल	रीतिकाव्य में रूप-चित्रण
298.	देवीशंकर अवस्थी	अठारहवीं शताब्दी में प्रेम-भक्ति (ब्रजभाषा-कविता)
299.	उमा मिश्र	रीतिकालीन काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध
300.	पंजाबीलाल शर्मा	रीतिकालीन निर्गुणभक्ति-काव्य
301.	हरिकृष्ण पुरोहित	आधुनिक हिन्दी-साहित्य की विचारधारा (1870-1950)
302.	कीर्तिलता	भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम और उसका आधुनिक हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव
303.	शकुन्तला वर्मा	आधुनिक हिन्दी-साहित्य में गांधीवाद
304.	बलभद्रप्रसाद तिवारी	आधुनिक हिन्दी-साहित्य में व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ
305.	सुषमा पाराशर	स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी-साहित्य की प्रवृत्तियाँ
306.	राजेन्द्रप्रसाद मिश्र	आधुनिक काव्य और काव्यवादों का अध्ययन

307.	केसरीनारायण शुक्ल	आधुनिक काव्यधारा
308.	रामेश्वरलाल खण्डेलवाल	आधुनिक हिन्दी-कविता में प्रेम और सौन्दर्य
309.	कमलारानी तिवारी	आधुनिक हिन्दी-काव्य में सौन्दर्य
310.	गोपालदत्त सारस्वत	आधुनिक हिन्दी-काव्य में परम्परा तथा प्रयोग
311.	सुरेशचन्द्र जैन	आधुनिक हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास
312.	परशुराम शुक्ल 'विरही'	आधुनिक हिन्दी-काव्य में यथार्थवाद (भारतेन्दु-युग में 1950 तक की कविता का अध्ययन)
313.	विद्याराम कमल मिश्र	आधुनिक हिन्दी-साहित्य के स्वच्छन्दतावादी काव्य का अनुशीलन
314.	गोविन्दराम शर्मा	हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य
315.	प्रतिपालसिंह	बीसवीं शती के महाकाव्य
316.	शुभकारनाथ कपूर	बीसवीं शताब्दी के रामकाव्य
317.	सरोजिनीदेवी अग्रवाल	आधुनिक हिन्दी-काव्य में गीत-भावना का विकास
318.	जगदीशप्रसाद वाजपेयी	आधुनिक ब्रजभाषा-काव्य का विकास (सं० 1900-2000)
319.	विश्वनाथ गौड़	आधुनिक हिन्दी-काव्य में रहस्यवाद
320.	शम्भुनाथ पाण्डेय	आधुनिक हिन्दी-काव्य में निराशावाद
321.	अविनाशचन्द्र अग्रवाल	भारतेन्दुयुगीन हिन्दी-कवि
322.	ब्रह्मदत्त मिश्र 'सुधीन्द्र'	द्विवेदी-युग की हिन्दी-कविता का पुनरुत्थान (1901-20 ई०)
323.	शिवकुमार मिश्र	छायावाद-युग के पश्चात् हिन्दी-काव्य की विविध विकास-दिशाएँ (1936-1958 ई०)
324.	शम्भूनाथ चतुर्वेदी	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-कविता
325.	राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	आधुनिक कविता की मूल प्रवृत्तियाँ
326.	शारदा वेदालंकार	हिन्दी-गद्य का विकास (1800-1856)
327.	कृष्णकुमार मिश्र	हिन्दी-गद्य साहित्य का विकास
328.	ब्रजमोहन शर्मा	हिन्दी-गद्य (भाषा और साहित्य) का निर्माण एवं विकास : देश के सुधारवादी और राजनीतिक आन्दोलनों के प्रकाश में परीक्षण (अद्यावधि)

329.	बलवन्त लक्ष्मण कोतमिरे	हिन्दी-गद्य के विविध साहित्य-रूपों के उद्भव और विकास का अध्ययन
330.	प्रेमप्रकाश गौतम	हिन्दी का प्राचीन और मध्यकालीन गद्य
331.	राजकिशोर पाण्डेय	दक्खिनी का प्रारम्भिक गद्य
332.	शंकरदयाल चौऋषि	द्विवेदीयुगीन हिन्दी-गद्यशैलियाँ
333.	माधुरी दुबे	हिन्दी-गद्य का वैभव-काल (1925-1950)
334.	पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'	हिन्दी-गद्यकाव्य का आलोचनात्मक और रूपात्मक अध्ययन
335.	अष्टभुजाप्रसाद पाण्डेय	हिन्दी में काव्य का विकास
336.	शिवनन्दन पाण्डेय	भारतीय नाटक का उद्भव और विकास
337.	सोमनाथ गुप्त	हिन्दी नाटक-साहित्य का इतिहास
338.	वेदपाल खन्ना	हिन्दी-नाटक का उद्भव और विकास
339.	दशरथ ओझा	हिन्दी-नाटक का उद्भव और विकास
340.	गोपीनाथ तिवारी	भारतेन्दुकालीन नाटक-साहित्य
341.	भानुदेव शुक्ल	भारतेन्दु-युग के नाटककार
342.	वासुदेवनन्दन प्रसाद	भारतेन्दुकालीन नाटक और रंगमंच
343.	सावित्री खरे	प्रसाद के पश्चात् हिन्दी-नाटकों का विकास
344.	रामकिशोरी श्रीवास्तव	हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों का अध्ययन
345.	नवरत्न कपूर	हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक, उनकी मूलभूत प्रवृत्तियाँ और प्रेरक शक्तियाँ
346.	देवर्षि सनाढ्य	हिन्दी के पौराणिक नाटकों का आलोचनात्मक अध्ययन
347.	दशरथ सिंह	आधुनिक हिन्दी-साहित्य में स्वच्छन्दतावादी नाटकों का विकास
348.	कमलिनी मेहता	नाटकों में यथार्थवाद
349.	कमला शर्मा	आधुनिक हिन्दी-नाटकों में नारी-चित्रण (बाबू हरिश्चन्द्र से लेकर 'अश्क' तक)
350.	रामचरण महेन्द्र	हिन्दी में एकांकी नाटक
351.	सुरेशचन्द्र अवस्थी	हिन्दी के नाट्य-रूपों का विकास (एक शिल्पगत अध्ययन)
352.	शान्तिदेवी बत्रा	हिन्दी-नाटक की शिल्प-विधि का विकास (भारतेन्दु युग से 1955 तक)
353.	सन्तप्रसाद	हिन्दी भावप्रतीक, गीतिनाट्य तथा रेडियो-नाटक और उनके लेखक

354. देवराज उपाध्याय — आधुनिक हिन्दी-कथासाहित्य और मनोविज्ञान
355. शिवनारायणलाल श्रीवास्तव — हिन्दी-उपन्यास का विकास
356. सुखदेवप्रसाद शुक्ल — हिन्दी-उपन्यास का विकास और नैतिकता
357. कैलाश प्रकाश — प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास
358. शारदा अग्रवाल — द्विवेदी-युग के उपन्यासों का अध्ययन
359. सुषमा धवन — प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी-उपन्यास की प्रवृत्तियाँ और प्रभाव
360. शिव भार्गव — प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी-उपन्यास
361. गोविन्दप्रसाद शर्मा — हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन
362. कमलकुमारी जौहरी — हिन्दी के स्वच्छन्तावादी उपन्यास
363. चण्डीप्रसाद जोशी — बीसवीं शताब्दी के हिन्दी-उपन्यासों का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अध्ययन
364. एस० एन० अग्निहोत्री — हिन्दी उपन्यास-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन
365. ओम शुक्ल — हिन्दी-उपन्यासों की शिल्प-विधि का विकास
366. प्रतापनारायण टण्डन — हिन्दी-उपन्यासों में कथाशिल्प का विकास
367. रणवीरचन्द्र रांग्रा — हिन्दी-उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का विकास
368. भीष्म साहनी — हिन्दी-उपन्यास में नायक की परिकल्पना
369. ब्रह्मदत्त शर्मा — हिन्दी-कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन
370. सीता हाँडा — आधुनिक हिन्दी-साहित्य में आख्यायिका के विकास का विवेचनात्मक अध्ययन
371. लक्ष्मीनारायण लाल — हिन्दी-कहानियों की शिल्प-विधि का विकास और उद्गम-सूत्र
372. उमेशचन्द्र त्रिपाठी — हिन्दी-निबन्ध के विकास का आलोचनात्मक अध्ययन
373. ओंकारनाथ शर्मा — हिन्दी-साहित्य में निबन्ध का विकास
374. भगवतस्वरूप मिश्र — हिन्दी-साहित्य में आलोचना का उद्भव और विकास

375. राजकिशोर कक्कड़ — आधुनिक हिन्दी-साहित्य में समालोचना का विकास (1868-1943)

376. वेंकट शर्मा — आधुनिक हिन्दी-साहित्य में समालोचना का विकास

377. हरिमोहन मिश्र — आधुनिक हिन्दी-आलोचना

378. रामदरश मिश्र — आधुनिक आलोचना की प्रवृत्तियाँ

379. किशोरीलाल गुप्त — 'शिवसिंह-सरोज' में दिये कवियों-सम्बन्धी तथ्यों एवं तिथियों का आलोचनात्मक परीक्षण

380. रामकुमार वर्मा — हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (सं० 750-1700 वि०)

381. शिवस्वरूप शर्मा — राजस्थानी के गद्य-साहित्य का इतिहास और विकास

382. जयकान्त मिश्र — मैथिली-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (आदिकाल से लेकर वर्तमान समय तक) और उस पर अंग्रेजी का प्रभाव (अंग्रेजी-विभाग)

383. आनन्दप्रकाश माथुर — सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दियों की अवस्था का हिन्दी-साहित्य के आधार पर अध्ययन (अंग्रेजी)

384. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — हिन्दी-साहित्य और उसकी सांस्कृतिक भूमिका

385. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — आधुनिक हिन्दी-साहित्य (1850-1900 ई०)

386. श्रीकृष्णलाल — हिन्दी-साहित्य का विकास (1900-1925 ई०)

387. भोलानाथ — हिन्दी-साहित्य (1926-1947 ई०)

388. किशोरीलाल गुप्त — हिन्दी-साहित्य (सं० 1649-1945) के इतिहास के विभिन्न स्रोतों का विश्लेषण

389. मीरा श्रीवास्तव — मध्ययुगीन हिन्दी-कृष्णभक्ति-धारा और चैतन्य-सम्प्रदाय

390. रामदेव ओझा — नाथ-सम्प्रदाय का मध्यकालीन हिन्दी-भाषा और साहित्य पर प्रभाव

391. शान्तिप्रसाद चन्दोला — नाथ-सम्प्रदाय के हिन्दी कवि

392.	एन० डी० शर्मा	निम्बार्क-सम्प्रदाय और उसके कृष्णभक्त हिन्दी कवि
393.	पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल	हिन्दी-काव्य में निर्गुण-सम्प्रदाय
394.	प्रयागदत्त तिवारी	सन्तकवि पलटूदास और सन्त-सम्प्रदाय
395.	भगवतीप्रसाद शुक्ल	बावरी-सम्प्रदाय के हिन्दी-कवि
396.	भगवद्व्रत मिश्र	सन्तकवि रविदास और उनका पन्थ
397.	भगवतीप्रसाद सिंह	रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय
398.	विजयेन्द्र स्नातक	राधावल्लभ-सम्प्रदाय के सन्दर्भ में हित-हरिवंश का विशेष अध्ययन
399.	राधिकाप्रसाद त्रिपाठी	रामसनेही-सम्प्रदाय
400.	बद्रीनारायण श्रीवास्तव	रामानन्द-सम्प्रदाय तथा हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव
401.	गोपीवल्लभ नेमा	रामानन्द-सम्प्रदाय के कुछ अज्ञात कवि और उनकी रचनाएँ
402.	दीनदयालु गुप्त	वल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियों (विशेषकर परमानन्ददास और नन्ददास) का अध्ययन
403.	रामचन्द्र तिवारी	शिवनारायणी-सम्प्रदाय और उसका हिन्दी-काव्य
404.	गोपालदत्त शर्मा	स्वामी हरिदासजी का सम्प्रदाय और उसका वाणी-साहित्य
405.	ब्रजकिशोर मिश्र	अवध के प्रमुख हिन्दी-कवियों का अध्ययन (सं० 1700-1900)
406.	मोतीलाल मेनारिया	ब्रजभाषा-साहित्य को राजस्थान की देन (राजस्थान का पिंगल-साहित्य)
407.	सूरजप्रसाद शुक्ल	बैसवाड़े के हिन्दी-कवि
408.	मोतीलाल गुप्त	हिन्दी-साहित्य को मत्स्य प्रदेश की देन
409.	विमला पाठक	अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि
410.	राजकुमारी शिवपुरी	राजस्थान के राजघरानों द्वारा हिन्दी-साहित्य की सेवाएँ तथा उनका साहित्यिक मूल्यांकन
411.	विमला पाठक	रीवाँ-दरबार के हिन्दी-कवि
412.	महेन्द्रप्रताप सिंह	भगवन्तराय खीची और उनके मण्डल के कवि

413.	सरोजिनी श्रीवास्तव	मिश्रबन्धु और उनका साहित्य—एक अध्ययन
414.	ललितेश्वर झा	मैथिली के कृष्णभक्त कवियों का अध्ययन
415.	अम्बाशंकर नागर	गुजरात की हिन्दी-सेवा
416.	नटवरलाल अम्बालाल व्यास	गुजरात के कवियों की हिन्दी-साहित्य को देन
417.	विनयमोहन शर्मा	हिन्दी को मराठी सन्तों की देन
418.	विमला बाघ्रे	दक्खिनी के सूफी लेखक
419.	सोमनाथ शुक्ल	हिन्दी-साहित्य के आधार पर भारतीय संस्कृति
420.	सुरेन्द्रबहादुर त्रिपाठी	मध्यकालीन हिन्दी-कविता में भारतीय संस्कृति (1700-1900)
421.	गणेशदत्त	मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य में चित्रित समाज
422.	वेंकट रमण	कवित्रय (कबीर-सूर-तुलसी)—सामाजिक पक्ष
423.	सावित्री शुक्ल	हिन्दी सन्त-काव्य की सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि
424.	मोतीसिंह	निर्गुण-साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
425.	रामनरेश वर्मा	सगुण भक्तिकाव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
426.	श्यामेन्द्र प्रकाश शर्मा	अष्टछाप-कवियों के काव्य (विशेषकर सूर-साहित्य) में वर्णित ब्रज-संस्कृति
427.	मायारानी टण्डन	अष्टछाप-कवियों की कविता का सांस्कृतिक अध्ययन
428.	रामशरण बत्रा	हिन्दी राम-काव्य की सामाजिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि (16वीं तथा 17वीं शती)
429.	इन्द्रनाथ मदान	सामाजिक वातावरण के विशिष्ट सन्दर्भ में आधुनिक हिन्दी-साहित्य की समालोचना
430.	कृष्णबिहारी मिश्र	आधुनिक सामाजिक आन्दोलन एवं आधुनिक हिन्दी-साहित्य (1900-1950 ई०)
431.	गायत्रीदेवी वैश्य	आधुनिक हिन्दी-कविता में समाज (1850-1950 ई०)

432.	गौरीशंकर सत्येन्द्र	ब्रज-लोकसाहित्य का अध्ययन
433.	सत्या गुप्त	खड़ीबोली के लोकसाहित्य का अध्ययन
434.	कृष्णदेव उपाध्याय	भोजपुरी लोकसाहित्य
435.	बद्रीनाथ परमार	मालव लोकसाहित्य
436.	वी० पी० शुक्ल	बघेली लोकसाहित्य का अध्ययन
437.	शंकरलाल यादव	हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य
438.	चिन्तामणि उपाध्याय	मालवी लोकगीत
439.	स्वर्णलता अग्रवाल	राजस्थानी लोकगीत
440.	कृष्णचन्द्र शर्मा	मेरठ-जनपद के लोकगीतों का अध्ययन
441.	तेजनारायण लाल	मैथिली लोकगीतों का अध्ययन
442.	अणिमा सिंह	मैथिली लोकगीत
443.	चन्द्रकला त्यागी	बुलन्दशहर के संस्कार-सम्बन्धी लोकगीतों का मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग के आधार पर अध्ययन
444.	शालिग्राम गुप्त	ब्रज और बुन्देली लोकगीतों में कृष्णवार्ता
445.	सत्यव्रत सिन्हा	भोजपुरी लोकगाथा
446.	कृष्णकुमार शर्मा	राजस्थानी लोकगाथाएँ
447.	त्रिलोचन पाण्डेय	कुमायूँ के जनसाहित्य का अध्ययन (नैनीताल, अलमोड़ा क्षेत्र)
448.	प्रभुनारायण शर्मा	राजस्थानी लोकनाटक (ख्याल साहित्य का एक अध्ययन)
449.	रामदास प्रधान	बघेलखण्ड की लोकोक्तियाँ, मुहावरे और लोककथाएँ
450.	सत्यदेव ओझा	भोजपुरी कहावतों का सांस्कृतिक अध्ययन
451.	गौरीशंकर सत्येन्द्र	मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य के प्रेमगाथा-काव्य और भक्तिकाल में लोकवार्ता-तत्व
452.	रवीन्द्रनाथ राय	हिन्दी भक्ति-साहित्य में लोकतत्त्व
453.	इन्द्रा जोशी	हिन्दी उपन्यासों में लोकतत्त्व
454.	सावित्री सिन्हा	मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ
455.	श्यामसुन्दर यादोराम व्यास	हिन्दी महाकाव्यों में नारी-चित्रण
456.	शान्तिदेवी श्रीवास्तव	मध्ययुगीन-साहित्य में नारी
457.	उषा पाण्डेय	मध्यकालीन-काव्य में नारी-भावना
458.	गजानन शर्मा	भक्तिकालीन-काव्य में नारी

459.	रघुनाथ सिंह	आधुनिक हिन्दी-साहित्य में नारी (1857-1936 ई०)
460.	सरलादेवी	आधुनिक हिन्दी-साहित्य में नारी
461.	बिन्दु अग्रवाल	आधुनिक हिन्दी-साहित्य में नारी-चित्रण (1850-1950 ई०)
462.	शैलकुमारी माथुर	आधुनिक हिन्दी-काव्य (1900-1945 ई०) में नारी-भावना
463.	लीला अवस्थी	आधुनिक हिन्दी नाटकों में नारी-चित्रण
464.	शैल रस्तोगी	हिन्दी उपन्यासों में नारी
465.	इन्द्रावती ग्रोवर	हिन्दी उपन्यास में नारी-चित्रण
466.	देवेश ठाकुर	आधुनिक भारतीय समाज में नारी और प्रसाद के नारीपात्र
467.	गंगाचरण त्रिपाठी	अवधी, ब्रज और भोजपुरी-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
468.	श्याम मनोहर पाण्डेय	सूफी और असूफी प्रेमाख्यानों का तुलनात्मक अध्ययन
469.	नागेन्द्रनाथ उपाध्याय	नाथ और सन्त-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
470.	रामप्रसाद शर्मा	उपनिषदों तथा हिन्दी-काव्यों की निर्गुणधारा का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन (संस्कृत)
471.	मालती श्रीखण्ड	हिन्दी और मराठी के सन्त-कवियों का तुलनात्मक अध्ययन
472.	प्रभाकर माचवे	हिन्दी और मराठी का निर्गुण-काव्य (11वीं से 15वीं शती—तुलनात्मक अध्ययन)
473.	श्रीशंकर शेष	हिन्दी और मराठी कथा-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
474.	शान्तिस्वरूप गुप्त	हिन्दी तथा मराठी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन (1900-1950)
475.	मनोहर काले	आधुनिक हिन्दी और मराठी-काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन
476.	सुशीला	हिन्दी और गुजराती सन्त-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन

477.	जगदीश गुप्त	हिन्दी और गुजराती कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन
478.	सुदर्शनसिंह मजीठिया	मध्यकालीन हिन्दी और पंजाबी सन्तों की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन
479.	हरवंशलाल शर्मा	हिन्दी तथा पंजाबी के निर्गुण-काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन
480.	सावित्री सरीन	पंजाबी और हिन्दी के वार्ता-साहित्य में अभिप्राय
481.	रतनकुमारी	हिन्दी और बंगला के वैष्णव कवियों (16वीं शताब्दी) का तुलनात्मक अध्ययन
482.	लालजी शुक्ल	शंकरदेव और माधवदेव के विशिष्ट सन्दर्भ में हिन्दी और आसामी वैष्णव कविता का तुलनात्मक अध्ययन
483.	इलवावुलूरी पाण्डुरंग राव मुरली	आन्ध्र-हिन्दी-रसक (हिन्दी और तेलुगू का नाटक साहित्य—एक अध्ययन)
484.	हिरण्मय	हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति-आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन
485.	चन्द्रूलाल दुबे	हिन्दी-नाटक-साहित्य का विकास तथा कन्नड़ नाट्य-साहित्य से उसकी प्रासंगिक तुलना
486.	के० भास्कर नय्यर	हिन्दी और मलयालम भक्त-कवियों का तुलनात्मक अध्ययन
487.	एन० ई० विश्वनाथ अय्यर	बीसवीं शताब्दी के हिन्दी-काव्य और मलयालम-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन (1920-1950)
488.	दामोदर	हिन्दी और मलयालम के सामजिक उपन्यास (1900-1960)
489.	सरनामसिंह शर्मा	हिन्दी-साहित्य पर संस्कृत का प्रभाव
490.	इन्द्रावती सिन्हा	हिन्दी-साहित्य पर पौराणिकता का प्रभाव
491.	शशि अग्रवाल	हिन्दी कृष्णभक्ति साहित्य पर पौराणिक प्रभाव (सँस्कृत)
492.	सदानन्द मदान	भक्तिकालीन कृष्णभक्ति काव्य पर पौराणिक प्रभाव
493.	विश्वनाथ शुक्ल	श्रीमद्भागवत का हिन्दी-कृष्ण साहित्य पर प्रभाव

494.	विश्वम्भरनाथ	सन्त वैष्णव-काव्य पर तान्त्रिक प्रभाव (1400-1700)
495.	शीलवती मिश्र	हिन्दी सन्तों (विशेषतया सूरदास, तुलसीदास और कबीरदास) पर वेदान्त-पद्धतियों का रूप (दर्शन)
496.	किरणकुमारी गुप्त	विशिष्टाद्वैत और उसका हिन्दी के भक्ति-काव्य पर प्रभाव (संस्कृत)
497.	सरलादेवी	हिन्दी के मध्ययुगीन साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव
498.	रामसिंह तोमर	प्राकृत-अपभ्रंश का साहित्य और उसका हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव
499.	धन्यकुमार जैन	प्राचीन हिन्दी-साहित्य पर जैन साहित्य का प्रभाव
500.	कमलसिंह सोलंकी	हिन्दी के निर्गुण सन्त-कवियों पर नाथ-पन्थ का प्रभाव
501.	वीरेन्द्र कुमार	रीतिकाव्य पर विद्यापति का प्रभाव
502.	रामकरन मिश्र	बीसवीं शताब्दी की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ और उनका हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव (1900-1936)
503.	रमेशकुमार शर्मा	रीतिकविता का आधुनिक हिन्दी कविता पर प्रभाव
504.	ज्ञानवती दरबार	हिन्दी-भाषा और साहित्य के विकास में भारतीय नेताओं का योगदान तथा प्रभाव (1857-1957)
505.	धर्मपाल	हिन्दी-साहित्य पर राजनीतिक आन्दोलनों का प्रभाव (1906-1947)
506.	ब्रह्मानन्द	बंगला (भाषा और साहित्य) पर हिन्दी-भाषा और साहित्य का प्रभाव
507.	ब्रह्मानन्द	आधुनिक हिन्दी-साहित्य पर बंगला-साहित्य का प्रभाव
508.	विश्वनाथ मिश्र	हिन्दी नाटकों और उपन्यासों पर पाश्चात्य (आंग्ल, रूसी तथा फ्रान्सीसी) प्रभाव
509.	विश्वनाथ मिश्र	अँग्रेजी का हिन्दी-भाषा और साहित्य पर प्रभाव

510.	रवीन्द्रसहाय वर्मा	आधुनिक हिन्दी-काव्य और आलोचना पर अँग्रेजी प्रभाव
511.	शिवस्वरूप सक्सेना	हिन्दी-साहित्य पर मार्क्सवाद का प्रभाव
512.	श्रीपति शर्मा	हिन्दी-नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव
513.	धर्मकिशोर लाल	अँग्रेजी नाटकों का हिन्दी नाटकों पर प्रभाव
514.	उषा सक्सेना	हिन्दी-कथा-साहित्य के विकास पर आंग्ल प्रभाव (1885-1936 ई०)
515.	एस० एन० गणेशन	हिन्दी उपन्यासों पर पाश्चात्य प्रभाव
516.	एस० टी० नरसिंहाचारी	हिन्दी-साहित्य और आलोचना में अभिरुचि का विकास
517.	सत्यवती महेन्द्र	हिन्दी-नाममाला-साहित्य
518.	सुषमा नारायण	भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी-साहित्य में अभिव्यक्ति (1920-1937)
519.	सरोज अग्रवाल	प्रबोधचन्द्रोदय और उसकी हिन्दी-परम्परा
520.	हरिहरनाथ टण्डन	वार्ता-साहित्य का जीवनीमूलक अध्ययन
521.	प्रेमनारायण शुक्ल	हिन्दी-साहित्य में विविध वाद
522.	चन्द्रावती सिंह	हिन्दी-साहित्य में जीवनचरित का विकास—एक अध्ययन
523.	नेमिचन्द शास्त्री	हरिभद्र के प्राकृत कथा-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन
524.	हरिशंकर शर्मा	आदिकाल का हिन्दी-जैन-साहित्य
525.	लक्ष्मीनारायण गुप्त	हिन्दी-साहित्य को आर्यसमाज की देन
526.	के० सी० डी० यजुर्वेदी	ध्रुवपद और हिन्दी-साहित्य
527.	हरिवंश कोछड़	अपभ्रंश साहित्य
528.	देवेन्द्रकुमार जैन	अपभ्रंश साहित्य
529.	धर्मवीर भारती	सिद्ध साहित्य
530.	हरभजन सिंह	गुरमुखी लिपि में हिन्दी-साहित्य (17वीं-18वीं शती)
531.	सुरेन्द्रमनोहर माथुर	हिन्दी का यात्रा-साहित्य
532.	रामरतन भटनागर	हिन्दी समाचारपत्रों का इतिहास
533.	रामगोपाल चतुर्वेदी	हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास

534.	विमला रानी	हिन्दी-साहित्य और भाषा के विकास में पत्रिकाओं का योगदान
535.	अचलानन्द जाखमोला	हिन्दी-कोशसाहित्य (1500-1800 ई०) का आलोचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन
536.	मुदमंगलसिंह	अँग्रेज़ी शासकों की शिक्षानीति और हिन्दी-भाषा तथा साहित्य के विकास में उसका योग
537.	ओमप्रकाश	हिन्दी-गद्य साहित्य में प्रकृति-चित्रण
538.	लक्ष्मीदेवी सक्सेना	सिंहासन बत्तीसी और उसकी हिन्दी-परम्परा का लोक-साहित्य की दृष्टि से अध्ययन
539.	बाबूराम सक्सेना	अवधी का विकास
540.	पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल	हिन्दी-काव्य में निर्गुण-सम्प्रदाय
541.	धीरेन्द्र वर्मा	ब्रजभाषा
542.	रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'	हिन्दी-काव्यशास्त्र का विकास
543.	बलदेव प्रसाद मिश्र	तुलसी-दर्शन
544.	हरिहरनाथ शुक्ल	रामचरितमानस के विशिष्ट सन्दर्भ में तुलसी की शिल्पकला—एक विश्लेषण
545.	माताप्रसाद गुप्त	तुलसीदास—जीवनी और कृतियों का समालोचनात्मक अध्ययन
546.	केसरीनारायण शुक्ल	आधुनिक काव्यधारा
547.	जगन्नाथप्रसाद शर्मा	प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन
548.	दीनदयालु गुप्त	वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियों (विशेषकर परमानन्ददास और नन्ददास) का अध्ययन
549.	सुभद्र झा	मैथिली-भाषा की रूपरचना
550.	उदयनारायण तिवारी	भोजपुरी भाषा की उत्पत्ति और विकास
551.	हरदेव बाहरी	हिन्दी अर्थ-विज्ञान
552.	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	हिन्दी-साहित्य और उसकी सांस्कृतिक भूमिका
553.	नगेन्द्र नगाइच	रीतिकाल की भूमिका में देव का अध्ययन
554.	राजपति दीक्षित	तुलसीदास और उनका युग
555.	ओमप्रकाश	हिन्दी मुहावरे
556.	सी० बादवील	रामचरितमानस के स्रोत और रचनाक्रम
557.	शिवमंगलसिंह	गीतिकाव्य का उद्गम, विकास और हिन्दी-साहित्य में उसकी परम्परा

558.	छैलबिहारी गुप्त	नायक-नायिका भेद
559.	रामखेलावन पाण्डेय	मध्यकालीन सन्त-साहित्य
560.	हरवंशलाल शर्मा	सूर और उनका साहित्य
561.	मुँशीराम शर्मा	वैदिक-भक्ति तथा हिन्दी के मध्यकालीन काव्य में उसकी अभिव्यक्ति
562.	त्रिलोकीनारायण दीक्षित	चरणदास, सुन्दरदास और मलूकदास के दार्शनिक विचारों का अध्ययन
563.	गोविन्द त्रिगुणायत	हिन्दी की निर्गुणमार्गी काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि
564.	गौरीशंकर सत्येन्द्र	मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य के प्रेमगाथा-काव्य और भक्ति-काव्य में लोकवार्तातत्त्व
565.	भगवतीप्रसाद सिंह	रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय
566.	शिवनन्दनप्रसाद	मध्ययुगीन हिन्दी-काव्य में प्रयुक्त मात्रिक छन्दों का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन
567.	रामदत्त भारद्वाज	गोस्वामी तुलसीदास—रत्नावली की जीवनी और रचना एवं सूकरक्षेत्र के तादात्म्य तथा इतिवृत्त के विशिष्ट परिचय से समन्वित गोस्वामी तुलसीदास के जन्मस्थान, आविर्भाव काल, परिवार, व्यक्तित्व आदि का आलोचनात्मक अध्ययन
568.	मंगलबिहारी शरण	सिद्धों की संधा-भाषा
569.	विश्वनाथ मिश्र	हिन्दी नाटकों और उपन्यासों पर पाश्चात्य (आंग्ल, रूसी और फ्रांसीसी) प्रभाव
570.	उदयभानु सिंह	तुलसी-दर्शन-मीमांसा
571.	सावित्री सिन्हा	ब्रजभाषा के कृष्णभक्ति-काव्य में अभिव्यंजना-शल्प
572.	प्रेमनारायण शुक्ल	भक्तिकालीन हिन्दी-सन्त-साहित्य की भाषा (सं० 1375-1700)
573.	किरणकुमारी गुप्त	विशिष्टाद्वैत और उसका हिन्दी के भक्ति-काव्य पर प्रभाव (संस्कृत)
574.	श्यामनन्दनप्रसाद किशोर	आधुनिक हिन्दी-महाकाव्यों का शिल्प-विधान
575.	राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	आधुनिक कविता की मूल प्रवृत्तियाँ

576.	किशोरीलाल गुप्त	हिन्दी साहित्य (सं० 1649-1945) के इतिहास के विभिन्न स्रोतों का विश्लेषण
577.	अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी	तुलसी के काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण[1]

डी० लिट्०, पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत विषय-सूची

इन्दौर विश्वविद्यालय (सन् 1970 तक)

डी० लिट्०

1.	आर० सी० कौशल	गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य में व्यक्त राजनीति का अध्ययन
2.	कु० शकुन्तला ठाकुर	आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्त राजनीतिक विचारधाराएँ
3.	ए० जी० क्रिस्टोदास	हिन्दी उपन्यासों की परम्परा और बीसवीं शताब्दी के सप्तम-दशक उपन्यास (1960-1970)
4.	कु० सुदेश काशव	श्रीमती महादेवी वर्मा, जीवन-साहित्य एवं दर्शन
5.	सी० एस० पाठक	हिन्दी-कविता पर शाक्त-प्रभाव (750 से 1700 तक)

विक्रम विश्वविद्यालय (उपाधि-प्राप्त विषय)

डी० लिट्०

1.	डॉ० रामप्रतिपाल मिश्र	मध्ययुगीन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर तुलसी काव्य-चिन्तन

पी-एच० डी०

1.	के० एस० सोलंकी	हिन्दी के निर्गुण सन्त-कवियों पर नाथ-पन्थ का प्रभाव
2.	श्याम भटनागर	द्विवेदी युग का अनुवाद-साहित्य
3.	नेमीचन्द जैन	भीली भाषा का शास्त्रीय अध्ययन

---

१. 'हिन्दी शोध प्रबन्ध' (उदयभानुसिंह से साभार संकलित) इस संग्रह में सन् १९६२—तक उपाधिप्राप्त विषय सम्मिलित हो सके हैं।

4.	पवनकुमार मिश्र	पारसी रंगमंच—उसके नाटक और नाटक-कारों का आलोचनात्मक अध्ययन
5.	एस० जी राजवाड़े	महाराष्ट्रीय सन्तों की हिन्दी-कविता एवं उत्तरकालीन सन्त-कविता से उसका तुलनात्मक भाषा शास्त्रीय तथा साहित्य-विवेचन
6.	बाबूराम जोशी	सन्त काव्य में परोक्ष सत्ता का स्वरूप
7.	कु० भगवती वर्मा	उपन्यासकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री
8.	चन्द्रशेखर भट्ट	हाड़ोती लोकगीत
9.	रामचन्द्र बिल्लोरे	जायसी की प्रेम-साधना
10.	दुर्गाप्रसाद झाला	आधुनिक प्रगतिशील हिन्दी-कविता
11.	गुमानसिंह कुशवाहा	आचार्य चतुरसेन शास्त्री का उपन्यासोत्तर साहित्य
12.	शुकदेव दुबे	सगुण भक्त-कवियों के प्रगति-काव्य का अनुशीलन (वि० सं० 1601 से वि० सं० 1700 तक)
13.	गौरीशंकर शर्मा	महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का कथा-साहित्य (कहानियाँ और उपन्यास)
14.	कु० बीना कुदेशिया	हिन्दी प्रदेश की हिन्दू-महिलाओं के नामों का वैज्ञानिक अध्ययन
15.	हरिहरप्रसाद शर्मा	सियारामशरण गुप्त—जीवनी और गद्य-साहित्य
16.	श्यामसुन्दर चौऋषि	बाँकीदास—आचार्यत्व एवं कृतित्व
17.	मांगीलाल मेहता	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-कहानी-वस्तु-विकास और शिल्प-विधान
18.	बसन्तीलाल बम	भारतीय लोककथाएँ; उद्भव और विकास
19.	भवानीशंकर त्रिपाठी	बिहारी सतसई की टीकाओं का आलोच-नात्मक अध्ययन
20.	बनवारीलाल ऋषीश्वर	प्रसाद पर्यन्त हिन्दी नाटकों पर संस्कृत नाट्य-साहित्य का प्रभाव
21.	रामचरणलाल शर्मा	अष्टछाप और हरिवंशीय कवियों का तुलनात्मक अध्ययन
22.	शिवदत्त शुक्ल	आधुनिक हिन्दी नाटकों में गीतों का स्वरूप-विश्लेषण

23.	राधेश्याम द्विवेदी	हिन्दी भाषा और साहित्य में ग्वालियर-क्षेत्र का योगदान (15वीं, 16वीं शताब्दी)
24.	विलास गुप्ते	आधुनिक हिन्दी-साहित्य को अहिन्दी लेखकों का योगदान (सन् 1900 से वर्तमान समय तक)
25.	ओमप्रकाश सिन्हा	हिन्दी-उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अनुशीलन
26.	कु० कुमुदिनी व्यास	आकाशवाणी और हिन्दी-साहित्य की नवीन विधाएँ
27.	कु० सरोजिनी रोहतगी	अवधी का लोक-साहित्य
28.	श्रीमती कृष्णा अग्निहोत्री	स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी-कहानी
29.	सम्पूर्णानन्द शास्त्री	डॉ० गोपालशरण सिंह : जीवन और कृतित्व
30.	बंशीधर शर्मा	मालवी की उत्पत्ति और विकास
31.	प्रभाकर श्रोत्रिय	प्रसाद साहित्य में प्रेम-तत्त्व
32.	कु० कौशल्या गिदवानी	हिन्दी भाषा, व्याकरण और साहित्य को पाश्चात्य विद्वानों की देन
33.	सनतकुमार सिंहल	हिन्दी और अँग्रेजी निबन्ध-साहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन
34.	फूलचन्द सिंह	प्रसाद-पूर्व हिन्दी कथा-साहित्य का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन और प्रसाद का कथा-साहित्य
35.	विमलचन्द जैन	प्रसाद की भाषा
36.	जगदम्बाप्रसाद पाण्डेय	प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों में चरित्र-चित्रण का स्वरूप और शैलियों का अनुशीलन
37.	मनमोहन दुबे	हिन्दी-साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास
38.	नरसिंह चौहान	नूरमोहम्मद : काव्य और दर्शन
39.	विजय वापट	हिन्दी और मराठी के एकांकी नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन
40.	वीरेन्द्रसिंह परिहार	बुन्देली लोकगीतों में प्रेम-भावना
41.	घनश्यामदास शर्मा	हिन्दी के लघु उपन्यासों का अनुशीलन
42.	छैलबिहारी गुप्त	गोरखबानी—एक भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
43.	धर्मनारायण शर्मा	तुर्रा-कंलगी-साहित्य—एक अनुशीलन
44.	यदुवीरप्रसाद भटनागर	आचार्य चतुरसेन शास्त्री और वृन्दावनलाल वर्मा के नारी-पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन

45.	शान्तिलाल जैन	हिन्दी के यथार्थवादी नाटक और नाट्यशैली
46.	रामकिशन माली	सर्वोदय साहित्य का साहित्यिक मूल्यांकन
47.	कु० प्रतिभा चतुर्वेदी	आधुनिक प्रगीत-काव्य में संगीत का योगदान
48.	मणिशंकर आचार्य	तुलसी-साहित्य में रूपक-योजना
49.	हरिहर प्रसाद गोस्वामी	इलाचन्द्र जोशी और उनके उपन्यास
50.	विद्याधर चन्द्र	हिन्दी कथा-साहित्य और प्रकृति
51.	श्रीमती देवकुमारी कपूरिया	हिन्दी कहानी-साहित्य में प्रेम एवं सौन्दर्य-तत्त्व का निरूपण
52.	कृष्णदेव उपाध्याय	रीति निरूपक मध्यकालीन आचार्यों का अलंकार-शास्त्र में योगदान
53.	कु० मंजुला अग्निहोत्री	पन्त-काव्य का कलापक्षीय अनुशीलन
54.	राजाराम तिवारी	घनानन्द की भाषा का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
55.	कु० रश्मि त्रिपाठी	महादेवी का काव्य, कला और दर्शन सम्यक् अनुशीलन
56.	प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी	सूदन तथा भरतपुर के हिन्दी-कवि
57.	चन्द्रगुप्त मयंक	युगचेतना के क्रमिक विकास के परिप्रेक्ष्य में श्री मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का अनुशीलन

सागर विश्वविद्यालय, सागर (सन् 1962 से 1970 तक)

पी-एच० डी०

1.	सुशीला शर्मा	द्विवेदी युग (1900 से 1925) के हिन्दी में सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष
2.	आचार्य वाजपेयी	आधुनिक मनोविज्ञान के सिद्धान्त तथा हिन्दी-साहित्य पर उनका प्रभाव
3.	लक्ष्मीनारायण दुबे	प्रभा तथा प्रताप के कवि और बालकृष्ण शर्मा नवीन का विशेष अध्ययन
4.	कृपाशंकर मिश्र निर्द्वन्द्व	आधुनिक साहित्य में सामाजिकशास्त्र और व्यंग्य का स्वरूप
5.	चन्द्रभूषण तिवारी	आधुनिक हिन्दी-साहित्य में कला-विषयक विवेचन के उपकरण और तत्त्व
6.	गुलाबदास गुप्ता	मध्यप्रदेश के क्षेत्र में कबीर मत और उसका विकास

7.	गणेश खरे	छायावाद के प्रगीतकाव्य का अनुशीलन
8.	सुरेशचन्द्र शुक्ल	प्रतापनारायण मिश्र और उनका साहित्य
9.	जोगलेकर	मराठी और हिन्दी के वैष्णव-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
10.	रामकुमारसिंह	आधुनिक हिन्दी काव्य की भाषा का अनुशीलन
11.	एन० रमन नायर	हिन्दी और मलयालम के भक्तिकालीन काव्य में वात्सल्य रस
12.	श्रीमती राजेश्वरी जैन	हिन्दी-साहित्य में भावात्मक कहानी और उपन्यास की परम्परा तथा प्रसाद के कथा-साहित्य का अनुशीलन
13.	हरिशंकर शुक्ल	अवधी के लोकगीतों का सामाजिक अनुशीलन
14.	गंगानारायण त्रिपाठी	हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में गद्य का विकास (1900 से 1950)
15.	शिवनारायण चौबे	प्रेमचन्द्रोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य (1936-50)
16.	रामखिलावन तिवारी	आधुनिक हिन्दी राष्ट्रीय काव्य के सन्दर्भ में माखनलाल के काव्य का विशेष अध्ययन
17.	के० पी० सुभद्रा अम्मा	हिन्दी और मलयालम के रामकाव्य-रूप—तुलनात्मक अध्ययन
18.	रामसेवक पाण्डेय	प्रसाद के नाटकों के वस्तु तथा शिल्प-पक्ष का अनुशीलन
19.	रामकृपाल शर्मा	सगुण भक्ति कवियों का व्यक्तिगत और सामाजिक आदर्श
20.	श्रीमती उर्मिला दीक्षित	आधुनिक काव्य में नारी-चरित्र और नारी-व्यक्तित्व का स्वरूप
21.	कु० शकुन्तला सिंह	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का अनुशीलन
22.	एन० आर० इलाडम	हिन्दी और मलयालम में साहित्य-समीक्षा के विकास का तुलनात्मक अध्ययन (1900-50)
23.	श्रीमती तारादेवी विंदल	हिन्दी-उपन्यास में मानव-जीवन के स्वरूपों और आदर्शों का अनुशीलन
24.	सूर्यनारायण मूर्ति	हिन्दी और तेलुगु के मध्यकालीन राम-साहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन

25. राजेश्वर दयाल सक्सेना — स्वच्छन्दवादी समीक्षा और साहित्य-चिन्तन
26. रमेशकुमार वाजपेयी — गोस्वामी तुलसीदास के प्रबन्ध और प्रगीत काव्य का तुलनात्मक अध्ययन
27. जयनारायण मण्डल — हिन्दी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की यथार्थवादी परम्परा
28. पी० जार्ज बेबी — हिन्दी और मलयालम की गद्यशैलियों का तुलनात्मक अध्ययन
29. ब्रजभूषणसिंह आदर्श — हिन्दी के राजनैतिक उपन्यासों का अनुशीलन
30. कु० सरोज ओढेकर — बीसवीं शताब्दी के मराठी और हिन्दी नाट्य-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
31. भगवानसिंह ठाकुर — आधुनिक हिन्दी-काव्य पर गांधीवादी एवं मार्क्सवादी प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन
32. पी० जयरमण — सुब्रह्मण्य भारती और निराला के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन
33. उमाशंकर शुक्ल — प्रेमचन्दजी के बाद हिन्दी-कहानी का विकास
34. सच्चिदानन्द पाण्डेय — छायावाद के अप्रमुख कवियों का साहित्यिक अध्ययन
35. नरेन्द्र वर्मा — प्रयोगवादी काव्य और साहित्य-चिन्तन
36. हरीश वर्मन — भक्तिकालीन हिन्दी कवियों की शृंगार-भावना एवं अनुशीलन
37. बालकृष्ण शर्मा — मध्ययुग की नीति काव्य-परम्परा और रहीम
38. रामप्रसाद त्रिवेदी — आधुनिक समीक्षा-सिद्धान्तों और शैलियों के आधार पर प्रगतिवादी समीक्षा-सिद्धान्त और शैली का सापेक्षिक अनुशीलन
39. चन्द्रभूषण तिवारी — तुलसी-साहित्य में अलंकार-योजना
40 रामविशाल चंसोरिया — भारतेन्दु युग की काव्य-भाषा का अनुशीलन
41. मुरारीलाल दुबे — हिन्दी-उपन्यासों में चरित्र-सृष्टि के विविध स्वरूप, एक अनुशीलन
42. शिवप्रसाद मिश्र — सियारामशरण गुप्त और उनकी कृतियाँ
43. प्रकाश वाजपेयी — हिन्दी-उपन्यासों में यथार्थवाद का आरम्भ और विकास—एक अनुशीलन
44. कृष्णकान्त पाण्डेय — प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नारी के स्वरूप और चरित्र का अनुशीलन

45. प्रवीणकुमार नायक	हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि पर चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों का अध्ययन
46. नन्हें सिंह राजपूत	हिन्दी के यथार्थवादी तथा समस्यामूलक नाटकों का अध्ययन
47. वी० आर० कृष्णन नायर	हिन्दी और मलयालम के काव्य-रूपों का तुलनात्मक अनुशीलन
48. पवनकुमार तिवारी	हिन्दी कहानी के विकास का अध्ययन
49. वीरेन्द्रपाल श्रीवास्तव	गोस्वामी तुलसीदास सम्बन्धी शोधों एवं समीक्षाओं का अनुशीलन
50. परसो गिदवानी	हिन्दी तथा सूफी कवियों का तुलनात्मक अध्ययन
51. उमेशचन्द्र मिश्र	हिन्दी के छायवादी कवियों के साहित्य-चिन्तन और समीक्षा-कार्य का अनुशीलन
52. कु० गीता पाठक	छायावाद युग की गद्य-शैलियों का अनुशीलन
53. रघुनन्दनप्रसाद तिवारी	मध्यकालीन हिन्दी-भक्ति और रीतिकाव्य में राजस्थानी चित्रकला की समानताओं और प्रभावों का अनुशीलन
54. श्रीमती रूपकमल पारे	आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों की भूमिका पर कामायनी का अनुशीलन
55. जस्तिन अब्राहम	हिन्दी और मलयालम की छोटी कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन
56. विजयबहादुरसिंह	आधुनिक हिन्दी कविता की बृहत्त्रयी का तुलनात्मक समीक्षण
57. कु० प्रेमलता बापना	छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि पर पन्त के काव्य का अनुशीलन
58. श्रीमती धनवती	आधुनिक कवयित्रियों की राष्ट्रीय कविता और सुभद्राकुमारी चौहान के राष्ट्रीय काव्य का अनुशीलन
59. मृदुला शर्मा	छायावादोत्तर हिन्दी-काव्य के मानव-व्यक्तित्व की परिकल्पना और स्वरूप
60. वी० पी० वासवदत्ता	आधुनिक हिन्दी के शास्त्रवादी और स्वच्छन्दतावादी साहित्या-दर्शन और समीक्षा प्रणालियों का तुलनात्मक अनुशीलन

61.	छविनाथ तिवारी	दमोह जिले की बोली के आधार पर बुन्देली के शब्द-सामर्थ्य का अध्ययन
62.	वीरेन्द्रप्रसाद मिश्र	हिन्दी की स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय कविता और दिनकर के राष्ट्रीय काव्य का अनुशीलन
63.	शशिशेखरानन्द मघानी	जयशंकर प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन
64.	श्रीमती सुशीला गुप्त	आधुनिक हिन्दी-काव्य में प्रवृत्तिमूलक दार्शनिकता का विकास
65.	कु० पद्मावती के०	हिन्दी और मलयालम के प्रगतिवादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन
66.	कु० शिवप्रिया महापात्र	हिन्दी के छायावादोत्तर प्रबन्ध-काव्यों के शिल्प-पक्ष का अनुशीलन
67.	कृष्णदत्त अवस्थी	कृष्णायन काव्य पर संस्कृत ग्रन्थों के प्रभाव का आलोचनात्मक अध्ययन
68.	सि० क्लेमेण्ट मेरी	हिन्दी का स्वातन्त्र्योत्तर विचारात्मक गद्य
69.	श्रीमती निर्मला शर्मा	प्रसादोत्तर ऐतिहासिक नाटक
70.	रामशरण सिंह	उन्नीसवीं शताब्दी की सूफी काव्य-परम्परा तथा ख्वाजा अहमद का विशेष अध्ययन
71.	कु० वी० सौन्दरवला	हिन्दी और तमिल के आधुनिक गद्य का विकास
72.	सत्येन्द्रनाथ शुक्ल	अवधप्रदेश के आधुनिक जन-काव्य का अनुशीलन
73.	रमेशचन्द्र जैन	हिन्दी-साहित्य में गीतिनाट्य का उद्भव और विकास
74.	कु० शकुन्तला चौरसिया	प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी के काव्य के दार्शनिक पक्ष का अनुशीलन
75.	श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय	प्रसादोत्तर हिन्दी नाट्य-साहित्य में नारी-भावना
76.	देवेन्द्रनाथ पण्ड्या	शैव चेतना और आधुनिक काव्य
77.	देवनारायण अवस्थी	संस्कृत नायिका-भेदों की विभिन्न परम्पराएँ और रीतिकालीन नायिका-भेद—तुलनात्मक अध्ययन
78.	श्यामनारायण शुक्ल	प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में यथार्थवादी प्रवृत्तियों का विकास

79. रामनरायणसिंह मधुर — हिन्दी के स्वातन्त्र्योत्तर ऐतिहासिक उपन्यास (1947-67 तक)

80. चलसानि सुब्बाराव — हिन्दी और तेलुगु के स्वातन्त्र्य-पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन

81. रामखेलावन द्विवेदी — हिन्दी की प्रगतिवादी काव्यधारा और डॉ० रांगेय राघव का काव्य

82. श्रीमती विमला मेहता — हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी कहानी का अनुशीलन

83. नागेन्द्रसिंह — विंध्याचल का आधुनिक हिन्दी काव्य—एक अनुशीलन (1900 से 1960)

84. कु० विमल श्रीवास्तव — अवधी के प्रमुख महाकाव्यों का वस्तुगत, विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अनुशीलन

85. राजमल सराफ — मध्ययुगीन निर्गुण-मार्गी ज्ञानाश्रयी कवियों के सामाजिक और सांस्कृतिक आदर्श

86. उपेन्द्रशरण त्रिपाठी — छायावादी युग के गेय-गीतों का अनुशीलन

87. हीरालाल बाछोतिया — निराला के गद्य-साहित्य का अनुशीलन

88. रामाश्रय — नायक और प्रतिनायक के माध्यम से राष्ट्रीय नैतिक चेतना के विकास का अनुशीलन (1900-50 तक)

89. सूर्यप्रकाश मिश्र — हिन्दी-साहित्य में रीति और शैली तत्त्वों का अनुशीलन

90. शशिचरन पिल्ले — स्वच्छन्दतावादी चेतना की भूमिका में निराला और जी० शंकर कुरुप के काव्य का तुलनात्मक अनुशीलन

91. मुरलीधरन पिल्ले — हिन्दी और मलयालम के स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रकृति

92. कमलाप्रसाद पाण्डेय — उत्तर छायावादी-काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

93. कु० कमल रजावत — प्रसाद-साहित्य में समाज-दर्शन का अनुशीलन

94. आदित्यप्रसाद त्रिपाठी — काशिका बोली और उसके लोकगीतों का विवेचनात्मक अनुशीलन

95.	आर्यप्रसाद त्रिपाठी	कबीर-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन
96.	देसाई वर्गीश	आधुनिक हिन्दी और मलयालम काव्य में प्रकृति का उपयोग
97.	कु० पी० रुक्मिणी	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और तेलुगु कविता का तुलनात्मक अनुशीलन
98.	रामसेवक शर्मा	श्री रामनरेश त्रिपाठी के समग्र रचनात्मक साहित्य का अनुशीलन
99.	रामेश्वरप्रसाद पांडे	आधुनिक हिन्दी कहानियों में यथार्थवादी प्रवृत्तियों का विकास
100.	कु० निशा झा	प्रमुख छायावादी कवियों की गद्य-रचनाओं का अनुशीलन
101.	गोविन्दप्रसाद राय	प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कलापक्ष का अनुशीलन
102.	हेमन्तप्रकाश गौतम	कामायनी के पश्चात् हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों का विकास
103.	जगन्निवासराम	आधुनिक हिन्दी-साहित्य में महाकाव्य का स्वरूपगत विकास
104.	कु० प्रमिला तिवारी	हिन्दी उपन्यास-साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना का अनुशीलन
105.	श्यामसुन्दर दुबे	बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन
106.	श्रीमती माधुरी मिश्र	भारतीय महाकाव्य-परम्परा में कामायनी
107.	प्रेमनारायण अग्निहोत्री	निराला के काव्य का कलापक्षीय परिशीलन
108.	कु० एम० राधादेवी	श्रीमती महादेवी वर्मा और श्रीमती बालमणि अम्मा की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय (सन् १९६५ से १९७१ तक)

पी-एच० डी०

1.	डॉ० प्रभाशंकर मिश्र	राहुल सांकृत्यायन के कथा-साहित्य का अध्ययन
2.	डॉ० कान्तिकुमार	छत्तीसगढ़ी की जनपदीय शब्दावली
3.	डॉ० छविनाथ त्रिपाठी	मध्यकालीन हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्तों का अध्ययन (1200-1500)

4.	डॉ० चरणदास शास्त्री	तुलसी-साहित्य में प्रतिपादित नैतिक मूल्यों का अध्ययन
5.	डॉ० सुधीन्द्रकुमार	रीतिकालीन श्रृंगार-भावना के स्रोत
6.	डॉ० कृष्णा शर्मा	हिन्दी और कश्मीरी सूफीतर सन्तकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन
7.	डॉ० सीता बिम्ब्राँ	हिन्दी के निर्गुण सन्त-काव्य में संगीततत्व (1400-1700)
8.	डॉ० प्रेमप्रकाश भट्ट	हिन्दी-गद्य को निराला की देन
9.	डॉ० शकुन्तला	पुष्टिमार्गीय वचनामृत-साहित्य — एक अध्ययन
10.	डॉ० जियालाल हण्डू	कश्मीरी और हिन्दी सूफी-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
11.	डॉ० शान्तिप्रकाश वर्मा	प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी-गद्य को देन
12.	डॉ० जॉन हेनरी आनन्द	पाश्चात्य विद्वानों की हिन्दी-भाषा और साहित्य को देन (1800-1900)
13.	डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव	मालवा की आधुनिक हिन्दी-साहित्य को देन (1900-1960)
14.	डॉ० कृष्णमुरारीलाल मधोक	आधुनिक हिन्दी-कथा-साहित्य को पंजाबी लेखकों की देन (1900-1960)
15.	डॉ० ब्रजमोहन शर्मा	छायावादी काव्य का भावात्मक सौन्दर्य
16.	डॉ० रामफल	हिन्दी-उपन्यासों में वातावरण-तत्त्व
17.	डॉ० जवाहरलाल हण्डू	कश्मीरी तथा खड़ी बोली (हिन्दी) के लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन
18.	डॉ० शिबनकृष्ण रैना	हिन्दी और कश्मीरी लोकोक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन
19.	डॉ० ओमप्रकाश भारद्वाज	दशम-ग्रन्थान्तर रामावतार तथा कृष्णावतार का काव्यशास्त्रीय अध्ययन
20.	डॉ० रमेश अंगीरस	निराला-काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन
21.	डॉ० पुष्पा शर्मा	बीसवीं शताब्दी के हिन्दी काव्य-साहित्य में धर्म का स्वरूप
22.	डॉ० पुष्पलता शर्मा	गाथासप्तशती और रीतिकालीन श्रृंगारी सतसइयों का तुलनात्मक अध्ययन
23.	डॉ० कमलकुमारी गुप्त	राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक सन्दर्भ

	में हिन्दी-निबन्ध-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन
24. डॉ० राजकुमार	छायावादोत्तर काव्य में प्रतीक एवं बिम्ब-विधान (1937-65)
25. डॉ० मदनलाल शर्मा	हिन्दी-काव्य में युद्धवर्णन-वैशिष्ट्य का अन्वेषण (1140-1857)
26. डॉ० हुकमचंद	हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल में राम और कृष्ण-काव्य में नवीन जीवन-मूल्यों का अन्वेषण (1900-50)
27. बलराज शर्मा	नरहरदास की पौरुषेय रामायण का तुलनात्मक अध्ययन
28. डॉ० पुष्पलता अवस्थी	हिन्दी तथा पंजाबी मुहावरों का तुलनात्मक अध्ययन
29. डॉ० राममूर्ति शर्मा	श्री रामनरेश त्रिपाठी और उनका साहित्य
30. डॉ० दामोदर वशिष्ट	कविवर नजीर अकबराबादी के हिन्दी-काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन
31. डॉ० लालचन्द	नई कहानी पर अस्तित्ववाद का प्रभाव (सन् 1950-65)
32. डॉ० उमाशशि सोनी	सन्तकाव्य का सामाजिक पक्ष
33. डॉ० पवनकुमार जैन	रीतिकालीन काव्य-विधाओं का शास्त्रीय अध्ययन
34. डॉ० शिवाशंकर पाण्डेय	रामस्नेही सम्प्रदाय की दार्शनिक पृष्ठभूमि
35. डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा	नयी कविता के नाट्य-काव्यों का रूप तथा अभिव्यंजना की दृष्टि से अध्ययन
36. लक्ष्मणसिंह	हाथरस के हिन्दी सांगों का इतिहास और उनकी कला
37. लक्ष्मीनारायण शर्मा	हिन्दी-कविता में पुराख्यान-तत्त्व (1947-67)
38. भीमसिंह मलिक	जायसी-काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन
39. रामकुमार शर्मा	समसामयिक हिन्दी गीति-काव्य-परम्परा और प्रयोग
40. श्रीमती चन्द्रकान्ता सूद	पंजाब में हिन्दी पत्रकारिता का विकास (1900-1960)
41. आशा मोहन्ता	हिन्दी के उपन्यासों में पारिवारिक जीवन-चित्रण

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (सन् १९६२ से आगे)

1. सत्या शर्मा	पुष्टिमार्गीय वार्ता-साहित्य का सैद्धान्तिक तथा भक्तिपरक अध्ययन
2. मलिक मुहम्मद	कृष्णभक्ति-काव्य पर आलवार भक्तों का प्रभाव (9वीं शताब्दी)
3. नजीर मुहम्मद	कबीर के काव्य-रूपों का आलोचनात्मक अध्ययन
4. जगदीश्वर वार्ष्णेय	हाथरस के तुलसी साहब और उनका काव्य
5. फूलबिहारी शर्मा	हिन्दी छायावादी कवियों पर अंग्रेजी रोमांटिक कवियों का प्रभाव
6. श्रीमती माजिदा असद	रसखान तथा भक्ति-भावना
7. वेल्लायणि अर्जुनन्	हिन्दी और मलयालम की समान शब्दावली का अध्ययन
8. जाफर रजा जैदी	17वीं-18वीं शती के बिलग्राम के मुस्लिम कवियों का हिन्दी में योगदान
9. सुभद्राकुमारी	हिन्दी उपन्यास-परम्परा और प्रयोग (1937-1962)

हिन्दी इन्स्टीट्यूट आगरा विश्वविद्यालय

1. एम० जार्ज	तुलसीदास तथा मलयालम के रामभक्त कवि एषुत्तच्छन
2. गोपीवल्लभ नेमा	रामानन्द-सम्प्रदाय के कुछ भक्त कवि
3. श्रीमती निर्मला भार्गव	वैदिक साहित्य और संस्कृत में भृगु ऋषियों की देन
4. रमेशचन्द्र जैन	हिन्दी-समास-रचना का अध्ययन
5. लक्ष्मीकुमार सक्सेना	सिंहासनबत्तीसी तथा उसकी परम्परा
6. सुशीला धीर	हिन्दी और गुजराती के निर्गुण-सन्तकाव्य
7. नरेन्द्रकुमार सिन्हा	लिंग्विस्टिक स्टडी ऑफ स्पीच डिफेक्ट्स इन स्टेयरिंग
8. शशिशेखर तिवारी	भोजपुरी लोकोक्तियों का अध्ययन
9. सत्यराम वर्मा	भर्तृहरि वाक्पदीय का भाषा-तात्त्विक अध्ययन

10. प्रतापसिंह चौहान	आधुनिक हिन्दी-काव्य पर अरविन्द-दर्शन का प्रभाव

उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

1. श्रीमती ज्ञान अस्थाना	हिन्दी-उपन्यास में ग्राम-समस्याएँ
2. विद्यासागर	हिन्दी-साहित्य में भाषा-चित्रकाव्य
3. श्रीमती नागलक्ष्मी	मैथिलीशरण गुप्त और सुब्रह्मण्य भारती—तुलनात्मक अध्ययन
4. भीमसेन निर्मल	तेलुगु के कवि पुरुषोत्तम और उनके हिन्दी-नाटक
5. मनोरमा जैन	हिन्दी-प्रबन्धकाव्य में नारी-भावना
6. रामकुमार खण्डेलवाल	भक्तिकालीन हिन्दी-काव्य में प्रेमभावना
7. वेदप्रकाश शास्त्री	श्रीमद्भागवत का सूरदास पर प्रभाव
8. सरला सहगल	सूर का वात्सल्य और शृंगार
9. ललित कुमार पारिख	सूरदास और नरसी मेहता का तुलनात्मक अध्ययन
10. ललित कुमार पारिख	पलटूदास का व्यक्तित्व और कृतित्व
11. श्रीनिवास आचार्य	प्रेमचन्द और तेलुगु सामाजिक उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन

कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता

1. श्रीमती अणिमासिंह	मैथिली लोकगीत
2. श्रीमती प्रतिभा अग्रवाल	हिन्दी मुहावरे—एक अध्ययन
3. अशर्फी झा	हिन्दी सन्तकाव्य के दार्शनिक स्रोत
4. सन्तनारायण उपाध्याय	दादूदयाल—जीवन, दर्शन और काव्य
5. कृष्णबिहारी मिश्र	कलकत्ते की हिन्दी पत्रकारिता का उद्भव और विकास
6. कमला संघी	लक्षदास-रचित कृष्णरस सागर का पाठालोचन एवं साहित्यिक अनुशीलन
7. रामेश्वरप्रसाद माथुर	मलिक मुहम्मद जायसी का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन

काश्मीर विश्वविद्यालय

1. डॉ० अयूब खां	निराला के काव्य में दार्शनिकता
2. श्रीमती मोहिनी कौल	लल्लेश्वरी और कबीर का तुलनात्मक अध्ययन

3. अमरनाथ शर्मा	दिनकर और आज़ाद—तुलनात्मक अध्ययन

गुजरात विश्वविद्यालय

1. अम्बाप्रसाद शुक्ल	कृष्णदास का काव्य
2. रमाकान्त शर्मा	आधुनिक हिन्दी-कविता

गोरखपुर विश्वविद्यालय

1. दिलीपनारायण मिश्र	हिन्दी रसशास्त्र का आलोचनात्मक अध्ययन
2. परमानन्द श्रीवास्तव	प्राचीन और नवीन हिन्दी-कहानी रचना-प्रक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन
3. श्रीमती गिरीश रस्तोगी	हिन्दी नाटकों में संगीत
4. त्रिभुवननाथ चौत्रे	रामचरित मानस की टीकाओं का समालोचनात्मक अध्ययन
5. माहेश्वरदत्त पाण्डेय	आधुनिक हिन्दी तथा बंगला नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन
6. रामदेव शुक्ल	मध्यकालीन हिन्दी-कविता में चित्रित भारतीय संस्कृति—(1400-1600 ई०)
7. श्रीमती तुलसी मिश्र	रामचरित मानस, वाल्मीकि रामायण एवं अध्यात्म रामायण के नारी-पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन
8. धनेश्वरप्रसाद शुक्ल	म० युगलानन्दशरण और उनकी परम्परा के श्रृंगारी रामभक्त
9. रामनारायण पाण्डेय	रीतिकालीन हिन्दी-कविता पर संस्कृत-कविता का प्रभाव
10. विश्वनाथप्रसाद तिवारी	छायावादोत्तर हिन्दी-गद्य-साहित्य

जबलपुर विश्वविद्यालय

1. डॉ० श्रीशकुमार	तुलसी के काव्य में तत्त्वदर्शन
2. डॉ० श्रीशकुमार	रीतिकाव्य के शाश्वत तत्त्व
3. धरमचन्द जैन	निराला की भाषा
4. श्रीमती सुमन	कामताप्रसाद गुरु—व्यक्तित्व और कृतित्व
5. पुरुषोत्तम गुप्त	तुलसीदास के काव्य में नैतिक मूल्य

जोधपुर विश्वविद्यालय

1. महावीरसिंह गहलोत	सूरदास का श्रृंगार-वर्णन

2. अगयाचन्द भण्डारी	राजस्थानी का मध्यकालीन सगुण भक्तिकाव्य
3. कन्हैयालाल कल्ला	हिन्दी काव्य पर योगदर्शन का प्रभाव
4. पुरुषोत्तमलाल मेनारिया	राजस्थानी साहित्य के सन्दर्भ में श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह सम्बन्धी राजस्थानी काव्य
5. मदनलाल डागा	आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन (1901-1960)
6. मालतीदेवी माहेश्वरी	मध्यकालीन हिन्दी-काव्य में शृंगार-सामग्री
7. शशिप्रभा शास्त्री	हिन्दी के पौराणिक नाटकों के मूल स्रोत
8. गोविन्द सीताराम गुंथे	हिन्दी और मराठी भक्तिकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन
9. नवलकिशोर मिश्र	आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों में पारिवारिक चित्रण
10. नारायणदत्त श्रीमाली	आधुनिक हिन्दी-काव्य में चित्रित संस्कृति की विवेचना
11. मोतीलाल गुप्त	प्रताप रासो का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
12. रामप्रसाद दधीच	महाराजा मानसिंह (जोधपुर) : व्यक्तित्व और कृतित्व
13. शकुन्तला उपाध्याय	हिन्दी-काव्य में वात्सल्य (1400-1950)
14. ओमप्यारी गहलोत	राजस्थानी कथा-साहित्य
15. श्रीमती कृष्णा हुक्कू	हिन्दी-साहित्य में नारी-मनोवृत्ति का मनोवैज्ञानिक रूप
16. तारा सापट	राजस्थानी का छन्द-विधान
17. नारायण शर्मा	राजस्थानी के सन्त-सम्प्रदाय और उनका साहित्य

दिल्ली विश्वविद्यालय (सन् 1962 से आगे)

1. नरेन्द्रकुमार	तुलसीदास के काव्य में अलंकार-योजना
2. बहादुरसिंह	दिल्ली नगर में आजकल प्रयुक्त खड़ी बोली के विभिन्न रूप
3. कैलाशपति ओझा	हिन्दी नाटक में त्रासद-तत्त्व
4. गोपाल शर्मा	सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दावली का समीक्षात्मक अध्ययन
5. निर्मल	आधुनिक हिन्दी नाट्यकारों के नाट्य-सिद्धान्त

6.	मान्धाता ओझा	हिन्दी साहित्य में समस्या-नाटक
7.	सुदर्शन मल्होत्रा	आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों में त्रासद-तत्त्व
8.	इन्द्रनाथ चौधरी	आधुनिक हिन्दी और बँगला की काव्यशास्त्रीय तुलना
9.	जयनारायण गौतम	उपमा-अलंकार का विवेचन
10.	प्रशान्तकुमार	रसाभास का विवेचन—हिन्दी रीतिकाव्य के परिवेश में
11.	सत्यकुमार चन्देल	चिन्तामणि त्रिपाठी और उनका काव्य
12.	सत्यपाल चुघ	प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी-उपन्यास का शिल्प
13.	हरगुलाल	मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति
14.	महेन्द्रकुमार	कबीर की भाषा
15.	विनयकुमार शर्मा	महाभारत का आधुनिक हिन्दी-काव्य पर प्रभाव
16.	उषा पुरी	रीतिकालीन कविता में भक्ति-तत्त्व
17.	के० ए० जमुना	सूरसागर और नलैयर दिव्य प्रबन्धम् में कृष्ण-कथा
18.	काननबाला मेहर	निर्गुण काव्य में शान्त रस
19.	कुसुमलता अग्रवाल	आधुनिक हिन्दी-काव्य में बिम्ब-विधान
20.	गिरिराजकिशोरी कौशिक	हिन्दी-काव्य में नखशिख-वर्णन
21.	गोविन्दलाल छाबड़ा	महाराज विश्वनाथसिंह—व्यक्तित्व एवं कृतित्व
22.	चन्द्रकान्त भारद्वाज	हिन्दी में अतुकान्त छन्द-योजना का विकास
23.	जगदीशकुमार	आधुनिक हिन्दी-साहित्य पर बौद्ध-प्रभाव
24.	जगदीशचन्द्र भारद्वाज	कृष्ण-काव्य में लीला-वर्णन
25.	दर्शनलाल सेठी	जायसी का काव्य-शिल्प
26.	देशराजसिंह भाटी	हिन्दी में शब्दालंकार-विवेचन
27.	प्रतिमा प्रियदर्शिनी	छायावाद का काव्य-शिल्प
28.	ब्रजभूषण शर्मा	मध्यकालीन हिन्दी सन्त-साहित्य में मानवतावादी विचारधारा
29.	रमेशचन्द मिश्र	हिन्दी-साहित्य में उलटबासियों का अध्ययन
30.	राजाराम	आधुनिक हिन्दी उपन्यास-साहित्य में प्रगति-चेतना

31. रामलाल वर्मा	हिन्दी काव्यशास्त्र में शृंगाररस का विवेचन
32. विमला मेहता	निर्गुण कवियों के सामाजिक आदर्श
33. वेदज्ञ आर्य	कामायनी की पारिभाषिक शब्दावली
34. सन्तोष जैन	निराला का काव्य
35. सरोज जग्गी	हिन्दी-साहित्य में आत्मकथा
36. सावित्री अवस्थी	नन्ददास—उनका जीवन और काव्य

नागपुर विश्वविद्यालय (सन् 1962 से आगे)

1. ओंकारनाथ शर्मा	हिन्दी-साहित्य में निबन्ध का विकास
2. शंकर शेष	हिन्दी और मराठी के कथा-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
3. रमेशचन्द्र गंगराडे	निमाड़ के सन्त कवि सिंगाजी
4. चन्द्रकुमार अग्रवाल	छत्तीसगढ़ी का लोक-साहित्य
5. चन्द्रप्रकाश सिंह	हिन्दी नाट्य-साहित्य और रंगमंच की मीमांसा
6. एन० के० पशीने	हिन्दी-काव्य में विरह-वर्णन
7. एस० माधवराव	हिन्दी-उपन्यास और कथाकार चतुरसेन शास्त्री
8. श्यामसुन्दर वर्मा	द्विवेदी-युग के पश्चात् हिन्दी गद्यशैली का विकास (1921-1950)
9. भारतेन्दु सिन्हा	पद्माकर का काव्य
10. रामनारायण सोनी	छायावादी काव्य के दार्शनिक और सांस्कृतिक पक्षों का अनुशीलन
11. सोहनलाल शर्मा	विदर्भ-क्षेत्रीय गोंडी बोली का लोक-साहित्य

पंजाब विश्वविद्यालय (सन् 1962 से आगे)

1. धर्मपाल	हिन्दी-साहित्य पर राजनीतिक आन्दोलनों का प्रभाव (1906-1947)
2. रघुवीरशरण	हिन्दी भाषा का रूप-वैज्ञानिक तथा वाक्य-वैज्ञानिक अध्ययन
3. रतनसिंह	दशम ग्रन्थ में पौराणिक रचनाओं का अध्ययन
4. विद्यानाथ गुप्त	हिन्दी-साहित्य में राष्ट्रीयतावाद

5.	विद्याभास्कर 'अरुण'	हिन्दी तथा पंजाबी की ध्वनियों का ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन
6.	शान्तिदेवी बत्रा	हिन्दी नाटक की शिल्पविधि का विकास
7.	सत्येन्द्र तनेजा	आधुनिक हिन्दी नाटक-साहित्य पर बंगला नाटक-साहित्य का प्रभाव (1850-1950)
8.	हरवंशलाल शर्मा	हिन्दी तथा पंजाबी के निर्गुण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन
9.	कुन्तल भसीन	आधुनिक हिन्दी-काव्य में रूढ़िगत मान्यताएँ
10.	जयनाथसिंह तोमर	भक्तिकाल में माधुर्यभाव का स्वरूप और सामाजिक परिवेश में मूल्यांकन
11.	ज्ञानवती चतुर्वेदी	मध्यकालीन हिन्दी-काव्य
12.	पद्मचन्द काश्यप	कुलवी लोक-साहित्य
13.	प्रेम भटनागर	हिन्दी-उपन्यास में बिम्ब-विधान
14.	बद्रीनाथ कपूर	हिन्दी-भाषा में पर्यायवाची शब्दों का स्थान
15.	श्रीमती राजनधना	आधुनिक हिन्दी-कविता में चेतना का स्वरूप और उसका विकास
16.	वीरेन्द्रराज	हिन्दी-साहित्य में व्यंग (1857-1957)
17.	श्रीकृष्णदेव	वीभत्स रस और हिन्दी-साहित्य
18.	हरिश्चन्द्र बत्रा	आधुनिक हिन्दी-कविता में अभिव्यंजना-कला—'इन्दु' से तारसप्तक तक

पटना विश्वविद्यालय (सन् 1962 से आगे)

1.	कल्याणेश्वरी वर्मा	मागधी लोकगीतों का आलोचनात्मक अध्ययन
2.	गोपाल राय	हिन्दी कथा-साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव (डी० लिट्०)
3.	गोपालजी स्वर्णकिरण	हिन्दी में समस्यापूर्ति की परम्परा और विकास
4.	जितराम पाठक	राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि में आधुनिक काव्य का विकास
5.	मदनकुमार	हिन्दी के छायावादी काव्य पर बंगला का प्रभाव
6.	रमाकान्त मिश्र 'श्रीकान्त'	पटना और गया···में···मगही भाषा का ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक अध्ययन

7.	राजनारायण राय	सूर-वर्णित रासलीला का दार्शनिक एवं काव्य-शास्त्रीय अध्ययन
8.	राम एकबाल साह	वात्सल्य रस के विकास में सूर का स्थान
9.	लक्ष्मीकान्त सिन्हा	हिन्दी उपन्यास-साहित्य का उद्भव और विकास
10.	विधाता मिश्र	हिन्दी के विशेष सन्दर्भ में प्राकृत का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन
11.	वीरेन्द्र श्रीवास्तव	अपभ्रंश का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
12.	सम्पत्ति आर्याणी	मगही भाषा और साहित्य का अध्ययन
13.	अरुण शास्त्री पोद्दार	कबीरकालीन भारतीय समाज
14.	रामतवाया शर्मा	तुलसी-साहित्य पर संस्कृत के अनार्ष-प्रबन्ध-काव्यों की छाया
15.	विमलसिंह कुमार	मधुर रस-स्वरूप और विकास (मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य के सन्दर्भ में)
16.	इन्द्रमोहनकुमार सिन्हा	प्रेमचन्द की कहानियों के आधार पर तद्युगीन समाज में जीवन का अध्ययन
17.	ब्रह्मदेव मंगल	सूर-साहित्य में सामाजिक संस्थान
18.	रमाशंकर श्रीवास्तव	हिन्दी कथा-साहित्य में हास्य और व्यंग (1870-1936)
19.	रामदीन मिश्र	चित्रकाव्य : सैद्धान्तिक विवेचन एवं ऐतिहासिक विकास
20.	अमरनाथ सिन्हा	आचार्य कवि बैजनाथ द्विवेदी : जीवनी और साहित्य
21.	नन्दकिशोर राय	सन्तमत का आचार-दर्शन
22.	परमानन्द पाठक	नन्ददास : दर्शन, साहित्य तथा शास्त्रीय तत्त्व
23.	बजरंग वर्मा	उमापति उपाध्याय और उसका नवपारिजात-मंगल
24.	मातादीन शर्मा	भारतेन्दुयुगीन साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन
25.	शोभाकान्त मिश्र	भारतीय काव्यशास्त्र में गुणधारणा
26.	श्रीकान्त उपाध्याय	रामचरितमानस पर शैव और शाक्त प्रभाव
27.	श्रीकान्त मिश्र	सूर-वर्णित कृष्ण-कथा का पौराणिक आधार
28.	रामचन्द्रप्रसाद	आधुनिक हिन्दी-आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव

29. शत्रुघ्नप्रसाद — हिन्दी नाटक में द्विवेदी-युग
30. श्यामनन्दनप्रसाद — रीतिकालोत्तर कवि और काव्य
31. सरयूप्रसाद — ए डिस्क्रिप्टिव स्टडी ऑफ फोनोलॉजी
32. सीतारामसिंह — कबीर के दर्शन और काव्य के स्रोत
33. सुचितनारायण प्रसाद — प्रणामी सन्तों का काव्य और दर्शन

पूना विश्वविद्यालय (सन् 1957 से 71 तक)

1. उषा इथापे — दक्खिनी हिन्दी—इब्राहीम नामा और बतरस
2. का० शं० केलकर — मराठी प्रान्त में—18वीं शताब्दी के हिन्दी पत्रों की भाषा का अध्ययन
3. दशरथराज असनानी — दक्खिनी हिन्दी का प्रेमगाथा-काव्य
4. कृ० गं० दिवाकर — भोंसला राजाओं तथा उनके आश्रित एवं सम्मानित कवियों का हिन्दी-काव्य (1600-1850)
5. रा० ना० मौर्य — नामदेव की भाषा का वर्णनात्मक विचार
6. प्र० रा० भुपटकर — हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन
7. श्रीमती लीला शिंगटे — सूरदास और एकनाथ की कृष्णभक्ति भावना का तुलनात्मक अध्ययन
8. डॉ० सिन्धु भिंगारकर — जैनेन्द्र के नारी-पात्र
9. डॉ० स० भ० परलीकर — हिन्दी और मराठी के समस्यामूलक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन
10. डॉ० कृ० ज्ञा० भिंगारकर — ज्ञानेश्वर और कबीर के साहित्य में नाथ-सम्प्रदाय का स्वरूप—एक तुलनात्मक अध्ययन
11. डॉ० व्य० व्यं० द्रविड़ — हिन्दी सगुण भक्ति-कविता पर वेदान्त का प्रभाव
12. डॉ० मालिनी बापट — मराठी सन्तों की हिन्दी-रचनाओं की भाषा का अध्ययन
13. डॉ० श्रीमती सीतालक्ष्मी रामचन्द्रन — आधुनिक हिन्दी और तमिल कविता में राष्ट्रीयता का तुलनात्मक अध्ययन
14. डॉ० पंजाबराव जाधव — हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्ययन में ईसाई मिशनरियों का योगदान

15. डॉ० श्रीमती विमल सहस्रबुद्धे	जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में मनोविज्ञान
16. डॉ० श्रीमती विद्यावती	हिन्दी-रंगमंच और बेताब के नाटक
17. डॉ० एम० बी० शहा०	हिन्दी-निबन्धों का शैलीगत अध्ययन
18. डॉ० सु० अ० कलवडे	हिन्दी और मराठी की राष्ट्रीय कविता का तुलनात्मक अध्ययन
19. डॉ० एच० के० कडवे	हिन्दी और मराठी के आँचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन
20. डॉ० स० रा० केणी	तुलसीकृत रामचरितमानस और एकनाथकृत भावार्थ रामायण का तुलनात्मक अध्ययन
21. डॉ० आर० जी० चौधरी	कामसूत्र और फ्रायड के सम्बन्ध में मध्यकालीन काव्य का अध्ययन
22. डॉ० दुर्गा दीक्षित	रससिद्धान्त का सामाजिक मूल्यांकन
23. डॉ० शोभना खटावकर	खांडेकर और प्रेमचन्द के नारी-पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन
24. डॉ० मा० गो० कानडे	हिन्दी और मराठी के आधुनिक काव्य की रहस्यात्मक प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन
25. डॉ० एम० आर० पुणतांबेकर	मुल्ला गवासी की कृतियों का अनुशीलन
26. डॉ० ना० रु० पवार	हिन्दी के आधुनिक काव्य में उपमान-योजना
27. डॉ० वा० भा० औटी	वारकरी सम्प्रदाय के कवियों की हिन्दी रचनाओं का अनुशीलन
28. डॉ० एस० पी० पाध्ये	हिन्दी के मंगल-काव्य
29. डॉ० एस० के० शहा	जैन-परम्परा का रामकथा-साहित्य—एक अनुशीलन
30. डॉ० सुशीला लाल	छायावादी काव्य की शब्दावली का अर्थगत अध्ययन
31. डॉ० शं० के० आडकर	हिन्दी निर्गुण-काव्य का प्रारम्भ और नामदेव की हिन्दी-कविता
32. डॉ० म० वि० गोविलकर	रसिक सुन्दर और उनका हिन्दी-काव्य

बम्बई विश्वविद्यालय

1. उर्वशी सुरती	आधुनिक हिन्दी-काव्य में मनोविज्ञान
2. कृष्णलाल शर्मा	आधुनिक हिन्दी-काव्य में ध्वनि

3. बद्रीनारायण झा	गोविन्दठाकुर तथा उनका काव्य
4. बंशीधर पण्डा	हिन्दी कोश-साहित्य का विकास : सिद्धान्त पूर्व-परम्परा एवं शास्त्रीय विवेचन (1765-1962)
5. कुमारी सुमति वाल्के	हिन्दी और मराठी निबन्ध-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

बिहार विश्वविद्यालय

1. अरविन्दनारायण सिंह	विद्यापति-साहित्य में प्रेम-वर्णन
2. अवधेश्वरप्रसादसिंह 'अरुण'	भक्तिकालीन हिन्दी-कवियों का वात्सल्य
3. श्रीमती आशाकिशोर	आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास-वर्णन
4. उमाशंकरसिंह	हिन्दी वीरकाव्य की मुक्तक परम्परा
5. के० सुब्रह्मण्यम्	भारती और भारतेन्दु की कृतियों में राष्ट्रीय धारा—एक तुलनात्मक अध्ययन
6. कामेश्वर शर्मा	भागलपुर जिले की बोली का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
7. कामेश्वरप्रसाद सिंह	प्रसाद की काव्य-प्रवृत्तियाँ
8. कृष्णनन्दन दीक्षित 'पीयूष'	नायिका भेद : उद्भव और विकास
9. केदारनाथ लाभ	हिन्दी शैवकाव्य—उद्भव और विकास
10. नन्दकुमार राय	छायावादी कवियों का गद्य-साहित्य
11. परम मित्र	हेमचन्द्र के अपभ्रंश सूत्रों की पृष्ठभूमि और उनका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
12. पूर्णानन्ददास	मैथिली लोकगीत
13. प्रेमनारायण सिन्हा	आधुनिक हिन्दी कहानी-साहित्य में समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति
14. प्रमोदकुमार सिंह	विद्यापति पदावली के आकर-स्रोत
15. बमबमसिंह 'नीलकमल'	अब्दुर्रहीम खानखाना और उनका काव्य
16. बमशम्भुदत्त झा	काव्य-दोषों का उद्भव और विकास
17. भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'	राम-साहित्य में मधुरोपासना
18. महेन्द्र मिश्र 'मधुकर'	उपमा-अलंकार का उद्भव और विकास
19. रमाकान्त पाठक	दोहा-छन्द का उद्भव और विकास

20. रामदेव त्रिपाठी	भाषा-विज्ञान की भारतीय परम्परा और पाणिनि
21. रामानन्दसिंह	सन्तों की सहज साधना
22. रामनारायणसिंह	हिन्दी-उपन्यास में आंचलिक कथा-तत्त्व का विकास
23. विद्यानाथ मिश्र	प्राचीन हिन्दी-काव्य में अहिंसा-तत्त्व
24. विनयकुमार	हिन्दी के समस्या-नाटक
25. शुकदेवसिंह	कबीर के बीजक का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन
26. श्यामनन्दन प्रसाद किशोर	हिन्दी महाकाव्यों की शिल्पविधि का विकास
27. सदानन्दसिंह	आधुनिक हिन्दी-साहित्य में सौन्दर्य-चेतना
28. श्रीमती सरोजप्रसाद	प्रेमचन्द के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन
29. सियाशरणप्रसाद	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यास का बिहार के सन्दर्भ में अध्ययन
30. सुरेन्द्रनाथ दीक्षित	भरत की आधुनिक नाट्यशास्त्र को देन
31. सुरेन्द्रमोहन प्रसाद	शाक्त दर्शन और उसका हिन्दी वैष्णव कवियों पर प्रभाव
32. हरिमोहन मिश्र	आधुनिक हिन्दी-आलोचना

भागलपुर विश्वविद्यालय

1. बदरीदास	हिन्दी-उपन्यास पृष्ठभूमि और परम्परा (1875-1927)
2. रमाशंकर तिवारी	सूर का श्रृंगार-वर्णन
3. विष्णुकिशोर झा बेचन	आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-विकास
4. सिद्धनाथकुमार सिन्हा	हिन्दी एकांकी शास्त्रविधि का विकास
5. बटेकृष्ण	हिन्दी की वीरकाव्य-धारा
6. राधारमण सिन्हा	भारतेन्दुयुगीन निबन्ध
7. नागेश्वर शर्मा	मगही लोकगाथाओं का अध्ययन
8. हरिदामोदर	आधुनिक हिन्दी-कविता में राष्ट्रीयभावना (1857-1947)
9. जगन्नाथ ओझा	हिन्दी-उपन्यासों के सिद्धान्त और विनियोग पर शरद्चन्द्र का प्रभाव

10.	तपेश्वरनाथ सिन्हा	हिन्दी-काव्य में कृष्ण-चरित का भावात्मक स्वरूप-विकास
11.	भागीरथप्रसाद यादव	कबीर साहित्य में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली

मद्रास विश्वविद्यालय

1.	शंकरराजु नायडू	कंबरामायणम् और रामचरितमानस

महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

1.	महेन्द्रप्रतापसिंह	भगवन्तराय खीची और उनके मण्डल के कवि
2.	माणिकलाल चतुर्वेदी	गुजरात की हिन्दी-काव्य-परम्परा तथा आचार्य कवि गोविन्द गिल्लाभाई
3.	हनुमानदास चकोर	हिन्दी का स्तोत्र-साहित्य
4.	रामकुमार गुप्त	हिन्दी-साहित्य को गुजरात के सन्तकवियों की देन
5.	प्रतापनारायण झा	मैथिलीनाटक—उद्भव और विकास
6.	भँवरलाल जोशी	सूरदास और नरसी मेहता का तुलनात्मक अध्ययन
7.	वसन्तभास्कर जोशी	महाकवि निराला—दर्शनकला
8.	कैलाशचन्द्र शर्मा	भक्तमाल और हिन्दी-काव्य में उसकी परम्परा
9.	रमणलाल पाठक	सन्तकवि अखा—जीवनी और हिन्दी-कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन

मैसूर विश्वविद्यालय

1.	एम० एस० कृष्णमूर्ति	हिन्दी और कन्नड़ की साहित्यिक प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन
2.	कृष्णस्वामी अयंगार	हिन्दी-कन्नड़ अलंकारशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन

राजस्थान विश्वविद्यालय

1.	के० एल० शर्मा	हाड़ौती बोली और साहित्य
2.	एस० डी० शर्मा	काव्य-दोष—उद्भव और विकास

3. यू० एस० भटनागर	हेमरतन कृत 'पद्मिणी चौपाई' एक परिपूर्ण आलोचनात्मक संस्करण तथा उसकी भाषा राजस्थानी (वि० सं० 1647) का वैज्ञानिक अध्ययन
4. सी० एल० शर्मा	संस्कृत साहित्यशास्त्र और महाकवि तुलसीदास
5. आर० पी० शर्मा	आचार्य श्री परशुराम देव—एक साहित्यिक अध्ययन
6. श्रीमती कमला भण्डारी	मध्यकालीन हिन्दी-कविता पर शैवमत का प्रभाव
7. कृष्णकुमार शर्मा	राजस्थानी लोकगाथाएँ
8. प्रेमदत्त शर्मा	प्रसाद-साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
9. भंवरलाल जोशी	काश्मीर शैव-दर्शन और कामायनी
10. केदारनाथ शर्मा	हिन्दी-साहित्य की नयी दिशा में अज्ञेय की प्रयोगात्मक प्रगति का मूल्यांकन
11. नारायणसिंह भाटी	डिंगल गीत-साहित्य
12. मनोहरलाल शर्मा	राजस्थानी बाल-साहित्य—एक अध्ययन
13. बसन्तकुमार मिश्र	हिन्दी-साहित्य में शिव-कथा का उद्भव और विकास
14. कन्हैयालाल सींवर	दादूपन्थी काव्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन
15. जयसिंह 'नीरज'	राजस्थानी चित्रकला (सन् 1600-1900) के परिपार्श्व में हिन्दी कृष्णकाव्य का अध्ययन
16. नेमीचन्द्र श्रीमाल	पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी-मेवाड़ी) का अर्थ-विचार
17. मदन केवलिया	हिन्दी खण्डकाव्य—एक अध्ययन
18. राधेश्याम शर्मा	प्रसाद के नाटकीय पात्र—मनोवैज्ञानिक अध्ययन
19. सरनामसिंह शर्मा 'अरुण'	कबीर-निदर्शन
20. हरिचरण लाल शर्मा	परम्परा और प्रगति की भूमिका पर नयी कविता का मूल्यांकन
21. रमेशचन्द्र शर्मा	हिन्दी-साहित्य का कवित्त-साहित्य

लखनऊ विश्वविद्यालय

1. अमरपालसिंह	तुलसी पूर्व राम-साहित्य

2. इन्द्रपालसिंह — अपभ्रंश साहित्य में शृंगार
3. ओमप्रकाश त्रिवेदी — हरिऔध और उनका काव्य
4. कैलाशचन्द्र अग्रवाल — शेखावटी बोली का वर्णनात्मक अध्ययन
5. गिरीशचन्द्र त्रिपाठी — हिन्दी का जासूसी साहित्य
6. चन्द्रशेखर — तुलसी की दार्शनिक शब्दावली का सांस्कृतिक इतिहास
7. जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव — बीसवीं शताब्दी का रामकाव्य
8. दिनेशचन्द्र गुप्त — भक्तिकालीन-काव्य में राग और रस
9. श्रीमती नीलिमा सिंह — आधुनिक हिन्दी कविता में ग्राम्य-जीवन
10. प्रकाशनारायण दीक्षित — सन्त-साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि
11. डॉ० प्रतापनारायण टण्डन — समीक्षा के मान और हिन्दी-समीक्षा की··· प्रवृत्तियाँ
12. कु० प्रभा शर्मा — प्रेमचन्द के समवर्ती कथा-साहित्य में लोक-संस्कृति
13. बुद्धिसागर — कूर्माञ्चलीय कहावतों का अध्ययन
14. भगवतशरण अग्रवाल — हिन्दी-उपन्यास और राजनीतिक आन्दोलन
15. भाग्यवती सिंह — हिन्दी रामकथा-काव्य में कला
16. श्रीमती मंजु सिहल — तुलसीदास और मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में ऐहिक जीवन-आदर्श का तुलनात्मक अध्ययन
17. मदनगोपाल गुप्त — 15वीं व 16वीं शती की हिन्दी-कविता की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
18. मोतीबाबू — हिन्दी की विधि-शब्दावली
19. रामअँजोरसिंह — तुलसी के काव्य में विशेषणों का प्रयोग
20. रामशंकर शुक्ल — हिन्दी-साहित्य में जैमिनी-काव्य की परम्परा
21. रूपेन्द्रनाथ शर्मा — नेपाल के हिन्दी-कवि और लेखक—एक अध्ययन
22. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निःशंक' — हिन्दी में सवैया-साहित्य
23. शिवबालक शुक्ल — हिन्दी के प्रबन्ध-काव्य (सं० 1700 से 1900 वि० तक)
24. कु० शीतला सिंह — दो दशकों 1937 ई० से 1947 तक तथा 1947 से 1957 ई० तक हिन्दी-साहित्य
25. कु० शैलकुमारी — तुलसी की काव्य-प्रतिभा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

26. श्यामसुन्दर	आधुनिक अवधी काव्य—एक अध्ययन
27. सन्तराम 'अनिल'	कन्नौजी लोकसाहित्य—एक अध्ययन
28. सरयूप्रसाद अग्रवाल	अवध के स्थान-नामों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
29. सुबोधचन्द्र	राहुल का कथा-साहित्य
30. सूर्यप्रसाद दीक्षित	छायावादी कवियों का गद्य-साहित्य—एक अध्ययन
31. हरनारायण सिंह	छायावादी काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि
32. हरिनाथसिंह तोमर	सन्त पलटूदास का सामाजिक दर्शन और काव्य-प्रतिभा
33. श्रीमती हेम भटनागर	हिन्दी-साहित्य के शृंगार-युग में संगीत-काव्य (सं० 1700 से 1900 वि० तक)
34. ज्ञानशंकर पाण्डेय	अवधी क्रियापद से रचना
35. शशिभूषण सिंहल	हिन्दी-उपन्यास की प्रवृत्तियों का विकास (मुंशी प्रेमचन्द से 1960 ई० तक) (डी० लिट्०)

विश्वभारती

1. नन्दकिशोर सिंह	कुरमाली बोली
2. कु० चंचल वर्मा	अपभ्रंश कथा-साहित्य

श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति

1. पी० आदेश्वरराव	हिन्दी और तेलुगु स्वच्छन्दतावादी कविता का तुलनात्मक अध्ययन
2. जनार्दनराव चेलेर	वृन्द और उनका साहित्य
3. भारतभूषण	केशव की भाषा
4. राजमल बोरा	भूषण और उनका साहित्य
5. के० रामनाथन्	हिन्दी और तेलुगु के वैष्णव भक्ति-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
6. वै० वेंकटरमण राव	रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

शिवाजी विश्वविद्यालय (कोल्हापुर)

1. हेमा कर्णिक	हिन्दी नाट्य-साहित्य में नारी-भावना और मराठी नाट्य-साहित्य से प्रासंगिक तुलना (1850-1950)

सरदार पटेल विश्वविद्यालय

1.	ईश्वरलाल देसाई	हिन्दी-गुजराती राष्ट्रीय कविता का तुलनात्मक अध्ययन (1920-47)
2.	केशरीनन्दन मिश्र	सेठ गोविन्ददास—कला एवं कृतित्व
3.	तारा सन्त	हिन्दी की गद्य-लेखिकाएँ
4.	देवीसहाय गुप्त	श्रीस्वामीनारायण सम्प्रदाय का हिन्दी-साहित्य
5.	नवीन मेहता	हिन्दी और गुजराती की नयी कविता
6.	पूनमचन्द दइया	'पन्त' के काव्य में सौन्दर्य एवं दर्शन
7.	प्रभातचन्द्र शर्मा	प्रगतिवाद और हिन्दी-उपन्यास
8.	भगतसिंह नेगी	हिन्दी-साहित्य को कूर्मांचल की देन
9.	मदनकुमार जानी	गुजरात एवं राजस्थान के मध्यकालीन सन्त-कवि
10.	महावीरसिंह चौहान	गुजरात के हिन्दी-कवि दयाराम
11.	रमेश पण्ड्या	हिन्दी कहानी-साहित्य-विविध रूप
12.	रामलखन शुक्ल	साधारणीकरण—शास्त्रीय अध्ययन
13.	श्रीराम नागर	हिन्दी की प्रयोगशील कविता और उसके प्रेरणा-स्रोत (1943-1960)
14.	रघुवीरशरण 'व्यथित'	व्यभिचारी भावों का शास्त्रीय अध्ययन
15.	सुरेशचन्द्र त्रिवेदी	रीतिकाव्य और औचित्य-सम्प्रदाय

इलाहाबाद विश्वविद्यालय (1964 से 70 तक)

डी० लिट्०

1.	भोलानाथ	आधुनिक हिन्दी-साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
2.	मीरा श्रीवास्तव	कृष्णकाव्य में सौन्दर्यबोध और रसानुभूति (सं० 1375-1750)
3.	रामकुमति मिश्र	मध्ययुग के हिन्दी सूफी सन्त-काव्य का अप्रस्तुत विधान (1400-1600)
4.	सुरेश सिन्हा	हिन्दी उपन्यास-साहित्य में मानवतावादी तत्त्वों का अन्वेषण
5.	केशवचन्द्र सिन्हा	गोरखनाथ का दर्शन

डी० फिल०

1.	नित्यानन्द तिवारी	क्रिटिकल स्टडी ऑव द ले ऑव लौरिक एण्ड चन्दा, एण्ड ए चन्दायन ऑव मुल्ला-दाऊद
2.	शीला गुप्त	प्रेमचन्द के उपन्यासों एवं उनकी कहानियों का आलोचनात्मक अध्ययन
3.	योगेन्द्र सिंह	हिन्दी वैष्णव भक्ति-काव्य में निहित काव्यादर्श तथा काव्य के शास्त्रीय सिद्धान्त (सन् 1400 से 1700)
4.	राजेन्द्रकुमार वर्मा	हिन्दी कृष्णभक्तिकाव्य (सन् 1700 से 1900 तक)
5.	लीला तिवारी	रामचरितमानस के उपमान
6.	शान्तारानी	हिन्दी-नाटकों में हास-तत्त्व
7.	रविशंकर अग्रवाल	कैरेक्टर टाइम्स ऑव हिन्दी ड्रामा-क्लैसी-फिकेशन एल्यूसिडेशन एण्ड डेवलपमेण्ट
8.	रामलखन पाण्डेय	तुलसीदास-पूर्व हिन्दी राम-साहित्य
9.	भवानीदत्त उप्रेती	नन्ददास : जीवन और कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन
10.	रामकिशोर मौर्य	जान कवि के प्रेमाख्यानों का आलोचनात्मक अध्ययन
11.	सूर्यदेवसिंह प्रभाकर	भानुभक्त की रामायण और गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस में निहित सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन
12.	उषा सक्सेना	हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास
13.	विमलेशकान्ति वर्मा	भारतेन्दुयुगीन हिन्दी-काव्य में लोकतत्त्व
14.	प्रेममोहिनी सिन्हा	आधुनिक हिन्दी-काव्यों में नायक-निरूपण
15.	सूर्यनारायण पाण्डे	पृथ्वीराज रासो की शब्दावली का सांस्कृतिक अध्ययन
16.	गणपति भट्ट	राष्ट्रीय आन्दोलन के सन्दर्भ में हिन्दी और कन्नड उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन
17.	भगवतप्रसाद दुबे	कबीर का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
18.	ओमप्रकाश सक्सेना	गुजराती हस्तलिखित पद-संग्रहों का अध्ययन
19.	रक्षा भल्ला	प्रेमचन्द में व्यक्ति और समाज

20. सत्येन्द्र वर्मा	प्रेमचन्द—उपन्यास-साहित्य में सामाजिक समस्याएँ
21. श्यामकुमारी श्रीवास्तव	भारतेन्दु की खड़ी बोली का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
22. श्रीचन्द्रकान्त	हिन्दी और मराठी के ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन
23. आशा वर्मा	भक्तिकाल का दार्शनिक दृष्टिकोण
24. प्रमोदकुमार सिन्हा	छायावादी कवियों का सांस्कृतिक दृष्टिकोण प्रसाद, पन्त, निराला और रामकुमार वर्मा के विशिष्ट सन्दर्भ में
25. कान्तिकेशी सिन्ह	हिन्दी मुक्तक-काव्य की परम्परा
26. अर्जुनराम	प्रसाद-साहित्य की दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक भावभूमि
27. सुरेशकुमारी पुरंग	निराला : कृतित्व, कला और दर्शन
28. किशोरीलाल शर्मा	सिद्धों की काव्यभाषा का अध्ययन
29. चन्द्रकला मिश्र	हिन्दी भक्ति-काव्य के विशेष सन्दर्भ में शान्त रस का अध्ययन
30. निर्मला	आधुनिक खड़ी बोली काव्य में ऐतिहासिक सन्दर्भों का अध्ययन (1900-1960)
31. रोशनलाल	द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली और ब्रजभाषा का तुलनात्मक अध्ययन
32. ब्रजेश जायसवाल	हिन्दी नाट्य-साहित्य में समाज-सुधार की प्रवृत्ति (एकांकी को छोड़कर सन् 1947 तक)
33. प्रमिला शर्मा	हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों में भारतीय संस्कृति का स्वरूप
34. मालती सिंह	आधुनिक हिन्दी-काव्य में पुराण-कथाओं का प्रयोग
35. उर्मिला जैन	आधुनिक हिन्दी-काव्य में क्रान्ति की विचारधारा (1850-1950 तक)
36. कृष्णचन्द्र पाण्डेय	प्रेमचन्द के व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन के विधायक तत्त्व
37. धनंजय पाण्डेय	हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास-तत्त्व

38. गोविन्दजी	हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास-तत्त्व का प्रयोग
39. शैलकुमारी अग्रवाल	हिन्दी-उपन्यासों में कल्पना के बदलते हुए मानदण्डों का अध्ययन
40. मूलशंकर शर्मा	मिर्जापुर की आर्य बोलियों का वैज्ञानिक अध्ययन
41. सर्वजीतराय	हिन्दी उपन्यासों में आदर्शवाद
42. गिरिजासिंह	हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि
43. संसारदेवी	प्रेमचन्दोत्तर कथा (उपन्यास) के सांस्कृतिक स्रोत
44. राधादेवी श्रीवास्तव	मैथिलीशरण गुप्त की काव्यभाषा का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
45. योगेन्द्रसिंह	चरनदास का व्यक्तित्व और कृतित्व
46. सुरेशचन्द्र मिश्र	कबीर पन्थ और दरिया पन्थ (बिहार) का तुलनात्मक अध्ययन
47. सिद्धनाथ पाण्डेय	अपभ्रंश के आख्यानक काव्य और उनका हिन्दी के आख्यानक काव्यों पर प्रभाव
48. विद्याधर	जायसी साहित्य में अप्रस्तुत योजना
49. माधुरी पुरी	कबीरदास-शब्दावली का सांस्कृतिक अध्ययन
50. शीतलाप्रसाद मिश्र	हिन्दी मध्ययुगीन भक्तिकाव्य में पौराणिक सन्दर्भों का अध्ययन
51. मीरा जायसवाल	विद्यापति काव्य का सांस्कृतिक अनुशीलन
52. रामकृपाल पाण्डेय	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के साहित्य-सिद्धान्त
53. किशोरीलाल	प्रेमचन्द कथा-साहित्य में शहरी जीवन
54. सुरेन्द्रनाथ आनन्द	हिन्दी में अनूदित उपन्यास और उनके साहित्यिक अभिरुचि के विकास पर प्रभाव
55. माया अग्रवाल	उन्नीसवीं शताब्दी का कृष्णभक्ति साहित्य
56. गीता गुप्ता	पारसी नाटक
57. लक्ष्मणसिंह विष्ट	प्रेमचन्द-पूर्व के कथाकार और उनका युग

शोध उपाधिप्राप्त-विषयों की सूची

आगरा विश्वविद्यालय (सन् 1962 से आगे)

डी० लिट्०

	नाम	विषय
1.	डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया	हिन्दी भाषा में अक्षर तथा शब्द की सीमा
2.	डॉ० ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव	हिन्दी वाक्य-रचना
3.	डॉ० एम० जार्ज	भक्ति आन्दोलन का समालोचनात्मक अध्ययन विशेषतः हिन्दी तथा मलयालम साहित्य के सन्दर्भ में
4.	डॉ० इन्दिरा जोशी	भारतीय उपन्यासों में वर्णनात्मक साम्य और उसका मूल्यांकन
5.	डॉ० श्रीराम शर्मा	दक्खिनी साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन

पी-एच० डी० (हिन्दी)

	नाम	विषय
1.	कैलाशचन्द्र भाटिया	हिन्दी में अँग्रेजी के आगत शब्दों का भाषा-तात्त्विक अध्ययन)
2.	चन्द्रभान रावत	मथुरा जिले की बोलियाँ (विवरणात्मक तथा तुलनात्मक अध्ययन
3.	रवीन्द्रकुमार जैन	कविवर बनारसीदास—जीवनी और कृतित्व
4.	रामबाबू शर्मा	15वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक हिन्दी-साहित्य के काव्यरूपों का अध्ययन
5.	श्रीमती विमला गौड़	मीराँ के साहित्य के मूलस्रोतों का अनुसंधान
6.	ब्रह्मानन्द	बँगला (भाषा और साहित्य) पर हिन्दी (भाषा और साहित्य) का प्रभाव
7.	गंगाप्रसाद पाठक	प्रेमचन्द और रमणलाल बसन्तलाल देसाई के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन
8.	कु० इन्दिरा जोशी	हिन्दी उपन्यासों में लोक-तत्त्व
9.	नटवरलाल अम्बालाल व्यास	गुजराती के कवियों की हिन्दी काव्य-साहित्य को देन
10.	श्रीमती सत्यवती महेन्द्र	हिन्दी नाममाला साहित्य
11.	श्रीराम शर्मा	दक्षिणी का रूप-विन्यास
12.	श्रीमती सरोज अग्रवाल	प्रेमचन्द्रोदय और उसकी हिन्दी-परम्परा
13.	हरिदत्त भट्ट (शैलेश)	गढ़वाली का शब्द-सामर्थ्य

14.	श्रीमती चन्द्रकला त्यागी	बुलन्दशहर के संस्कार-सम्बन्धी लोक-गीतों का मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग के आधार पर अध्ययन
15.	महेन्द्रसागर प्रचण्डिया	हिन्दी का बारहमासा साहित्य (उसका इतिहास तथा अध्ययन)
16.	कु० लक्ष्मी सक्सेना	सिंहासन बत्तीसी तथा उसकी हिन्दी-परम्परा का लोक-साहित्य की दृष्टि से अध्ययन
17.	गोपीवल्लभ नेमा	रामानन्दी सम्प्रदाय के कुछ अज्ञात कवि और उनकी रचनाएँ
18.	कु० सुशीला धीर	हिन्दी और गुजराती के निर्गुण सन्त-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन
19.	एम० जार्ज	तुलसीदास तथा मलयालम के रामभक्त भर्तृहरिः कवि उषुतच्छन का तुलनात्मक अध्ययन
20.	सत्यकाम	भर्तृहरिः वाक्यपदीय का भाषातात्त्विक अध्ययन
21.	नरेन्द्रकुमार सिन्हा	हकलाने से सम्बन्धित दोषों का भाषातात्त्विक अध्ययन
22.	के० एस० मणि	मैथिलीशरण गुप्त और वल्लतोल का तुलनात्मक अध्ययन
23.	जयकृष्ण	हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों का आलोचनात्मक अध्ययन
24.	प्राणनाथ तृछल	कश्मीरी भाषा का वर्णनात्मक व्याकरण
25.	कु० सरोजिनी शर्मा	हिन्दी तथा गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन
26.	कर्णराजशेषगिरिराव	आन्ध्र के लोकगीत
27.	एन० एस० दक्षिणामूर्ति	सूरदास और पोतना का तुलनात्मक अध्ययन
28.	श्रीमती विद्या टोपा	भारतीय महाकाव्यों की परम्परा में कामायनी
29.	श्रीमती जयकिशोरी शिवपुरी	गृहजीवन सम्बन्धी कश्मीरी शब्दावली
30.	कु० स्वर्णकान्ता	मेरठ जनपद के संस्कार-विषयक लोकगीत
31.	श्रीमती ललितासिंह	हिन्दी क्षेत्रीय लोक-कथाओं के कथा-मानक रूप तथा अभिप्राय

32. विष्णुदत्त भारद्वाज — हरियाणा की सांस्कृतिक शब्दावली का अध्ययन

33. ब्रह्मेन्द्रनाथसिंह — देव की पाँच विलास संज्ञक रचनाओं का पाठानुसन्धान

34. श्रीकृष्ण वार्ष्णेय — माधवानल कामकन्दला की परम्परा का अध्ययन

35. श्रीमती आशा शर्मा — ब्रजक्षेत्र की कहानियों का अध्ययन

36. श्री बी० एम० चिन्तामणि — ऐतिहासिक उपन्यासों का और उस सन्दर्भ में विशेषकर हिन्दी में लिखे गये इसी जाति के उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन

37. उमापतिराय चन्देल — मध्ययुगीन हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानक काव्य में पौराणिक आख्यान (1400-1700 ई०)

38. रामावतार शर्मा — हिन्दी-साहित्य के विकास में हिन्दी पत्रकारिता का योगदान (सन् 1900)

39. राजेन्द्रसिंह कुशवाहा — अष्टछाप के आधार पर तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का अध्ययन

40. के० वी० वी० एल० नरसिंहराव् — तेलुगु और हिन्दी लोकोक्तियों का तुलनात्मक एवं भाषावैज्ञानिक अध्ययन

41. रामजीवन — हिन्दी-साहित्य में प्रयुक्त मुहावरों का तुलनात्मक अध्ययन

42. गोविन्दप्रसाद शर्मा — हिन्दी का फागु और वसन्त-काव्य

43. सरला गोस्वामी — राधावल्लभी सम्प्रदाय के हिन्दी-साहित्य में रस की स्थिति और उसकी भाषा

44. श्रीमती प्रकाश माथुर — हिन्दी में भक्तमाल तथा परिचयी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन

45. शिवराज हेलिखेडे — हिन्दी और मराठी के आधुनिक काव्य में हास्य रस का तुलनात्मक अध्ययन

46. श्रीमती राजकुमारी बुद्धिराजा — देव के काव्य में अभिव्यक्ति-विधान

47. तपेशकुमार चतुर्वेदी — रीतिकाल के हिन्दी लक्षण-ग्रन्थों तथा 17वीं-18वीं शती के आंग्ल-नव्यशास्त्रीय समीक्षा-ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन

48. न० वी० राजगोपालन — तमिल और हिन्दी के काव्यशास्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन

49. रामबाबू सारस्वत	कहानीकार प्रेमचन्द तथा पन्नालाल पटेल का तुलनात्मक अध्ययन
50. कु० मालती टंडन	हिन्दी साहित्यिक नाटकों के रेडियो-रूपान्तरों का शिल्प-विधान
51. शंकरसिंह तोमर	आचार्य चतुरसेन शास्त्री और कन्हैयालाल मुंशी के औपन्यासिक कृतित्व का तुलनात्मक अध्ययन
52. ओंकारनाथ कौल	कश्मीरी और हिन्दी रामकथा-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन
53. श्रीमती शशिप्रभा जैन	सतसई परम्परा की पृष्ठभूमि में गाथा सप्त-शती और बिहारी सतसई का तुलनात्मक अध्ययन
54. परमात्माप्रसाद माथुर	उत्तर प्रदेश के हिन्दी-साहित्य और लोक-साहित्य में भैरव
55. कु० शिवरानी गर्ग	हिन्दी के ऐतिहासिक चरित-काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन (12वीं से 15वीं शताब्दी ई० तक)
56. कु० सुधा नौटियाल (श्रीमती सुधा चन्दोला)	हिन्दी-क्षेत्र के लोक-साहित्य में देवी
57. श्रीमती सरोज पाण्डेय	हिन्दी सूफी-काव्य में प्रतीक-योजना
58. शारदाकुमारी	नन्ददास की भाषा
59. सुरेशचन्द्र त्यागी	छायावादी काव्य में सौन्दर्य-दर्शन
60. श्रीमती कान्ता शर्मा	आधुनिक हिन्दी-कविता में बिम्ब-योजना
61. श्रीमती कमला शर्मा	कुतबन कृत 'मृगावती' की भाषा का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
62. श्री मदनलाल शर्मा	हिन्दी-गद्य साहित्य में लोकोक्तियाँ और मुहावरे

पी-एच० डी० (भाषाविज्ञान)

1. देवीशंकर द्विवेदी	बैसवाड़ी शब्द-सामर्थ्य
2. मोहनलाल शर्मा	खुरपल्टी (पदरूपांश तथा वाक्य)
3. मुरारीलाल उप्रेति	हिन्दी में प्रत्यय-विचार
4. रमेशचन्द्र जैन	हिन्दी समास-रचना का अध्ययन
5. रमानाथ सहाय	पाली क्रिया-धातुओं का अध्ययन

6.	शशिशेखर तिवारी	भोजपुरी लोकोक्तियों का अध्ययन
7.	कु० पुष्पलता	हिन्दी रेडियो रूपकों का शैली-तात्त्विक अध्ययन
8.	अरविन्द कुलश्रेष्ठ	आगरे के लोक-काव्य का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन
9.	श्रीप्रकाश कुर्ले	सहारनपुर जिले के स्थान-नामों का सामाजिक भाषाशास्त्रीय अध्ययन
10.	सुरेन्द्र कुलश्रेष्ठ	आधुनिक हिन्दी तथा तमिल की समान शब्दावली का अध्ययन
11.	जगदीशप्रसाद गुप्त	बांगरू में सामाजिक स्तरों तथा सम्बन्धों की भाषात्मक अभिव्यक्ति (जिला रोहतक के आधार पर)
12.	श्यामलाल शर्मा	हमीरपुर तहसील में बोली जाने वाली कांगड़ा घाटी की बोली का वर्णनात्मक अध्ययन
13.	जे० पार्थसारथि	आधुनिक तमिल और हिन्दी के व्याकरणिक गठन का तुलनात्मक अध्ययन
14.	लक्ष्मीनारायण शर्मा	ब्रज के स्थान-अभिधानों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन
15.	लक्ष्मीनारायण मित्तल	हिन्दी में सन्धि (हिन्दी में सन्धि संक्रमण तथा सम्बद्ध भाषण में होने वाले ध्वनि-परिवर्तनों का यन्त्रीय सहायता सहित अध्ययन)
16.	राजेन्द्रकुमार गढ़वालिया	चन्दायन की भाषा
17.	जनार्दनसिंह	तुलसी की अवधी : भाषातात्त्विक अध्ययन
18.	विश्वजीत नारायण श्रीवास्तव	हिन्दी पदबन्धों का रचनात्मक अध्ययन
19.	रामप्रकाश सक्सेना	बदायूं जनपद की बोली का एककालिक अध्ययन
20.	रमानाथ सहाय	ए डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल स्टडी ऑफ हिन्दी वर्ब रूप

मगध विश्वविद्यालय

1.	गनौरी महतो	रामचरितमानस—नानापुराणनिगमागम सम्मतम्

REFERENCE BOOKS—सन्दर्भ-ग्रन्थ

English

1. Beams	Comparative Grammer of Aryan Languages of India
2. Jenker	Field work—An Introduction to the Social Science
3. Hyman	Interviewing Social Science
4. Katre	Introduction to Texual Criticism
5. Grierson	Linguistic Survey of India (Part I & VII)
6. Weber M.	Methodology of Social Science
7. Marguret, Staney	Method of Social Research
8. Hutt	Methods in Social Research
9. ,,	Proceedings of Twenty Sixth—International Congress of Orintatists (Vol. I)
10. John W. Best	Research in Education
11. Moser C. A.	Survey Methods Social Investigation
12. Vishvanath Prasad	Survey of Manubhumi
13. Monly	The Science of Educational Research

हिन्दी

1. डॉ० सत्येन्द्र	अनुसंधान
2. संपादक श्रीमती सावित्री सिन्हा	अनुसन्धान की प्रक्रिया
3. सं० नरेन्द्र धीर	अन्तर्राष्ट्रीय लोकयानी अनुसन्धाता
4. सं० विश्वनाथप्रसाद	अनुसन्धान के मूल तत्त्व
5. कन्हैयासिंह	पाठ-सम्पादन के सिद्धान्त
6. अनु० उदयनारायण तिवारी	भारतीय पाठालोचन की भूमिका
7. ओमप्रकाश वर्मा	सामाजिक अनुसन्धान
8. डॉ० उदयभानुसिंह	हिन्दी के स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

●●